हिन्दी काव्यभाषा का स्वरूप और विकास – ऐतिहासिक सर्वेक्षण

(HINDI KAVYABHASHA KA SWAROOP AUR VIKAS – EITHIHASIK SARVEKSHAN)

Thesis submitted to

Cochin University of Science and Technology

for the award of the degree of

Doctor of Philosophy

By

SURYA.L.S

Department of Hindi

Cochin University of Science and Technology

Kochi – 22

September 2011

HINDI KAVYABHASHA KA SWAROOP AUR VIKAS – EITHIHASIK SARVEKSHAN

Ph.D thesis (Hindi) in the field of Poetry

Author

Surya.L.S

Research Scholar, Department of Hindi

Cochin University of Science And Technology, Kochi – 22

Research Advisor

Dr.N.G.Devaki

Professor, Department of Hindi

Cochin University of Science And Technology, Kochi – 22

Cover Design and Layout

Syam lal

Department of Hindi

Cochin University of Science and Technology,

Kochi – 22

September 2011

Declaration

I hereby declare that the thesis entitled **"Hindi Kavyabhasha Ka Swaroop Aur Vikas – Eithihasik Sarvekshan"** is outcome of the original work done by me, and the work did not form part of any dissertation submitted for the award of any degree, diploma, associateship or any other title or recognition.

Department of Hindi
Cochin University of
Science And Technology
Kochi – 22

Surya.L.S
Research Scholar

Department of Hindi
Cochin University of Science And Technology

Certificate

This is to certify that, to the best of my knowledge this thesis entitled ***"Hindi Kavyabhasha Ka Swaroop Aur Vikas – Eithihasik Sarvekshan"*** *is a bonafide record of research carried out by* ***Surya.L.S*** *under my supervision.*

Department of Hindi
Cochin University of
Science and Technology
Kochi – 22

Dr.N.G.Devaki
Supervising Teacher

“वे कहते यह भाषा विचित्र
जिसमें है शब्द कला-हीन
जिसमें प्रयोग हैं ग्राम्य और
वे अति कठोर जो भी नवीन
पर तू सुन मत ओ कलाकार
तेरे शब्दों में लाख-लाख
दिलवालों के रहते उद्गार !”

- मुक्तिबोध, ओ कलाकार

शोधार्थिनी की प्रकाशित रचनाएँ

1. "दिनकर की काव्यभाषा – 'कुरुक्षेत्र' के विशेष संदर्भ में"; संग्रथन, अप्रैल 2008; हिन्दी विद्यापीठ (केरल), तिरुवनन्तपुरम, पृ: 21-23
2. "दिनकर की काव्यभाषा – 'कुरुक्षेत्र' के विशेष संदर्भ में"; अनुशीलन: दिनकर विशेषांक जनवरी 2009; हिन्दी विभाग, कोच्चिन विज्ञान व प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, कोच्ची – 22, पृ: 78-84
3. "प्रगतिवाद के संदर्भ में त्रिलोचन-काव्य की लोकशैली और भाषा"; अनुशीलन : त्रिलोचन विशेषांक जुलाई 2009; हिन्दी विभाग, कोच्चिन विज्ञान व प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, कोच्ची – 22, पृ : 237-244
4. "काव्यभाषा बनाम् गद्यभाषा"; (संप्रेषित)
5. "कामायनी में परिलक्षित भारतीयता की भावना"; (संप्रेषित)
6. "काव्य की भूमिका – एक अनुशीलन"; (संप्रेषित)

विषयानुक्रमणिका

पृष्ठ संख्या

पहला अध्याय - भाषा और कविता 1-58

1.1.भाषा और कविता

1.2. काव्यभाषा और गद्यभाषा में अंतर

1.3. काव्य का वस्तुपक्ष और रूपपक्ष

1.4. कविता के लक्षण

1.5. काव्य के भेद

1.6. काव्यभाषा और औचित्य सिद्धांत

1.6.1. काव्य में सत्यं शिवं सुन्दरम्

1.6.2. काव्य प्रयोजन

1.7. निष्कर्ष

दूसरा अध्याय - आदिकालीन काव्यभाषा का स्वरूप 59-95

2.1. कविता में देश-काल परिकल्पना

2.2. रासो साहित्य परंपरा का विकास

2.3. पृथ्वीराज रासो की काव्यभाषा

2.4. विद्यापति पदावली की काव्यभाषा

2.5. निष्कर्ष: आदिकालीन काव्यभाषा के मूल्यांकन का मानदंड

तीसरा अध्याय - पूर्वमध्याकालीन काव्यभाषा का स्वरूप 97-148

3.1. कबीर की काव्यभाषा

3.2. जायसी की काव्यभाषा

3.3. तुलसीदास की काव्यभाषा

3.4. सूरदास की काव्यभाषा

3.5. मीराबाई की काव्यभाषा

3.6. निष्कर्ष: पूर्वमध्यकालीन काव्यभाषा के मूल्यांकन का मानदंड

चौथा अध्याय - उत्तरमध्यकालीन काव्यभाषा का स्वरूप 149-197

4.1. रीतिबद्ध कवि आचार्य केशवदास की काव्यभाषा

4.2. रीतिबद्ध कवि मतिराम की काव्यभाषा

4.3. रीतिसिद्ध कवि बिहारी की काव्यभाषा

4.4. रीतिमुक्त कवि भूषण की काव्यभाषा

4.5. रीतिमुक्त कवि घनानंद की काव्यभाषा

4.6. निष्कर्ष: उत्तरमध्यकालीन काव्यभाषा के मूल्यांकन का मानदंड

पाँचवाँ अध्याय - आधुनिक युगीन काव्यभाषा का स्वरूप 199-294

5.1. हिन्दी काव्य में पाश्चात्य तत्वों का प्रभाव

5.2. भारतेंदु-द्विवेदी युगीन काव्यभाषा

5.2.1. अयोध्यासिंह उपाध्याय हरिऔध की काव्यभाषा

5.2.2. मैथिलीशरण गुप्त की काव्यभाषा

5.3. छायावादी कवियों की काव्यभाषा

5.3.1. जयशंकर प्रसाद की काव्यभाषा

5.3.2. सुमित्रानंदन पंत की काव्यभाषा

5.3.3. सूर्यकांत त्रिपाठी निराला की काव्यभाषा

5.3.4. महादेवी वर्मा की काव्यभाषा

5.3.5. हरिवंशराय बच्चन की काव्यभाषा

5.4. प्रगतिवादी कवियों की काव्यभाषा

5.4.1. नागार्जुन की काव्यभाषा

5.4.2. रामधारीसिंह दिनकर की काव्यभाषा

5.4.3. त्रिलोचन शास्त्री की काव्यभाषा

5.5. प्रयोगवादी कवियों की काव्यभाषा

5.5.1. सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन अज्ञेय की काव्यभाषा

5.5.2. गजाननमाधव मुक्तिबोध की काव्यभाषा

5.5.3. शमशेर बहादुरसिंह की काव्यभाषा

5.6. निष्कर्ष: आधुनिक युगीन काव्यभाषा के मूल्यांकन का मानदंड

उपसंहार 295-303

परिशिष्ट – हिन्दी काव्यभाषा का ऐतिहासिक स्वरूपक्रम 305-311

सहायक ग्रंथसूची 313-342

उन ज्ञात-अज्ञात -

हिन्दी कवियों के लिए

जिनके काव्य शब्द

मेरी शोध साधना के मूल श्रोत रहे ।

अध्याय एक
भाषा और कविता

भाषा रूपी ज़्योति से यह जगत और मानव प्रकाश की ओर निरंतर अग्रसर है । आधुनिक युग में मानव अपने प्रगतिशील मार्ग पर अग्रसर है। आज मानव सामाजिक, सांस्कृतिक क्षेत्रों में विकास लाया है । मानव ने ये सब विकास भाषा के सहयोग से प्राप्त की है । प्राचीन काल से लेकर अब तक भाषा का विकास अवरुद्ध नहीं हुई है । उसका पथ विकासोन्मुख है ।

समाज में भाषा का जितना महत्त्वपूर्ण स्थान है वही स्थान साहित्यिक क्षेत्र में कविता को है। कविता भाव प्रधान, रमणीय एवं लय युक्त अभिव्यक्ति होने के कारण समाज से सीधा संबंध रखती हैं । कविता को आनंदमय बनाने में शिल्प का महत्त्वपूर्ण स्थान है । प्रत्येक व्यक्ति कविता लिखने का प्रयोस करता है । यदि शिल्प का ज्ञान है तो वह उसका लाभ उठा सकता है ।

मनोयोग पूर्वक देखें तो स्पष्ट हो जाता है कि कविता में उसके विषय से ज़्यादा शिल्प ही पाठकों का ध्यान आकर्षित करता है । कविता के विषय या भाव में परिवर्तन बहुत ही धीरे आ जाते हैं । अतः एक युग की कविता दूसरे युग की कविता से ज़्यादा भिन्न नहीं दिखता । लेकिन जब अभिव्यक्ति के साधन (भाषा) या अभिव्यक्ति के प्रकारों में परिवर्तन होता है तो यह अंतर स्पष्ट ही सामने उभरता है । इसी अभिव्यक्ति-कौशल से ही प्रत्येक कवि साहित्य क्षेत्र

में अपना अलग स्थान पाते हैं । कवि जब शिल्प पर नए-नए प्रयोग लाते हैं तो विषय प्रभावशाली बन जाते हैं । अभिव्यक्ति कौशल के नवीन प्रणाली द्वारा कवि पाठकों पर प्रभाव डालता है ।

1.1 भाषा और कविता का अन्तःसंबंध

काव्य रचना और भाषा-साधना का पारस्परिक सुदृढ़ संबंध हैं । भाषा का विषय जितना सरस और मनोरम है, उतना ही गंभीर और कौतूहल जनक । भाषा मनुष्यकृत है । देश, काल और आवश्यकताएँ ही उनके सृजन का आधार है, मनुष्य सहयोग ही उनका प्रबल संबल है । भाषा की जड़ मनुष्य की वाणी है, जिससे भाषा विकसित हुई है । जीवित बोली को हम भाषा मानते हैं । दुनिया में सैकड़ों बोली और लिखित भाषाएँ हैं । बोली जानेवाली सभी भाषाओं में लिखित साहित्य होना संभव नहीं है । भाषाशास्त्र में बोली को महत्व प्राप्त होने का कारण यही है । उच्चरित बोलियों की ध्वनियों में अंतर होना स्वाभाविक है । लेकिन भाषाशास्त्री इसकी ओर ध्यान न देकर भाषा में प्रतिबिंबित अनुभूतियों, भावों तथा संवेगों पर वैयक्तिक तथ्यों के रूप में विचार करते हैं । प्रत्येक संदर्भ में भाषा प्रत्येक अर्थ व्यक्त करता है । भाषा तात्विक संदर्भ में उच्चरित भाषा लिखित भाषा के अर्थ में लेखन व्यवस्था का अर्थ प्रदान करता है । बोली जानेवाली और लिखित भाषा की मूल इकाई क्रमशः ध्वनिग्राम और वर्णग्राम है । आदिकाल में बोलीजानेवाली भाषा के प्रतिबिंबित रूप में लेखन-कला का विकास हुआ । लोगों की जाननेवाली भाषा के अपूर्ण प्रतिबिंब है लिखित भाषा । भाषा की निश्चित व स्थिर परंपरा होने के कारण ही वैदिक भाषा अपने किंचित् परिवर्तन के कारण आज भी सुरक्षित है ।

अनेक पंड़ितों ने भाषा को परिभाषित करने का प्रयास किया है । उनमें कुछ प्रमुख परिभाषाएँ इस प्रकार हैं –

अंग्रेज़ी साहित्यकार स्वीट के अनुसार 'ध्वन्यात्मक शब्दों द्वारा विचारों का प्रकटीकरण ही भाषा है ।' अर्थात् विचारों की अभिव्यक्ति ध्वन्यात्मक शब्दों के द्वारा होता है । आधुनिक कवि गुणे की राय में 'ध्वन्यात्मक शब्दों द्वारा पद्यगत भावों तथा विचारों का प्रकटीकरण ही भाषा है ।' यानी भाषा वह है जो भावों और विचारों को ध्वन्यात्मक शब्दों के माध्यम से अभिव्यक्त करती हैं । प्रमुख साहित्यकार जेस्पर्सन के मत में 'मनुष्य ध्वन्यात्मक शब्दों द्वारा अपना विचार प्रकट करता है । मानव मस्तिष्क वस्तुतः विचार करने के लिए ऐसे शब्दों का निरंतर उपयोग करता है । इस प्रकार के कार्यालाप को ही भाषा की संज्ञा दी जाती है ।' इसका आशय यह है कि मानव मस्तिष्क ध्वन्यात्मक शब्दों द्वारा सोच-विचार करते हैं और विचारों की अभिव्यक्ति भी करती हैं । पाश्चात्य साहित्यकार वन्द्रिए के मत में 'भाषा एक प्रकार का चिह्न है । चिह्न से तात्पर्य उन प्रतीकों से है जिनके द्वारा मनुष्य अपने विचार दूसरों पर प्रकट करता है । ये प्रतीक भी कई प्रकार के होते है; जैसे - नेत्रग्राह्य और स्पर्शग्राह्य । वस्तुतः भाषा की दृष्टि से श्रोतग्राह्य प्रतीक ही सवश्रेष्ठ है ।' इन्होंने भाषा को प्रतीक के रूप में मान्यता प्रदान दी है । भारतीय साहित्यकार श्री बाबूराम सक्सेना की राय में 'जिन ध्वनि चिह्नों द्वारा मनुष्य परस्पर विचार-विनिमय करता है उसे भाषा कहते है ।' यह भाषा की सबसे सरल परिभाषा है । प्रमुख

साहित्यकार सुकुमार सेन के अनुसार 'अर्थवान कण्ठोद्गीर्ण ध्वनि-समष्टि ही भाषा है ।' अर्थात् अर्थयुक्त ध्वनि ही भाषा है । अंग्रेज़ी साहित्यकार ब्लाक तथा ट्रैगर के अनुसार 'भाषा यादृश्चिक वाक्-प्रतीकों की वह व्यवस्था है जिसके माध्यम से मानव समुदाय परस्पर व्यवहार करता है ।' यानी व्यवहार के लिए प्रयुक्त यादृश्चिक वाक्-प्रतीकों को भाषा कहते हैं ।

हर एक भाषा की संज्ञा, सर्वनाम, विशेषण, विस्मयादि बोधक और क्रियापदों की अपनी एक व्यवस्था हैं । प्रतीकात्मक और अर्थवान शब्दों या वाक्यों के उच्चारण से वाक्-प्रतीक बनते हैं । वैयाकरणों ने व्याकरण के आधार पर भाषा की परिभाषा देने का प्रयास किया है । उनके मतानुसार भाषा-विशेष के व्याकरण संबंधी ध्वनियों, पदों, धातुओं, प्रत्ययों, वाक्यों एवं अर्थों जैसे मूल अंगों की एक व्यवस्था है । कोशकार के लिए भाषा अर्थवान शब्दों से निर्मित है और उसकी एक लंबी इतिहास परंपरा भी है । साहित्यकार के लिए वह सुव्यवस्थित श्रृंखला है जिससे समन्वित प्रभाव कर सकते हैं । कुछ भाषा वैज्ञानिक भाषा के ध्वन्यात्मक पक्ष पर विशेष बल देते हैं । अतः वे भाषा की परिभाषा हिन्दी ध्वनि के आधार पर देते हैं । उनका मत है कि मनुष्य की मुख से निकलनेवाली हर एक सार्थक शब्द या ध्वनि भाषा ही है ।

शब्द-तत्त्व की दृष्टि से देखें तो भाषा के विभिन्न शब्द – संज्ञा, सर्वनाम, विशेषण, क्रिया, अव्यय, विभक्ति, उपसर्ग आदि के द्वारा भाषा नहीं बन सकता । उसके लिए उन तत्वों को एक विशेष क्रम से नियोजित होना है और पूर्ण अर्थ

को द्योतित करना है । भाषा-प्रकृति की दृष्टि से भाषा मनुष्य की मानसिक और शारीरिक प्रक्रिया से उत्पन्न है । यह ध्वनियों द्वारा अपने विचारों और भावों को प्रकट करती है । विस्तृत और संकीर्ण दृष्टियों से भाषा पर विचार कर सकते हैं । विस्तृत अर्थ में भाषा कायिक एवं वाचिक दृष्टि से आदान-प्रदान या व्यवहार का माध्यम है । यहाँ भाषा ध्वनियों तक सीमित होते हैं ।

मनुष्य-मनुष्य के बीच सामाजिक व्यवहार स्थापित करने के लिए भाषा की ज़रूरत होती है । भाषा की सामाजिकता को व्यक्त करते हुए डॉ.देवेन्द्रनाथ शर्मा कहते हैं कि भाषा की उत्पत्ति और विकास समाज में होती है । जिस प्रकार समाज से अलग होकर मनुष्य का जीना मुश्किल है उसी प्रकार समाज से अलग होकर भाषा का भी अस्तित्व नहीं रहता । भाषा के कई रूप होते हैं – मातृभाषा, जीवित भाषा, सहवर्ती भाषा आदि । इन सबके द्वारा हम प्रतीकों की प्रतिस्थापना करते हैं । अर्थात् भाषा प्रतीकात्मक है ।

भाषा के कुछ विशिष्ट गुण इस प्रकार हैं – 1) भाषा निरंतर स्वाभाविक प्रवृत्ति न होकर ऐच्छिक व्यवहार है । 2) भाषा निरंतर अभ्यास से प्राप्त किया जाता है । 3) भाषा यादृश्चिक भावों और विचारों के आदान-प्रदान के संप्रेषणीय रूप है । 4) भाषा जन सामान्य के बीच विकसित होनेवाली एक रूढ़ परंपरा है । 5) प्राचीन विचारों की रक्षा करने की तथा नवीनतम परिवर्तनों का विरोध करने की क्षमता भाषा में है । 6) व्याकरण और शैली में महत्त्वपूर्ण प्रभाव डालने की क्षमता भाषा के रेखाक्रम को है । 7) प्रत्येक भाषा में चमत्कार उत्पन्न करने

के लिए उपर्युक्त अल्प संख्यक पृथक ध्वनियों को ध्वनिग्राम या स्वनिम कहते हैं । इसमें भाषागत ध्वनियाँ अल्पमात्र है । 8) भाषा एक साथ क्रमिक और क्रम विहीन पद्धति है तो नियमित और अनियमित भी । 9) भाषा अर्जित होती है ।

साधारणीकरण का अपेक्षा रखनेवाले भावों जैसे अतिसूक्ष्म, मर्मस्पर्शी, मानव-संवेदनाओं, तीव्र अनुभूतियों, मर्मांतक भावों को अभिव्यक्त करने में सामान्य भाषा असमर्थ है । इसे कवि काव्यभाषा द्वारा अभिव्यक्त करते हैं । श्री रामधारीसिंह दिनकरजी के अनुसार – "किन्तु यह भी सत्य है कि भाषा का जो रूप जनता के अवचेतन मन में बसता है, उसे पूर्ण रूप से आत्मसात किये बिना कोई भी कवि साधारणीकरण की प्रक्रिया में सफलता नहीं प्राप्त कर सकता ।"[1] यहाँ दिनकरजी का कथन बहुत ही समीचीन है कि कवि को साधारण जनता की, बोलचाल की भाषा की तह तक जाना है, उसे आत्मसात करना है ।

काव्य उत्तम वस्तु है क्योंकि वह रस स्निग्ध भाव मूलक है । लेकिन इसको स्पष्ट, उत्कृष्ट तथा सौंदर्य-संपन्न बनाने के लिए भाषा की आवश्यकता है । भाव कविता का प्राण है परंतु उसकी कलात्मकता, आकर्षण-संपन्नता, प्रभविष्णुता, भाव-गांभीर्य की शक्ति और संप्रेषणीयता भाषा के द्वारा संपन्न होती है । उसी प्रकार काव्य में प्रयुक्त होने से भाषा को एक अपूर्व रागात्मकता, अर्थवत्ता, एक अलौकिक सुंदरता आ जाती है, जिससे भाव सुसज्जित तथा दीप्त होता है । इससे

[1] रामधारीसिंह दिनकर – राष्ट्रभाषा और राष्ट्रीय एकता, पृ.3-4

यह सिद्ध होता है कि काव्य की उत्कृष्टता की अनिवार्य तत्त्व एवं शर्त काव्यभाषा ही है । काव्यभाषा में काव्य का निजी महत्व अंतर्निहित है ।

लोक-व्यवहार की भाषा को हम भाषा या सामान्य भाषा कहते हैं । दैनिक जीवन के कार्यों का संपादन करना या किसी भी प्रकार (बोधगम्य रूप में) अपने भावों या विचारों को व्यक्त करना आदि इसका लक्ष्य होता है । इसके लिए बौद्धिक, तर्क पूर्ण संकेतगृहवाले और पारिभाषिक शब्दों का प्रयोग करते हैं । इसका प्रमुख गुण है – बोद्धात्मकता, सरलता, सहजता, सप्राणता, व्याकरण सम्मतता, परिवर्तनशीलता आदि ।

1.2 काव्यभाषा और गद्यभाषा में अंतर

'वाड़मय' वाणी का वह दृश्यादृश्य रूप है जो निर्गुण निराकार और सगुण साकार है । इसके दो रूप हैं – उच्चरित ध्वनि और लिखित लिपि । लोक व्यवहार के आधार पर इसके दो रूप हैं – एक वह जिसके द्वारा पूर्वार्जित ज्ञान की समृद्धि होती है और दूसरा वह जो मन को रमाया करता है । इसमें पहले का संबंध बुद्धि या मस्तिष्क से होता है तो दूसरे का संबंध भाव, हृदय या मन से है । इसलिए पाश्चात्य विद्वानों ने इसे क्रमशः ज्ञान का वाड़मय और भाव का वाड़मय कहा है तो भारतीय पंडितों ने इसे क्रमशः शास्त्र और काव्य कहा है । शास्त्र और काव्य का संबंध भाषा से है ।

लेखक और कवि अपनी अनुभूति पाठकों तक पहूँचाने की कामना करते हैं । कभी-कभी कवि या लेखक एक ही विषय पर गद्य रचना और काव्य की

रचना करते हैं । उदाहरण के लिए अज्ञेयजी ने 'नदी के द्वीप' नाम से कविता तथा गद्य रचना (उपन्यास) की है । उसी प्रकार हम देखते हैं कि काव्यभाषा और गद्यभाषा में लोकोक्ति तथा मुहावरों का प्रयोग अब भी प्रचुर मात्रा में है । सामान्य भाषा में प्रयुक्त मुहावरों का प्रयोग काव्यभाषा में भी हम देख सकते हैं । इसके विपरीत काव्यभाषा में प्रयुक्त मुहावरों का प्रयोग सामान्य भाषा में भी मिलते हैं और वह प्रयोग के कारण सामान्य सी प्रतीत होती है । मुहावरे और लोकोक्ति विहीन काव्य और गद्य विरले है । लेकिन गद्य में इसका प्रयोग करते समय लेखक को सावधानी बरतनी पडती है । उदाहरण के लिए –

"लहरें व्योम चूमती उठतीं,
चपलायें असंख्य नचतीं,
गरल जलद की खडी झडी में,
बूँदें निज संसृति रचतीं।"[2]

यहाँ 'गरल जलद की खडी झडी' के द्वारा जितना प्रभाव उत्पन्न हुआ है उतना प्रभाव अन्य शब्द या वाक्य से उत्पन्न नहीं किया जा सकता । उसी प्रकार "जिसने यह कुआँ खोदा, उसीकी आत्मा पानी को तरसे।"[3] यह भी प्रभावोत्पादक मुहावरा है ।

[2] जयशंकरप्रसाद – कामायनी, चिंता सर्ग, पृ 26

[3] प्रेमचंद – मानसरोवर भाग 1, पृ 55

प्राचीन काल से लेकर काव्यभाषा और गद्यभाषा में भिन्नता को स्पष्ट करने का प्रयास हो रहा है । लेकिन इस भिन्नता को स्पष्ट करना कठिन है । संस्कृत आचार्यों ने काव्य की सरसता और रमणीयता की कसौटी के आधार पर काव्यभाषा और गद्यभाषा में अंतर माना है । उनके मतानुसार सरस और रमणीय गद्य भी काव्य है और इसके अभाव में काव्य भी गद्य है ।

साहित्य तथा शास्त्र विषयों में जो अंतर है उसका एक प्रमुख कारण भाषा है । इससे तात्पर्य यह है कि शास्त्र तथ्यपरक होने के कारण उसके शब्द नीरस या भावविहीन, आवेश और अलंकरण-रहित होते हैं जबकि काव्य तथा साहित्यिक भाषा इसके विपरीत है । काव्यगत चिन्तन और वैज्ञानिक चिन्तन में भेद स्पष्ट करते हुए दिनकरजी का मत है कि विज्ञान और कविता में भेद है वह दोनों के भाषा प्रयोगों में स्पष्ट हो जाता है । वैज्ञानिक और कवि शब्द तो प्राय: एक ही कोश से लेते है किन्तु शब्दों को वाक्य के भीतर बिठाने में दोनों के तरीकों में भेद पड़ जाता है । इसी प्रकार साहित्य के क्षेत्र में देखें तो काव्य तथा अन्य विधाओं की भाषा में स्पष्ट अंतर दृष्टिगत है । व्याकरण, शब्दशक्ति, छंद और लय तथा प्रतीक और बिम्ब योजना के आधार पर काव्यभाषा और गद्यभाषा का तुलनात्मक अध्ययन इस प्रकार किया जा सकता है –

भाषा व्याकरणबद्ध है । लेकिन मानव-चेतना की अतल गहराइयों में होनेवाली तीव्र उद्वेलनों से उदित कविता कभी-कभी इन बंधनों को तोड़ती है । क्योंकि उस समय कविता को बोलचाल की भाषा, कामचलाऊ भाषा या गद्य की

भाषा पर्याप्त नहीं होता । गद्यभाषा तथा काव्यभाषा और इसकी व्याकरणिक संरचना भी सामान्य भाषा पर आधृत होती है । अर्थात् सब भाषाएँ सामान्यभाषा से जन्म लेकर विकसित हुई है । आम जनता की भाषा हमेशा सरल होती है । बल्कि काव्यभाषा और गद्यभाषा में उच्च स्तरीय, अप्रचलित, क्लिष्ट, नवीन तथा लक्षणा-व्यंजना युक्त शब्दों के प्रयोग होने के कारण लोगों को कठिन लगते हैं । उसी प्रकार काव्यभाषा सर्जनात्मक भाषा होने के कारण कालानुसार उसके शब्द, अर्थ आदि में परिवर्तन होता है । इसी कारण काव्यभाषा का सरल प्रयोग नहीं किया जा सकता । कभी-कभी ये अच्छे जानकारों को भी कठिन लगते हैं । गद्यभाषा व्याकरण सम्मत होती है तो काव्यभाषा में इसकी परवाह नहीं होती । व्याकरण से विशेष तात्पर्य शब्दक्रम यानी संज्ञा, कर्म, क्रिया से है ।

गद्यभाषा में शब्द विन्यास की एक व्यवस्था होती है । गद्यभाषा में वाक्य, पद, विशेषण आदि क्रम होता है । लेकिन काव्यभाषा में इस क्रम में परिवर्तन होता है । काव्यभाषा में छंद और लय का निर्वाह होने के कारण यह क्रम बदलता रहता है । अर्थात् सच्ची कविता के लिए बाह्य दबाव को आंतरिक विवशता में परिवर्तित होना पडता है । क्रम का पालन करने पर काव्य सौंदर्य नष्ट हो जाता है । उदाहरण के लिए –

"देखे मैंने वह शैल-शृंग"[4]

इस पंक्ति में क्रम का पालन नहीं हुआ है । यदि क्रम रहा हो तो इसकी गति तथा सौंदर्य नष्ट हो जाता । अर्थात् काव्य में सैंदर्य तत्व लाने के लिए साधारण भाषा क्रम का उल्लंखन करना आवश्यक है ।

कविता में शब्द-शक्तियों का प्रयोग अनिवार्य है । इसके लिए कविता में नये-पुराने शब्दों का प्रयोग होते हैं । अन्य विधाओं की भाषा की तुलना में काव्यभाषा की यह एक विशेषता है । कविता कवि की निजी अनुभूति होने के कारण कवि को प्रचलित-अप्रचलित, नये-पुराने, ग्रामीण-शहरी शब्दों का प्रयोग करने का अधिकार है । गद्य में इसकी कुछ सीमा होती है क्योंकि गद्य में पुराने शब्द का प्रयोग प्रभाव उत्पन्न करने में बाधा होती है । गद्य में पाठक प्रचलित, पुराने शब्दों से ज़्यादा परिचित कोशगत शब्द एवं अर्थ जानते हैं । गद्य को लोग प्रायः ज्ञानार्जन के लिए पढ़ते हैं । तब पुराने शब्द इसके लिए बाधा उत्पन्न करता है । इसी कारण गद्य में परिनिष्ठित शब्दों का प्रयोग करते हैं । कविता में जहाँ प्रत्येक सार्थक शब्द एक इकाई है वहाँ गद्यभाषा में वाक्य इकाई होता है । काव्यभाषा में शब्द का स्थान सर्वोपरि है । काव्यभाषा में हर एक सार्थक शब्द का अपना स्वतंत्र अस्तित्व है । वह अकेले बहुत कुछ कह सकते हैं पर गद्यभाषा में मात्र शब्द से काम नहीं चलता बल्कि संपूर्ण वाक्य से आशय प्रकट करते हैं । जहाँ काव्य में शब्द का महत्त्व है वहाँ गद्य में वाक्य

[4] जयशंकरप्रसाद – कामायनी, इडा सर्ग, पृ 169

का महत्त्व है । केदारनाथ अग्रवालजी का कहना है कि शब्द और कुछ नहीं इन्द्रियबोध से प्राप्त मूर्त जगत् के दूसरे अस्तित्व की संकेतबद्ध इकाइयाँ है जो कालक्रम के साथ-साथ रहने लगी हैं और साथ-साथ रहते-रहते वाक्य बन गयीं और वाक्य बनकर भाषा बन गयीं और तभी इन शाब्दिक इकाइयों को अपना निजी एकाकी अस्तित्व खो देना पड़ा और यह मिल-जुलकर सार्थक समूह हो गयीं और इसी सार्थक समूह को भाषा कहा जाने लगा और यही भाषा मूर्त जगत् के दूसरे अस्तित्व को प्रकट करने लगी । उसी प्रकार शब्द के संबंध में आधुनिक कवि धूमिल ने इस प्रकार लिखा है –

"शब्द किस तरह
कविता बनते हैं
इसे देखो
अक्षरों के बीच गिरे हुये
आदमी को पढ़ो"[5]

इससे यह पता चलता है कि कविता में शब्द का महत्त्व कितना है ।

भोलानाथ तिवारीजी के मत में सामान्यभाषा से तात्पर्य साधारण या आम जनता द्वारा प्रयुक्त भाषा मात्र नहीं है । अर्थात् कभी-कभी सामान्य शब्दों का प्रयोग काव्यभाषा में हम देख सकते हैं और इसके ठीक विपरीत काव्यभाषा में प्रयुक्त शब्दों का प्रयोग सामान्यभाषा में भी होता है ।

[5] धूमिल – कल सुनना मुझे, पृ.80

सामान्यभाषा के शब्द कोशार्थ और अभिधार्थ प्रधान होते हैं क्योंकि ये केवल बाहरी सूचना प्रदान करती है । लेकिन काव्यभाषा के शब्द लक्ष्यार्थ व व्यंग्यार्थ भी प्रदान करते हैं क्योंकि ये आंतरिक अर्थ सूचित करती है । उदाहरण के लिए 'भौरा' शब्द सामान्य अर्थ में केवल 'उड़नेवाला एक कीड़ा' होता है । लेकिन काव्यभाषा में यह 'प्रेम का दिखावा करनेवाला' होता है ।

यह तो सर्वविदित है कि कविता में शब्द-शक्तियों का प्रयोग अनिवार्य हो जाता है और ध्वनि काव्य उत्तम कोटि का काव्य माना जाता है । काव्यभाषा अनेकार्थक, लक्ष्यार्थ और व्यंग्यार्थ प्रधान होने के कारण हमेशा नयी या ताज़ी लगती है । लक्षणा एवं व्यंजना शब्द-शक्तियों के द्वारा काव्य में अर्थ की सफल अभिव्यक्ति संभव है । इसलिए काव्यभाषा में शब्द-शक्तियों की अनिवार्यता है । लेकिन गद्यभाषा में इसकी आवश्यकता नहीं है । गद्यभाषा में सीधा अर्थ ग्रहण होता है । अर्थात् गद्यभाषा अभिधा प्रधान है । लक्षणा, व्यंजना का प्रयोग गद्यभाषा में अर्थ का अनर्थ पैदा करता है । उदाहरण के लिए –

"ईश जानें, देश का लज्जा विषय
तत्त्व है कोई कि केवल आवरण
उस हलाहल-सी कुटिल द्रोहाग्नि का
जो कि जलती आ रही चिरकाल से
स्वार्थ-लोलुप सभ्यता के अग्रणी
नायकों के पेट में जठराग्नि-सी"[6]

[6] रामधारीसिंह दिनकर – कुरुक्षेत्र , पृ 9

यहाँ सीधे अर्थ ग्रहण करने से आशय व्यक्त नहीं हो सकता । यहाँ वर्तमान स्थिति की ओर कवि ने इशारा किया है ।

काव्यभाषा का गुण और वैशिष्ट्य है – अर्थवैविध्य । आधुनिक अंग्रेज़ी आलोचक रैनसम का मत है कि काव्यभाषा भी अपने तर्क प्रधान, बौद्धिक और गद्यात्मक अर्थ अंतर्निहित किए रहती है पर मूलतः वह काव्यभाषा इसलिए है कि अर्थ और ध्वनि संयोजन के अंतर्विरोध एवं उनके बीच तनाव के फलस्वरूप उसमें अबौद्धिक एवं अतर्क्य अर्थ का भी समावेश रहता है । अंग्रेज़ी साहित्यकार क्लीथ ब्रुक्स का मत है कि विरोधाभास ही काव्यभाषा की आधारशिला है और उसकी भाषा विरोधाभास की भाषा होती है । लेकिन सामान्य और शास्त्रीय भाषा के लिए यह दोष है । सामान्यभाषा में अर्थ सीमित और निश्चित होते हैं । लेकिन काव्यभाषा में अर्थ की सीमा नहीं होती । दूसरे शब्दों में कहें तो काव्यभाषा में शब्द अनेकार्थी होता है और गद्यभाषा में शब्द एकार्थी होता है । गद्यभाषा के शब्द द्वयार्थी होने पर अर्थग्रहण करने में बाधा उत्पन्न हो जाती है । जैसे –

"कनक कनक तें सौगुनि मादकता अधिकाय
ये खाये बौराय, वो पाये बौराय"[7]

यहाँ 'कनक' शब्द के दो अर्थ होते हैं – एक है सोना और दूसरा है धधूरा । गद्य में इस प्रकार का प्रयोग न के बराबर है और यदि है तो वह अनर्थ पैदा करता है ।

[7] लालाभगवानदीन दीन – बिहारी बोधिनी, पृ 229

छंद काव्य का प्रमुख तत्व है । पुराने ज़माने से छंद को काव्य लक्षण के रूप में मान्यता प्राप्त थी । कविता में संगीत तत्व लाने के लिए इसकी आवश्यकता है । एक ही कविता में अनेक छंदों का प्रयोग मिलते हैं । छंदों के सफल प्रयोग में भावों की सफल अभिव्यक्ति निहित है । छंद युक्त रचना लिखना हर किसी के वश की बात नहीं है । गद्य रचना को भूलने और कविता को याद रखने का मुख्य कारण यही है । क्योंकि छंद और लय काव्य को संगीतात्मकता प्रदान कर उसे स्मरण रखने योग्य बनाता है । लेकिन गद्य में छंद और लय के अभाव के कारण संगीतात्मकता नहीं है और इसलिए लोग गद्यांश का उतना याद नहीं रखता जितना काव्य स्मरण करते हैं । कविता जितना गद्य के निकट आती है उतनी कठिनाई उसे याद रखने में भी होती है । स्मरण रखने के कारण गद्य की अपेक्षा कविता अधिक उद्धृत की जाती है । मुक्त छंद के लिए उदाहरण –

"घुट रही नर बुद्धि की है साँस,
चाहती वह कुछ बड़ा जग, कुछ बड़ा आकाश,
यह मनुज, जिसके लिए हो रहा भूगोल,
अपर-ग्रह-जय की तृषा जिसमें उठी है बोल ।
यह मनुज विज्ञान में निष्णात,
जो करेगा स्यात्, मंगल और विधु से बात ।"[8]

यहाँ मुक्त छंद मात्रिक पंक्तियों के साथ तुक साम्य रखते हैं ।

[8] रामधारीसिंह दिनकर – कुरुक्षेत्र, पृ 72

काव्य अलंकार प्रधान होने के कारण अलंकार काव्यभाषा का विशेष गुण है । काव्यभाषा में शब्दालंकार और अर्थालंकार का प्रयोग होते हैं । गद्यभाषा में इसका प्रयोग नहीं होता । गद्यभाषा में इसका अभाव होने के कारण ज़्यादातर लोगों के लिए काव्यभाषा की अपेक्षा गद्यभाषा अधिक बोधगम्य होती है । अलंकार के लिए एक उदाहरण दृष्टव्य है –

"मोर मुकुट की चन्द्रकनि, यों राजत नँदनन्द ।

मनु ससिसेखर के अकस, किय सेकर सत चन्द ।।"[9]

यहाँ उत्प्रेक्षा अलंकार द्वारा आशय व्यक्त किया गया है ।

अधिकांश कविताएं रस प्रधान होते हैं । बिना रस के कविता रोचक नहीं होती । इसलिए काव्यभाषा में शृंगार, वीर, करुण, हास्य, अद्भुत, रौद्र, भयानक,और शांत आदि नव रसों का प्रयोग करते हैं । गद्य लेखक की अपेक्षा कवि में रस उत्पन्न करने की क्षमता अधिक है । बड़ी सावधानी, मनोयोगिता और चतुराई से ही काव्य में रस की सिद्धि होती है । गद्य रचना रस से ज़्यादा विचार प्रधान है । इस कारण उसमें विचारों को सीधे पाठकों तक पहूँचाने का प्रयास होता है। इसलिए गद्यभाषा हमेशा नीरस होती है और काव्यभाषा सरस होती है ।

सामान्यभाषा की अपेक्षा काव्यभाषा में वक्रता अधिक है । काव्यभाषा में भाव, विषय, रस आदि का वैविध्य वक्रता के द्वारा उत्पन्न होता है । इससे

[9] लालाभगवानदीन दीन – बिहारी बोधिनी, पृ 65

कविता द्वयर्थक या अनेकार्थी बनती है । गद्यभाषा में वक्रता का अभाव है । वक्रता कविता को रोचक तथा पढ़नीय बनाता है । उदाहरण के लिए –

"कोकिल की काकली वृथा ही अब कलियों पर मंडराती"[10]

यहाँ 'काकली' शब्द द्वारा वक्रता की सृष्टि की गई है जिससे काव्य रोचक बन गया है ।

काव्यभाषा में रचनाकार के व्यक्तित्व की छाप होती है । यानी अपने प्रिय छंद, अलंकार, शब्द आदि का प्रयोग कवि बार-बार प्रयुक्त करते हैं । इसलिए किसी पंक्ति सुनकर हम यह कह सकते हैं कि ये निराला की हैं या प्रसाद की । लेकिन गद्यभाषा में यह कहना कठिन है । भाषा का यह गुण इसी मात्रा में गद्यभाषा में उपलब्ध नहीं है । गद्यभाषा परंपरा को स्वीकारती है । परंपरागत ध्वनि, रूप-रचना, शब्द प्रयोग, वाक्य-रचना आदि का प्रयोग करते हैं । काव्यभाषा इनमें नवीन प्रयोगों से नवीनता लाती है । वाक्य-गढ़न में भी हम यह देख सकते हैं ।

कविता की भाषा भाव तथा अनुभूति पर आधारित है जबकि गद्यभाषा विचार प्रधान है । कवि अपनी वैयक्तिक अनुभूतियों को ही अभिव्यक्त करता है । ये अनुभूतियाँ विशिष्ट होने के कारण भाषा में अभिव्यक्त करना संभव नहीं है । क्योंकि उसमें सामंजस्य का अभाव उत्पन्न होता है । इसके लिए विशिष्ट भाषा की आवश्यकता होती है । काव्यभाषा कवि की अनुभूतियों और भावों पर

[10] जयशंकर प्रसाद – कामायनी, स्वप्न सर्ग, पृ 187

आधारित होने के कारण उसकी अपनी व्यवस्था होती है । लेकिन तटस्थता से देखने और सिद्धांतों पर अधिष्ठित होने के कारण गद्यभाषा अधिक संकेतात्मक और विचार प्रधान है । काव्यभाषा अधिक सांकेतिक होने पर सामान्य जनता उसे समझने में कठिनाई अनुभव करते हैं । गद्य में ऐसी समस्या नहीं उठती है ।

भोलानाथ तिवारीजी ने दोनों भाषाओं को मूलत: एक ही माना है । क्योंकि दोनों की ध्वनि, शब्द रूप, वाक्य, अर्थ जैसी भाषिक सामग्रियों में एकरूपता है । इन दोनों में अंतर इस बात में है कि गद्यभाषा इन सामग्रियों का यों ही प्रयोग करते हैं । लेकिन काव्यभाषा कल्पना से इसे सुसज्जित करके प्रयोग करते हैं । इसलिए काव्यभाषा अधिक आकर्षक और प्रभावशाली होती है । इस तरह काव्यभाषा और गद्यभाषा दोनों एक दूसरे को प्रभावित करती रहती है और सामान्यभाषा के कारण ही काव्यभाषा का विकास हुआ है । आधार भाषा के रूप में सामान्य भाषा को स्वीकार किया जाता है ।

सामान्यभाषा यथार्थ जगत से जुड़ी हुई है । पर काव्यभाषा काल्पनिक एवं काव्य संसार के आत्यंतिक मूल्यों से अनुप्राणित है । इसमें कवि के भावनालोक एवं काल्पनिक भाव-विचार आते हैं । इसके द्वारा ही कवि हमें एक ऐसे लोक में ले जाता है जो मात्र कल्पित है । लोकिन गद्यभाषा में व्यक्त विचार वास्तविक जगत से जुड़ी हुई होती है । गद्यभाषा सामान्य अनुभवों पर आधारित होती है पर काव्यभाषा विशिष्ट तथा सर्जनात्मक होती है ।

अंग्रेज़ी साहित्यकार एमर्सन के अनुसार काव्यभाषा की प्रतीक-पद्धति प्रत्यय और अभिव्यक्ति के बीच लचीला संबंध लाने के लिए अर्थ को विकल्प के रूप में स्वीकारती है तो गद्यभाषा अर्थ को विकल्प के रूप में अपनाते हुए इन दोनों के बीच रूढ़ और निश्चित संबंध स्थापित करता है । विकल्प की उपस्थिति के कारण काव्यभाषा में संदिग्धता और अनेकार्थता रहती है । लेकिन इसके अभाव के कारण गद्यभाषा एकार्थी रहती है । गद्यभाषा एकार्थी होने से पाठकों के सामने किसी भी प्रकार का विकल्प उपस्थित नहीं होता । लेखक जो व्यक्त करना चाहता है वही अर्थ पाठक ग्रहण करते हैं । उसी प्रकार गद्य में अनेक विधाएँ होती हैं । इसलिए पाठक अपनी रुचि के अनुसार कहानी, उपन्यास, नाटक, एकांकी, निबंध, ललित निबंध आदि पढ़ सकता है । लेकिन कविता में इस तरह का कोई विकल्प नहीं होता । यानी काव्यभाषा सूक्ष्म रूप से एक ही है और गद्यभाषा सूक्ष्मत: विभिन्न भाषाई रूपों में है ।

गद्यभाषा और काव्यभाषा के उद्देश्य में भी अंतर है । सामान्य सूचना पहूँचाना ही सामान्यभाषा का उद्देश्य है और विशिष्ट आनंद को मूल रूप में प्रस्तुत करना काव्यभाषा का उद्देश्य है । कवि अपनी वैयक्तिक अनुभूतियाँ पाठकों के सम्मुख प्रस्तुत करके पाठकों को भी उसका आनंद दिलाने का प्रयास करते हैं । गद्य में रचनाकार किसी एक तथ्य को प्रस्तुत करने के लिए विवश है । वस्तुत: गद्यभाषा व्यावहारिक जीवन की अभिव्यक्ति है ।

गद्यभाषा में प्रतीक उसके बहुप्रयोग से रूढ़ हो गए हैं । इसलिए पाठक का ध्यान उसकी ओर नहीं जाता । सामान्यभाषा में परंपरागत प्रतीकों का प्रयोग होता है पर काव्यभाषा में कवि की कल्पना या सर्जनात्मकता के कारण प्रतीक नये और ताज़े होते हैं । जैसे –

सामान्यभाषा में – 'सवेरा हो गया ।'

काव्यभाषा में – 'उषा सुनहले तीर बरसती जयलक्ष्मी सी उदित हुई ।'

यहाँ एक ही बात विभिन्न रूप में प्रस्तुत किया गया है । इसलिए हम कह सकते हैं कि काव्यभाषा में प्रयुक्त प्रतीक कविता को आलंकारिक बनाती है ।

कविता में प्रतीक की तरह बिम्ब का भी प्रयोग हम देख सकते हैं । जर्मन आलोचक सार्त्र का मत है कि कविता की दिलचस्पी ध्वनि और बिम्ब में है और न ही विचार पर । उनके अनुसार गद्य के द्वारा ही वैचारिक प्रतिबद्धताओं को चित्रित किया जाता है । लेकिन उनका यह मत सही नहीं है । क्योंकि वैचारिक प्रतिबद्धताओं का चित्रण कविता में भी है । आज के आलोचकों का मत है कि कविता बोलचाल की भाषा से दूर होकर अनावश्यक अलंकृति की ओर बढ़ने का मुख्य कारण बिम्बों का प्रयोग है । इसके साथ-साथ बिम्बों में अस्पष्टता होने पर कविता के मूल्यांकन में बाधा उपस्थित होती है और कविता मात्र चमत्कार प्रदर्शन की वस्तु बन जाती है । इसी कारण आधुनिक आलोचकगण कविता में बिम्बों का विरोध करते हैं । गद्य में बिम्ब की आवश्यकता नहीं, सीधे आशय व्यक्त किया जाता है ।

बिम्ब के लिए उदाहरण –

"इस धारा सा ही जग का क्रम, शाश्वत इस जीवन का उद्गम
शाश्वत है गति शाश्वत संगम !"[11]

यहाँ पूरे जीवन ही बिम्ब के रूप में उभर कर आते है ।

काव्य में भावानुरूप शैली की प्रधानता है । लेकिन गद्यभाषा में व्यास, समास, वर्णनात्मक जैसी शैलियों की प्रधानता है । विषय के अनुसार कवि और लेखक शैली को अपनाता है । भावानुरूप शैली के लिए उदाहरण –

"फूलों पर आँसू की मोती,
और अश्रु में आशा
मिट्टी के जीवन की छोटी-
नपी-तुली परिभाषा ।"[12]

यहाँ भावानुरूप शैली के द्वारा भाषा मधुर, ओजमयी, गतिपूर्ण बन गयी है । वैसी तो काव्य के दस गुणों में से ओज, प्रसाद और माधुर्य अपेक्षाकृत तीन प्रमुख गुण माने जाते हैं और महाकाव्य के लिए तो इनमें से एक गुण अनिवार्य है ।

काव्यभाषा और गद्यभाषा में संवाद का प्रयोग होता है । नाटक में जो संवाद है उसे हम सीधे समझ सकते हैं और अर्थ ग्रहण भी करते हैं । पर

[11] सुमित्रानंदन पंत – ग्रंथि, पृ 126
[12] रामधारीसिंह दिनकर – कुरुक्षेत्र, पृ 110

कविता में प्रयुक्त संवाद को समझना सबके लिए आसान नहीं है । गद्य में प्रयुक्त संवाद प्राय: अभिधात्मक होता है । किन्तु कविता में प्रयुक्त व्यंजना एवं लक्षणा युक्त संवाद को पहचानना कठिन कार्य है । कविता के संवाद में पात्रों का नाम तथा वातावरण का स्पष्ट संकेत नहीं मिलता जितना गद्य के संवाद में है । काव्य में प्रयुक्त संवाद के लिए उदाहरण –

"कुरुक्षेत्र-विजेता, बता निज पाँव
सिंहासन पै धरता नहीं क्यों है?'
'अब बाधा कहाँ ? निज भाल पै पाण्डव
राजकिरीट धरें सुख से"[13]

इसमें कौन किससे कहते है? यह जानने के लिए हमें काव्य को प्रारंभ से पढ़ना आवश्यक है । लेकिन गद्य में इसकी आवश्यकता नहीं है । उदाहरण के लिए –

"मुद्गल :- कहिए कविजी ! आप तो बहुत दिनों पर दिखाई पड़े ! कुलपति की कृपा से कहीं अध्यापन कार्य मिल गया क्या ?

मातृगुप्त :- मैं तो अभी यों ही बैठा हूँ ।

मुद्गल :- क्या बैठे-बैठे काम चल चल जाता है ? तब तो भाई ! तुम बड़े भाग्यवान हो ! कविता करते हो न ? भाई उसे छोड दो ।

[13] रामधारीसिंह दिनकर – कुरुक्षेत्र, पृ 64

मातृगुप्त :- क्यों ? वही तो मेरे भूखे हृदय का आहार है ! कवित्त वर्णमय-चित्र है, जो स्वर्गीय भावपूर्ण-संगीत गाया करता हैं । अंधकार का आलोक से, असत् का सत् से, जड़ का चेतन से और बाह्य का अन्तर्जगत से संबंध कौन कराती है ? कविता ही न !"[14]

यहाँ मात्र इस अंश को लेकर हम बता सकते हैं कि यह कौन किससे कहता है । यह गद्य के संवाद की एक विशेषता है । गद्यभाषा व्याकरण सिद्ध होने से अर्थ ग्रहण में क्लिष्टता नहीं । काव्यभाषाई शब्दों का अन्वय क्रम समझना सबके वश की बात नहीं ।

काव्यभाषा और गद्यभाषा में चित्रात्मकता का प्रयोग हम देख सकते हैं । लेकिन काव्यभाषा में जितनी संक्षिप्त, मधुर शब्दों में वस्तु या प्रकृति का चित्रण अंकित किया जाता है उतने सशक्त रूप में संभव नहीं । काव्यभाषा में चित्रात्मकता के लिए एक उदाहरण निम्नांकित है –

"रागानल के बीच पुरुष कंचन-सा जलनेवाला,
तिमिर सिन्धु में डूब रश्मि की ओर निकलनेवाला,
ऊपर उठने को कर्दम से लडता हुआ कमल-सा,
ऊब-डूब करता, उतराता घन में विधु-मंडल-सा ।"[15]

[14] जयशंकर प्रसाद – स्कन्दगुप्त, पृ 12-13
[15] रामधारीसिंह दिनकर – कुरुक्षेत्र, पृ 77

यहाँ पुरुष का चित्रण इस प्रकार प्रस्तुत किया है कि सामने पुरुष का जीता-जागता रूप उभरता है । इस तरह का प्रस्तुतीकरण गद्यभाषा में प्राय: नहीं है । जैसे –

> "मेज़ से हटकर खिड़की के पास एक छोटा-सा लड़का खड़ा था । वह अपनी अँगुली से खिड़की के लम्बे शीशे पर, जहाँ कुहरा जम गया था, आड़ी-तिरछी रेखाएँ खींच रहा था । उसके लम्बे-भूरे कन्धों पर गिर आए थे, जैसे छोटी लड़कियों के बाल होते हैं ।"[16]

यहाँ लेखक ने एक बालक को चित्रित किया है । लेकिन काव्यभाषा में चित्रात्मकता को जितनी सफलता मिली है उतना गद्यभाषा में नहीं मिला ।

काव्यभाषा की सफलता का एक अन्य कारण यह है कि काव्यभाषा लचीला होता है । लचीलापन के कारण वह पाठकों के हृदय को प्रभावित करते हैं । इसी कारण कविता में आस्वाद्यता आती है । आस्वादन क्षमता के अभाव में गद्यभाषा उस रूप में पाठक के मन को प्रभावित नहीं कर पाती जिस रूप में कविता ।

काव्यभाषा में ये सब गुण होने का मुख्य कारण उसकी सृजनशीलता है । गद्यभाषा प्रदत्त भाषा है । निरंतर अभ्यास के द्वारा गद्यभाषा में सुंदर प्रयोग करने की क्षमता आ जाती है । लेकिन काव्यभाषा रचयिता की मानसिक तथा भाषिक सृजनशीलता की भाषा है । यह किसी भी प्रकार के अभ्यासों से प्राप्त

[16] निर्मल वर्मा – वे दिन, पृ 37

नहीं हो सकता । किन्तु इससे सृजनशील शक्ति का विकास संभव है । कविगण काव्यभाषा के द्वारा अपने निजी भावों, विचारों, अनुभूतियों तथा विद्रोह को प्रकट करते हैं । इसके लिए कवि काव्यानुभूति के अनुकूल भाषा को ढ़ालता है । कवि सृजनशीलता के द्वारा नये-नये शब्द, प्रयोग, मुहावरे, लोकोक्ति, वाक्य आदि गढ़ लेता है पर गद्यभाषा में लेखक को परंपरागत, प्रचलित शब्द, प्रयोग तथा वाक्य को अपनाना पड़ता है ।

संक्षेप में काव्यभाषा और गद्यभाषा संबंधी स्थापनाएँ निम्नांकित हैं –

काव्यभाषा	**गद्यभाषा**
❖ व्याकरण-मुक्त है ।	व्याकरण-बद्ध है ।
❖ शब्द शक्तियों का प्रयोग किया जाता है ।	शब्द शक्तियों का अभाव है ।
❖ शब्दों की अर्थसीमा नहीं ।	शब्दों की अर्थसीमा प्राय:निश्चित है ।
❖ प्राय: छंदोबद्ध रचना है ।	छंद मुक्त रचना है ।
❖ अलंकारों का सशक्त प्रयोग है ।	अलंकारों का अभाव है ।
❖ भावानुकूल शैली प्रधान ।	विचार प्रधान मुख्य है ।
❖ भाव और कल्पना तत्त्व अपेक्षाकृत रूप से अधिक है ।	बुद्धि तत्त्व अपेक्षाकृत रूप से अधिक है ।
❖ काव्यभाषा मात्र सृजनात्मकता की ❖ अभिव्यक्ति है ।	गद्यभाषा ज्ञानात्मक एवं सृजनात्मक साहित्य की अभिव्यक्ति है ।
❖ काव्यभाषा सूक्ष्म रूप से एक ही है ।	गद्यभाषा सूक्ष्मत: कथा साहित्य, आलोचना, ललित निबंध जैसी विभिन्न विधाई रूपों में है ।

वस्तुत: काव्यभाषा और गद्यभाषा मेंशब्दशक्ति, छंद, लय, प्रतीक व बिंब योजना जैसी अनेक भिन्नताएँ हैं । इन भिन्नताओं के कारण ही इसकी अलग पहचान है । काव्यभाषा और गद्यभाषा अन्योन्याश्रित है क्योंकि काव्य से ही गद्य का विकास हुआ है । इसी कारण एक के बिना दूसरे का अस्तित्व असंभव है । आज काव्य और गद्य का विकास तीव्र गति से हो रहा है जिसके द्वारा हिन्दी तथा अन्य भाषाओं के साहित्य का विकास भी हो रहा है ।

1.3 काव्य का वस्तुपक्ष और रूपपक्ष

कला के संदर्भ में हम वस्तु और रूप की अवधारणाओं पर चर्चा करते हैं । ऊपरी तौर पर वस्तु और रूप के बीच कोई भेद नहीं किया जा सकता । लेकिन यह भेद किसी न किसी रूप में प्रकट होते हैं । विभिन्न कलाओं में वस्तु और रूप अलग होते हैं । वस्तु और रूप के बीच कोई प्रत्यक्ष भेद न होने के कारण काव्यशास्त्रियों के एक वर्ग ने रूप को संपूर्ण वस्तु तत्त्व मान लेने का प्रयास किया है । भारतीय काव्यशास्त्र में अलंकार्य और अलंकार के संबंध में यह प्रश्न उठा है । आचार्य दंड़ी, वामन, भामह आदि का मानना है कि दोनों एक ही है ।

पश्चिम में क्रोचे ने आकार को अभिव्यंजना और अभिव्यंजना को कला माना है । उनसे पहले हीगल, शेलिंग आदि सौंदर्यशास्त्रियों ने कला से ज़्यादा उसके बाहर के वस्तु संसार की प्रक्रियाओं को भी पर्याप्त महत्त्व दिया । लेकिन क्रोचे ने संश्लिष्ट, पूर्ण और अविभाज्य सौंदर्याभिव्यक्ति को ही महत्त्व दिया हैं । यानी वे बाह्य जगत के प्रभाव को गौण मानते हैं ।

कांट की सौंदर्यानुभूति की धारणा से सृजन कर्म को एक रहस्यमय कर्म और कला के 'रूप' को एक अलौकिक तथा स्वायत्त इकाई के रूप में प्रतिष्ठा प्राप्त हुई । उनका मानना है कि सौंदर्यानुभूति के आनंद की कोई सीमा नहीं होती और उसका संश्लेषण नियम रहित, उत्स्फूर्ण और उन्मुक्त होता है । कांट कहते हैं कि सौंदर्यानुभूति में हम किसी भी प्रकार के हेतु जैसी ज्ञानात्मक धारणा पा नहीं सकते ।

सौंदर्यानुभूति को एक रहस्यमय कर्म मानने की धारणा ने कला में 'रूप' को एक अभेद, अविभाज्य, अविश्लेषणीय आकार मानने पर ज़ोर दी है । इसका समर्थन करते हुए पश्चिमी सौंदर्यशास्त्री ए.सी. ब्रेड़ले ने माना है कि कविता में न तो शुद्ध वस्तु तत्त्व है और न ही शुद्ध रूप तत्त्व । डब्ल्यू.पी.केर के मत में रूप का अर्थ है कविता और इकाई के रूप में कविता मात्र उसका रूप है । रूप रहित कविता कविता नहीं होती । 'रूप' कोई निष्क्रिय उत्पाद न होकर कवि के जीवन की स्थितियों और गुणवत्ता के बीच से उपलब्ध है जिसमें अभिप्राय, परिकल्पना, उपकरण और अनुभव प्रक्रिया भी शामिल है । रूपवादी सौंदर्यशास्त्री कला की समीक्षा में उसके रूपगत सौंदर्य को ही श्रेष्ठ मानते हैं । वह इसलिए है कि कवि अपनी व्यक्तिगत अनुभूति को व्यक्त करने के लिए सुंदर और चमत्कारपूर्म उक्ति का प्रयोग करते हैं ।

वस्तु और रूप वस्तु-जगत की मानवीय क्रियाओं से संबंध रखते हैं । मुक्तिबोधजी का मानना है कि वस्तु और रूप की एकता एक दूसरे पर निर्भर है ।

वस्तु और रूप परस्पर प्रभावित करता रहता है । वस्तु जगत के साथ रचना के रूप में परिवर्तन होता है । विज्ञान के बढ़ते हुए प्रभाव छायावादी कविता में नहीं है लेकिन प्रगतिवादी कविता में इसका प्रभाव देख सकते है । यानी वस्तु जगत में बदलाव होने के साथ-साथ रूप में भी परिवर्तन आते हैं । इस प्रकार काव्यरूपों में नये-नये प्रयोग आने लगे । इसके लिए प्रयोगवादी कवि यों तो कविता के शिल्प और भाषा में अनेक प्रयोग किए । यहाँ भाषा वर्णन या अनुभव करने का साधन न होकर सृजनात्मक भाषा है जो अनुभव की गहनता से युक्त है । नयी कविता वस्तु जगत के एक बहुत सीमित अनुभव क्षेत्र में रहती है । साठोत्तरी कविता में रूपहीनता है । साठ के बाद का कवि भड़ाफोड़न शैली में यथार्थ के अन्तर्विरोधों को प्रकट किया है और इसलिए उनकी कविता सीधी और सपाटबयानी बन गयी । इस प्रकार कविता में वस्तु तत्त्व की स्थिति नये-नये रूपाकार ग्रहण करती रही है ।

1.4 कविता के लक्षण

साहित्य या वाङमय का मूल रूप कविता ही तो है । भारतीय कविता परंपरा में अनेक प्रमुख कविताएँ रची गई हैं जिसका मनुष्य-जीवन पर गहरा प्रभाव भी पड़ा है । भारतीय काव्यशास्त्र में कवि को श्रेष्ठ स्थान प्राप्त हुआ है । अचार्य आनंदवर्द्धन कवि को प्रजापति या ब्रह्मा के रूप में स्वीकारते हुए कहा हैं -

"अपारे काव्यसंसारे कविरेक: प्रजापति: ।

यथास्मै रोचते विश्वं तथेदं परिवर्तते ।।"[17]

अर्थात् काव्य रूपी संसार में कवि ही प्रजापति है । विश्व में परिवर्तन लाने की क्षमता कवि में है । इसलिए कवि ही सबसे श्रेष्ठ और महान है ।

प्राचीन काल से लेकर आज तक अनेक विद्वानों ने काव्य की परिभाषा प्रस्तुत की हैं । शब्द और अर्थ के पारस्परिक संबंध को आधार बनाकर आचार्य भामह ने 'शब्दार्थौ सहितं काव्यम्' कहा है । रस को काव्य की आत्मा कहकर आचार्य विश्वनाथ ने 'वाक्यं रसात्मकं काव्यम्' कहा है । आचार्य मम्मट ने काव्य की परिभाषा इस प्रकार दी है– 'तददोषौ शब्दार्थौ सगुणावनलंकृति: पुन: क्वापि ।' अर्थात् शब्द और अर्थ का दोषरहित और गुणयुक्त होना तथा कहीं अलंकार युक्त और अलंकार विहीन होना ही काव्य का लक्षण है । जगन्नाथजी के अनुसार 'रमणीयार्थक प्रतिपादक: शब्द: काव्यम् ।' अर्थात् रमणीय अर्थ को प्रतिपादित करनेवाले शब्द को काव्य कहते हैं । आचार्य रामचन्द्र शुक्लजी के अनुसार- "जिस प्रकार आत्मा की मुक्तावस्था ज्ञान-दशा कहलाती है उसी प्रकार हृदय की मुक्तावस्था रस-दशा कहलाती है । हृदय की इसी मुक्ति की साधना के लिए मनुष्य की वाणी जो शब्द विधान करती आई है उसे काव्य या कविता कहते हैं ।"[18] अर्थात् कविता के द्वारा हृदय की मुक्ति या रस-दशा होती है ।

---

[17] आचार्य आनंदवर्द्धन – ध्वन्यालोक, तृतीय उद्योत, पृ 42

[18] आ.रामचन्द्र शुक्ल – चिन्तामणि भाग 1, कविता क्या है, पृ 86

प्रसिद्ध पाश्चात्य कवि ड्राइडन के अनुसार 'कविता सुस्पष्ट संगीत है ।' यानी संगीत कविता की एक पक्ष है न कि अनिवार्य अंग । सभी कविताओं में संगीत तत्त्व नहीं होते । इसलिए इस परिभाषा अनुपयुक्त है । प्रसिद्ध कवि कालरिज के अनुसार 'सर्वोत्तम शब्द अपने सर्वोत्तम क्रम में कविता होती है ।' यहाँ उन्होंने कविता के लिए क्रम का पालन करते हुए सर्वोत्तम शब्दों के प्रयोग को स्वीकारा है । अंग्रेज़ी के प्रसिद्ध कवि वड्र्सवर्थ का मत है कि 'कविता प्रबल अनुभूतियों का सहज उद्रेक है, जिसका स्रोत शांति के समय में स्मृत मनोवेगों से फूटता है ।' अर्थात् मनोवेग जब अनुभूति और भाव बन जाते हैं तब कवि स्मरण करके प्रबलता से उठे हुए भावोद्रेक को प्रस्तुत करता है तो वह काव्य होता है ।

कवि शेली का विचार है कि 'सर्वसुखी और सर्वोत्तम मनों के सर्वोत्तम और सर्व सुख पूर्ण क्षणों का लेखा कविता है ।' यहाँ उन्होंने कवि के आत्मानुभूति की अभिव्यक्ति पर ज़ोर दिया है । ले हण्ट की एक परिभाषा है कि 'सौंदर्य, सत्य और शांति के हेतु अदम्य वासना के उस उद्गार को काव्य कहा गया है जिसके अन्तर्गत कल्पना और ऊहा के द्वारा भावना को स्पष्ट किया गया है तथा विविधता में एकता के सिद्धांत पर भाषा को ढ़ाला गया हो ।' इसमें गीतिकाव्य की विशेषता अधिक मुखरित है । यह जटिल तथा बड़ी परिभाषा है ।

मैथ्यू आरनॉल्ड के मतानुसार 'कविता अपने मूल रूप में जीवन की आलोचना है ।' यहाँ उत्तम काव्य की विशेषता बताई गई है । डॉ.जॉनसन ने

कविता को कला के रूप में स्वीकार किया है जो कल्पना की सहायता से युक्ति के द्वारा सत्य को आनंद से समन्वित करती है । उन्होंने आनंद, रमणीयता और रोचकता के गुणों के समावेश में सत्य का प्रकाशन किया है । अंग्रेज़ी के चैम्बर्स कोश में कविता की परिभाषा इस प्रकार दी है – 'कल्पना और अनुभूति से उत्पन्न विचारों को मधुर शब्दों में अभिव्यक्त करने की कला, कविता है ।' यहाँ कल्पना और अनुभूति को महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त है ।

किसी भी रचनाकार की मानसकृति को हम कविता कह सकते हैं । हर एक मनुष्य की तरह कविता का भी अपना एक रूप, स्वभाव और अंदाज़ होता है । लेकिन प्रत्येक युग और परिवेश के अनुसार इसमें परिवर्तम भी होता रहता है । काव्य रचना के बाद कविता कवि से पृथक होकर अपने स्वतंत्र अस्तित्व को प्राप्त करता है । ऐसे होने पर वह सार्वजनिक संपत्ति बन जाती है । कविता के आधार पर कवि का मूल्यांकन किया जाता है । कविता या काव्य लोकोत्तर आह्लाद प्रदान करनेवाली एक कला है । काव्य रचना द्वारा प्राप्त यश कवि को युगान्तस्थायी बना देता है । जब अन्य रचनाएं बुद्धि के तर्क पक्ष पर चलती है तो पाठकों को प्रभावित करती है । काव्य संकेतों के माध्यम से उपदेश प्रदान करता है ।

1.5 काव्य के भेद

काव्य के भेद तीन प्रकार से किया जा सकता है – शैली की दृष्टि से, अर्थ की दृष्टि से और बंध की दृष्टि से । शैली की दृष्टि से काव्य के तीन भेद है –

पद्य, गद्य और मिश्र । पद्य वह शैली है जिसमें छंदों का पालन और व्याकरण का उल्लंखन होता है । लेकिन गद्य वह शैली है जिसमें छंदों का उल्लंखन और व्याकरण का पालन होता है । गद्य और पद्य के शैलियों का मिला-जुला रूप है मिश्र, जिसे संस्कृत में 'चम्पू' कहते हैं । उसमें विशेष रूप से अलंकार का चमत्कार, समास का गुंफन तथा कल्पना अधिक मुखरित है । गद्य और पद्य शौलियों का प्रयोग नाटक में होता है । लेकिन चम्पू की अपेक्षा नाटक में काव्य तत्त्व कम है । इसलिए नाटक और चम्पू में भिन्नता आ गई है । लेकिन आधुनिक काल के इस गद्य-युग में नाटक गद्य शैली में ही लिखे जाते हैं ।

अर्थ की दृष्टि से काव्य के तीन प्रकार है – उत्तम, मध्यम और अधम (सामान्य) । प्रत्येक रचना के कोशगत, व्याकरण आदि सम्मत जो अर्थ निकलता है उसे मुख्यार्थ कहते हैं । कभी-कभी मुख्यार्थ के साथ-साथ जो दूसरा अर्थ प्रतीत होता है उसे व्यंग्यार्थ कहते हैं । इसमें भी कहीं मुख्यार्थ की विशेषता है तो कहीं व्यंग्यार्थ और कहीं दोनों समान दिखाई देते हैं । इसीके आधार पर उपर्युक्त भेद किए गए हैं । जब मुख्यार्थ की अपेक्षा व्यंग्यार्थ विशेष चमत्कारी होता है तो उस रचना को उत्तम काव्य या ध्वनि काव्य कहते हैं । जब व्यंग्यार्थ और मुख्यार्थ समान या तुल्य हो तो उसे मध्यम काव्य या गुणीभूत काव्य कहते हैं । अधम काव्य या अलंकार काव्य वह है जहाँ मात्र मुख्यार्थ की ही विशेषता है ।

बंध के विचार से रचनाएँ दो प्रकार की है – प्रबंध और निर्बंध । क्रमबद्ध कथा कही जानेवाली रचना को प्रबंध काव्य कहते हैं । निर्बंध या मुक्तक में कोई विशेष कथा नहीं होती और गद्य-पद्य खंड के द्वारा किसी रस, भाव या तथ्य को व्यक्त करता है । प्रबंध काव्य के तीन रूप है – महाकाव्य, खंडकाव्य और एकार्थ काव्य । जिस रचना में पूर्ण जीवनवृत्त विस्तार के साथ वर्णित करता है उसे महाकाव्य कहते हैं । जिस रचना में महाकाव्य की शैली में खण्ड जीवन वर्णित हो उसे खंडकाव्य कहते हैं । महाकाव्य और खंडकाव्य के बीच की रचना को एकार्थ काव्य कहते है ।

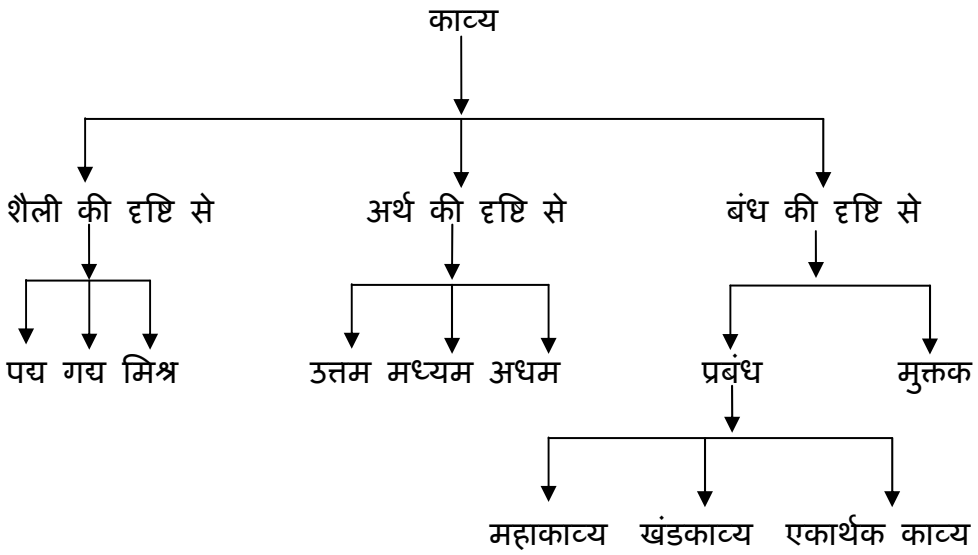

1.6 काव्यभाषा और औचित्य सिद्धांत

औचित्य सिद्धांत पर विचार करने के पूर्व काव्य के तत्त्व और प्रयोजन पर विचार करना आवश्यक है । भाव, बुद्धि, कल्पना और शैली काव्य के चार

तत्त्व है । डॉ.गणपतिचन्द्र गुप्तजी के अनुसार – "मनोवैज्ञानिक दृष्टि से 'भाव' के व्यापक अर्थ में भावावेग, अनुभूति, भाव-दशा, भावना, दृष्टिकोण, स्वभाव एवं सहज प्रवृत्ति तक सभी भावात्मक प्रवृत्तियों को ग्रहण किया जा सकता है, जब कि संकीर्ण अर्थ में भाव केवल भावावेग तक सीमित है ।"[19] यहाँ उन्होंने भाव-तत्त्व का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण किया है । सौंदर्य शास्त्र भी भाव-तत्त्व से संबंध रखते हैं । इसके संबंध में डॉ.गणपतिचन्द्र गुप्त जी नो यों लिखा है – "सौंदर्य शास्त्रीय दृष्टि से कला (काव्य-कला) का भावों से पाँच प्रकार का संबंध है; भावोद्दीप्ति, भावों की प्रस्तुति, भावों की अनुभूति, भावाभिव्यक्ति एवं भावों का संप्रेषण । इन पाँचों का समन्वय आकर्षण शक्ति की चार प्रक्रियाओं – संयोजन, संप्रेषण, द्रवण और अभिव्यक्ति – में हो जाता है ।"[20] यहाँ उन्होंने काव्य-कला और भाव के संबंध और प्रक्रियाओं को प्रस्तुत की है ।

काव्यशास्त्र के आचार्यों ने भाव तत्त्व की व्याख्या साहित्य दृष्टिकोण से की है । इसे हम दो वर्गों में विभाजित कर सकते हैं – भारतीय एवं पाश्चात्य ।

भारतीय काव्यशास्त्र में रस सिद्धांत के आचार्यों ने ही भाव की विवेचन-विश्लेषण करने का महत्त्वपूर्ण प्रयास किया है । प्राचीन आचार्यों में आचार्य भरतमुनि, भट्टलोलट, शंकुक, भट्टनायक, अभिनव गुप्त और तदुपरांत आधुनिक विद्वानों में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, डॉ.गुलाब राय, डॉ.नगेंद्र, डॉ.आनंद

[19] डॉ.गणपतिचन्द्र गुप्त – साहित्य विज्ञान, पृ 135

[20] डॉ.गणपतिचन्द्र गुप्त – साहित्य विज्ञान, पृ 135

प्रकाश दीक्षित आदि ने इसका स्पष्ट तथा व्यापक रूप प्रस्तुत किया है । रस सिद्धांत के अनुसार कवि का लक्ष्य किसी एक प्रमुख भाव की, जिसे 'स्थायी भाव' कहते हैं, व्यंजना विभाव, अनुभाव और व्यभिचारी या संचारी भावों के माध्यम से करना होता है । जिन कारणों से भाव उद्दीप्त होता है उसे 'विभाव' कहते हैं । आलंबन और उद्दीपन इसके प्रमुख भेद है । भावों की प्रेरणा से व्यक्ति जो चेष्टाएँ करता है उसे 'अनुभाव' कहते हैं । 'संचारी भाव' का संबंध किसी एक आलंबन से नहीं है तथा वे स्थायी भाव की तरह एक ही भाव में स्थिर न रहकर शीघ्र ही अन्य भावों में परिणत हो जाते हैं ।

पाश्चात्य काव्यशास्त्र के विद्वानों में अरस्तू ने त्रासदी, लोंजाइनस ने 'उदात्त' की प्रतिष्ठा की है । वड्र्सवर्थ और कॉलरिज ने कल्पना-सिद्धांत की प्रतिष्ठा की । आगे चलकर मैथ्यू आर्नलड्, डॉ.आई.ए.रिचड्र्स आदि विद्वानों ने भाव संबंधी विभिन्न दृष्टिकोण प्रस्तुत किए । इसमें रिचड्र्स ने भावोद्वेलन को ही काव्यगत विचारों का लक्ष्य माना है ।

विचार और भाव परस्पर पूरक है । दार्शनिक, विचारों का विश्लेषण अनुभूतियों के विश्लेषण से करता है तो हम विचारों की अनुभूति व्यावहारिक जीवन से प्राप्त करते हैं । दूसरे शब्दों में कहें तो जहाँ विचारों के लिए अनुभूति कच्ची सामग्री है वहाँ कल्पनाशील व्यक्ति के लिए विचार अनुभूति के आधारभूत तत्त्व है ।

साहित्य में धर्म, दर्शन, विज्ञान आदि सभी विषयों से संबंधित विचार स्थान पाते हैं । लेकिन इसको अनुभूतिगम्य बनाने के लिए भाव तथा कल्पना की सहायता से परिवर्तित किया जाता है । साहित्य में विचारों को विचार, भाव एवं कल्पना के सहयोग से प्रस्तुत कर सकते हैं । अलंकार शास्त्रियों ने विचार को महत्त्व दिया है । यानी एक विचार को अनुभूतिगम्य बनाने के लिए उसके अनुकूल दूसरे विचार को प्रस्तुत करना, जिसे वे प्रस्तुत एवं अप्रस्तुत की संज्ञा दी गई है । रसवादियों ने विचारों को भाव के सहयोग से प्रस्तुत करने के पक्ष में है । विभाव, अनुभाव और संचारी अंगों के रूप में विचारों को प्रस्तुत कर सकते हैं । औचित्य सिद्धांत को माननेवलों ने कल्पना को महत्त्व दिया है । विचारों की अभिवृद्धि के लिए कल्पना और प्रतीक, बिंब, रूपक आदि शैली संबंधी तत्त्वों की सहायता आवश्यक है ।

इस प्रकार देखें तो हम इस निष्कर्ष पर पहूँचते हैं कि साहित्य में विचारों का प्रस्तुतीकरण विचार, भाव एवं कल्पना के सहयोग से ही होता है ।

हिन्दी में 'कल्पना' शब्द अंग्रेज़ी के 'इमेजिनेशन' (Imagination) के समानार्थक रूप में प्रयुक्त होता है । जिस साहित्य में कल्पना तत्त्व की प्रमुखता है उसे 'कल्पना प्रधान' साहित्य कह सकते हैं । कल्पना प्रधान साहित्य के दो भेद है – 1) प्रस्तुत का मुख्य वर्णन 2) अप्रस्तुत का मुख्य वर्णन । इसमें प्रस्तुत का मुख्य वर्णन के दो उपभेद है – रूप विधान और क्रिया या घटना प्रधान ।

शैली व्यक्ति के क्रिया-व्यापारों और रचना कौशल के वैशिष्ट्य से संबंधित है । साहित्य में 'शैली' लेखनी और लेखन-पद्धति से संबंध रखते हैं । इसे अंग्रेज़ी में 'स्टाइल' कहते हैं । भारतीय काव्यशास्त्रियों ने इसके लिए प्रवृत्ति, वृत्ति, मार्ग, संघटना, रीति जैसे शब्दों का प्रयोग किया है । व्यक्तित्व, विषय, भाषा और पाठक शैली का स्रोत विषय है । व्यक्तित्व के प्रभाव से शैली में व्यक्ति-वैशिष्ट्य, विषय के प्रभाव से विषय वैशिष्ट्य और भाषा के प्रभाव से भाषा वैशिष्ट्य का संचार होता है । लेखक पाठक को ध्यान में रखकर ही रचना-कार्य करते हैं । अत: पाठक का प्रत्यक्ष या परोक्ष प्रभाव लेखक पर पड़ता है । लेखक की रुचि, प्रवृत्ति तथा परिस्थिति के भेद से स्रोत को प्रमुखता मिल सकती है ।

1.6.1 काव्य में सत्यं शिवं सुन्दरम्

हिन्दी साहित्य में 'सत्यं शिवं सुन्दरम्' साहित्य के आदर्श और उद्देश्य के सूत्ररूप में प्रयुक्त हो रहा है । आज इसकी व्यापकता बढ़ती जा रही है । इसके मुल स्रोत के संबंध में विद्वानों के बीच मतभेद है । कुछ विद्वानों की मानना है कि इसका सर्वप्रथम प्रयोग रवीन्द्र टगैर जी के पिता महर्षि देवेन्द्रनाथ जी ने किया है तो कुछ पंड़ितों की राय में यह प्रसिद्ध पाश्चात्य आलोचक अरस्तू के 'The True, The Good, The Beautiful' का हिन्दी अनुवाद है । लेकिन हिन्दी साहित्य के लिए ये तीनों शब्द नवीन नहीं है । क्योंकि श्रीमद्भगवत्गीता, किरातनार्जुनीय जैसे ग्रन्थों में इसका उल्लेख मिलते हैं । यानी भारत के लिए

यह नवीन नहीं है । साहित्य में नवीनता का आना स्वाभाविक है । अत: यह भी हो सकता है कि अरस्तू द्वारा प्रयुक्त सूत्र वाक्य का पहला अनुवाद बंगला साहित्य में किया होगा और पहला प्रयोग महर्षि देवेन्द्रनाथजी द्वारा किया होगा । इस प्रकार बंगला साहित्य से हिन्दी साहित्य में यह आ गया ।

भारतीय संस्कृति की एक प्रमुख विशेषता है – एकता और समन्वयात्मकता । यह समन्वयात्मकता धर्म के क्षेत्र में (ब्रह्मा-विष्णु-महेश), दर्शन के क्षेत्र में (सत्-चित्-आनंद एवं सत्-रज-तम), भक्ति के क्षेत्र में (ज्ञान-कर्म-उपासना) भी देख सकते हैं और यही हम कला के क्षेत्र में 'सत्यं शिवं सुन्दरम्' के रूप में देखते हैं । यह परस्पर पूरक है या इसका विभाजन नहीं किया जा सकता । धर्म, दर्शन, साधना और लोक-व्यवहार का श्रेष्ठतम और आदर्शतम रूप ही यह है कि शिवं में सत्य और सुन्दरम् को समन्वित करना है । क्योंकि सत्य जो है शिवं या आनंदमय है और यह आनंद सौंदर्य का ही फल या प्रभावात्मक अनुभूति है । इनका समन्वय ही काव्य का लक्ष्य है ।

सत्य दर्शन का विषय है जो ज्ञानमूलक है । शिव धर्म का अनुसंधान है अत: नीतिमूलक है और कला का मूल स्रोत या लक्ष्य सुन्दर की शोध है । कला की दायरा सीमित है लेकिन यह नीति और ज्ञान से पुष्ट होकर अपने इस सीमित दायरे का अतिक्रमण करती है । कला बुद्धि-निरपेक्षता और नीति पराङ्मुखता द्वारा सौंदर्य का आकलन करती है जो सदा आनंददायक होता है ।

प्रत्येक जीव का इस सांसारिक रूपों और व्यापारों के समक्ष एक पृथक सत्ता है । जब वह यह भूलकर विशुद्ध अनुभूति मात्र रह जाता है तो वह मुक्त हृदय हो जाता है । शुक्लजी आत्मा की इस मुक्तावस्था को ज्ञान दशा कहा है ।

विद्वान लोग इसे अरस्तू द्वारा दिया हुआ सूत्रवाक्य माना है । अरस्तू का मानना है कि जीवन के शाश्वत तत्तवों का अंकन ही काव्य है । इसलिए कवि का कर्तव्य केवल बीत चुके सत्यों का चित्रण ही नहीं संभाव्य सत्यों को भी चित्रित करना है । अरस्तू कवि और इतिहासकार का अंतर स्पष्ट करते हुए कहता है कि इतिहासकार केवल बीत चुके घटनाओं का वर्णन उसके यथार्थ रूप में व्यक्त करता है तो कवि जो घटित होनेवाले है उसका चित्रण कल्पना द्वारा करता है । कवि शाश्वत सत्य पर आधारित कल्पना तथा अनुभूति की सहयोग से असुंदर को सुंदर बना देता है । अरस्तू के मतानुसार काव्य में आदर्श की प्रतिष्ठा संभाव्य सत्य ही करता है और यही रूप शिव होता है ।

लोकमंगल की भावना को हम 'शिव' कहते हैं । शिवत्व का प्रारंभ सामान्य भाव-भूमि पर पहूँचने पर होता है । वहाँ पहूँचने पर व्यक्ति अपने सुख में विश्व का सुख, अपने दुख में विश्व का दुख देख सकते हैं । यानी दोनों में एकता का या तादात्म्य का भाव उत्पन्न होता है । इस प्रकार कर्तव्य पथ में आकर सत्य शिव बन जाता है । शिवत्व कुरूपता को सुंदर, अमंगल को मंगल में बदल देता है ।

राजनाथ शर्माजी ने सौंदर्य के संबंध में इस प्रकार कहा है – "प्रज्ञा का सत्य स्वरूप जब हृदय में स्थान पाता है तो प्रणय के रूप में परिणत हो जाता है, और वही नेत्रों में जाकर अनूप लावण्य बन जाता है ।"[21] सौंदर्य एक वस्तू है, व्यक्ति अपने-अपने ढ़ंग से इसका अनुभव करता है ।

संक्षेप में कहें तो काव्य या रचना की पूर्णता इन तीनों तत्वों के समन्वित एवं संतुलित प्रयोग से ही होता है । इनमें से एक का असंतुलित प्रयोग या अभाव से काव्य असफल तथा असमर्थ बन जाते हैं ।

1.6.2 काव्य प्रयोजन

काव्य जीवन की सुंदर अभिव्यक्ति होने के कारण काव्य का भी एक न एक प्रयोजन होना स्वाभाविक है । कवि की फलसिद्धि कभी परोक्ष होता है तो कभी प्रत्यक्ष, कभी आयास है तो कभी अनायास या सुनिश्चत या फिर आकस्मिक होता है । इस फलसिद्धि पर ही काव्य-प्रयोजन का विचार केंद्रित है । भारतीय आचार्यों ने इसीको विशेष महत्त्व दिया है तो पाश्चात्य चिन्तकों ने काव्य में अभिव्यक्त जीवन और जगत्, व्यक्ति और समाज के विभिन्न संबंधों तथा परिवेशों के आधार पर काव्य-कला तथा अन्य कलाओं का सापेक्ष और निरपेक्ष, सामाजिक, साहित्यिक, दार्शनिक एवं मनोवैज्ञानिक मूल्यों पर ध्यान केन्द्रित रखा है ।

[21] राजनाथ शर्मा – साहित्य निबंध, पृ 300

आचार्य वामन काव्य के दो प्रयोजन माना है – दृष्ट और अदृष्ट । यहाँ दृष्ट प्रयोजन से पाठक या श्रोता को समान रूप से आनंद या प्रीति प्राप्त होता है अत: यह लौकिक भी है । अदृष्ट का प्रयोजन कीर्ति से है जो कवि को अपने जीवन-काल में या मरणोपरांत प्राप्त होता है अत: यह अलौकिक है । यानी दृष्ट प्रयोजन प्रत्यक्ष है तो अदृष्ट अप्रत्यक्ष है ।

प्लेटो काव्य को अनुकृति की अनुकृति मानते हैं और उन्होंने यह भी माना हैं कि कविता मनोवेगों को उत्तेजित करके आत्मा को उद्वेलित करती है और सद्गुणों का शमन कराके पाशविक वृत्तियों को उभारते हैं । इस कारण से सामाजिक दृष्टि से काव्य मूल्यहीन है । यानी प्लेटो की दृष्टि में मिथ्या की अभिव्यक्ति और मनोवेगों का उत्तेजन ही काव्य का प्रयोजन है । लेकिन उनके शिष्य अरस्तू इसका खंडन करते हुए सौंदर्य और आनंद की सिद्धि को काव्य का मूल प्रयोजन माना है । लांजिनस ने काव्य के मूल तत्त्व के रूप में उदात्तता अथवा भव्यता को मानते हैं और इसीकी अभिव्यक्ति को काव्य का मुख्य प्रयोजन मानते हैं । कालरिज ने काव्य का प्रयोजन शिक्षा या उपदेश को नहीं माना बल्कि विशुद्ध एवं निरपेक्ष आनंद की सिद्धि को माना है और यह आनंद की अभिव्यक्ति सौंदर्य के माध्यम से संभव होती है जिसके लिए कल्पना की आवश्यकता है । मैथ्यू आर्नल्ड 'कला जीवन के लिए सिद्धांत' का समर्थन करते हुए काव्य का प्रयोजन आनंद न होकर मानव का आत्मिक विकास और आत्मिक उत्कर्ष मानते हैं । 'कला कला के लिए' सिद्धांत को माननेवाला क्रोचे

के विचार से कला मुक्तिदायिनी है । उनका मत है कि काव्य जैसी कला सामान्य आवेगों एवं मानसी प्रतिक्रियाओं के शमन और दिव्यीकरण में समर्थ है ।

आधुनिक युग में पाश्चात्य प्रभाव से काव्य के प्रयोजन के संबंध में अनेक मतभेद प्रचलित है । उनमें प्रमुख है – 1) कला कला के लिए 2) कला जीवन के लिए 3) जीवन से पलायन के अर्थ 4) मनोरंजन अथवा आनंद के लिए 5) सेवा के अर्थ 6) आत्म-साक्षात्कार के अर्थ 7) सृजनात्मक आवश्यकता ।

'कला कला के लिए' सिद्धांत के अनुसार कवि कला या काव्य की सृष्टि किसी प्रयोजन के लिए नहीं बल्कि कला के लिए करता है । इस वाद के अनुसार कवि किसी उद्देश्य से या प्रयोजन के लिए काव्य रचना करते हैं तो उसका पूर्ण विकास असंभव होगा । इसके संबंध में डॉ.ब्रैड़ले का विचार कुछ ऐसा है कि कविता में जो काल्पनिक अनुभवों को प्रस्तुत करता है उसे पढ़ते समय ध्वनि, कल्पना, विचार, भावना आदि के रूप में प्राप्त होता है । 'कविता कविता के लिए' के संबंध में उन्होंने यह व्यक्त किया है कि काव्य में व्यक्त अनुभव का स्वतंत्र मूल्य है और यही अनुभव ही काव्य का मूल्य है । धर्म, संस्कृति, उपदेश, शांति, अर्थ प्राप्ति आदि में भी हम कविता का महत्त्व देख सकते हैं । यह हमें कल्पनागत अनुभव के रूप में प्राप्त होता है । उन्होंने यह भी व्यक्त किया है कि कविता का मूल्य विषय पर सीमित नहीं है वह वस्तु

और रूप का समन्वय है । कविता का मूल्य समस्त कविता ही है अत: कविता ही है ।

कविता या कलाकार के लिए 'कला कला के लिए' है । क्योंकि पाठक रचना का पाठ या अवलोकन करने पर उसे आनंद प्राप्त होता है । किसी को जीवन में कोई प्रेरणा मिलता है तो किसीको ज्ञान, और कोई काल्पनिक संसार में विचरण करने लगता है । इस प्रकार कला पाठक के लिए अनेक प्रयोजनों से युक्त हो जाती है ।

जीवन के साथ-साथ काव्य का विकास और उत्कर्ष बढ़ती जाती है । काव्य जीवन को प्रेरणा प्रदान करने के अलावा प्रसन्नता, सरसता और उत्साह का संचार भी करता है । काव्य एक विशेष सुंदर, स्वस्थ और उदात्त दृष्टिकोण से आदर्श और यथार्थ जीवन को प्रस्तुत करते हैं । कला जीवन के लिए इसलिए है कि कुछ ही क्षणों में व्यापक और संपूर्ण जीवन के दर्शाकर ज्ञान, आनंद और शिक्षा प्रदान करता है ।

कवि अपनी कल्पना के संसार को काव्य में प्रस्तुत करते हैं । पाठक अपने चिन्ताग्रस्त, कटू और एकरस जीवन से ऊबकर इस काल्पनिक संसार में प्रवेश करते हैं । इस प्रकार एक अवांछनीय जीवन से आदर्श जीवन में प्रवेश करने के कारण 'जीवन से पलायन के अर्थ' इसीका ही एक रूप है ।

काव्य और कला का मुख्य प्रयोजन आनंद या मनोरंजन ही है । इस बात में मतभेद नहीं है । काव्य से जो आनंद प्राप्त होता है वह लोकातीत है क्योंकि इससे मानसिक प्रसन्नता और आत्मिक विकास भी होता है ।

कवि अपने युग और समय की आवश्यकतानुसार कुछ मानव-सेवा सिद्धांतों को स्वीकार करते हैं और उसीके आधार पर वह मानवता की सेवा और सद्भावनाओं का प्रचार करता है । लेकिन काव्य का यह प्रयोजन कला की उत्कृष्टता में बाधा पड़ती है ।

काव्य और कला में आत्म-साक्षात्कार होना स्वाभाविक है । कवि या कलाकार अपने अनुभवों को प्रस्तुत करता है तो पाठक उसमें अपनी निजी अनुभूतियों की अभिव्यक्ति पाता है तो कभी यह विलक्षण, नवीन और आश्चर्यपूर्ण आनंद की भी दर्शन करते है ।

जिस प्रकार ईश्वर द्वारा सृष्टि बराबर चलती जाती है उसी प्रकार सर्जनकारी प्रतिभा से युक्त व्यक्ति काव्य रचना का सृजन करता ही रहता है । कला, कला के लिए दृष्टिकोण इसी पर आधारित है ।

इस प्रकार काव्य प्रयोजन के संबंध में विभिन्न मत और वाद प्रचलित है ।

किसी भी कृति की आलोचना हम अपने अनुभव और अध्ययन के आधार पर करते हैं । इसके लिए हमारे मानस में कोई-न-कोई मानदंड रहता है । सामान्य रूप में हम किसी आलोच्य कृति की विशेषताओं की ओर ध्यान न देकर कह देते हैं कि यह कृति अच्छी है या नहीं । परंतु साहित्य में विशेषताओं

को स्पष्ट करना आवश्यक है । कविता के लिए भी अनेक मानदंड होते हैं । लेकिन इनके अतिरिक्त कविता में कोई ऐसी विशेषता हम अनुभव करते हैं जो इन मानदंड़ों की पकड़ में नहीं आती । वहाँ कवि का अपना निजी आदर्श या नवीन प्रयोग होता है और इसीके आधार पर उसके रचना-सौंदर्य का विश्लेषण किया जा सकता है । ऐसी स्थितियों में काव्यादर्श या काव्य सिद्धांत के विकास की आवश्यकता पड़ती है और विचारशील आलोचक ऐसे नूतन काव्य सिद्धांतों की सृष्टि करते हैं जो सभी विशेषताओं को समेटता है । इस प्रकार सृजनात्मक प्रतिभा आलोचनात्मक प्रतिभा को प्रगति के लिए बाध्य करती है और आलोचनात्मक प्रतिभा सृजनात्मक प्रतिभा को प्रेरित करती है ।

इन सब प्रक्रियाओं के परिणाम स्वरूप काव्य-सौंदर्य तथा विशेषताओं को प्रकट करने के लिए अनेक मानदंड़ तैयार किए गए हैं । वास्तव में ये मानदंड़ काव्य सिद्धांत ही हैं । भारतीय साहित्य में काव्यालोचन के मानदंड़ रस, रीति, अलंकार, ध्वनि, वक्रोक्ति, औचित्य इन छह काव्य सिद्धांतों के द्वारा प्रस्तुत किए गए हैं ।

रस का संबंध अनुभूति से है । अनुभूतियाँ दो प्रकार की हैं – प्रत्यक्षानुभूति या भावानुभूति और काव्यानुभूति । हमारे व्यक्तिगत जीवन से संबंधित क्रोध, करुणा, घृणा, प्रेम आदि भावों की अनुभूति को प्रत्यक्षानुभूति कहते हैं और इन भावों की अनुभूति जब काव्य पढ़ने या नाटक देखने से मिलती हैं तो उसे काव्यानुभूति कहते हैं । प्रत्यक्षानुभूति में भाव दो प्रकार के हैं

– सुखात्मक, जिसमें प्रेम, हर्ष, हास, आश्चर्य आदि आते हैं और दूसरा है दुखात्मक, जिसमें क्रोध, घृणा, भय, शोक आते हैं । जब यह अनुभूति काव्य के पढ़ने या नाटक देखने से होती है तो मन की स्थिति एक ही होती है । इसलिए प्रत्यक्षानुभूति की अपेक्षा काव्यानुभूति संस्कृत या परिष्कृत कही जाती है । इसी कारण इस अनुभूति को 'रस' कहते हैं ।

रसवाद में काव्यभाषा रस के आगे हैं । यहाँ काव्यभाषा के विशिष्ट स्परूप की निर्मिति अभीष्ट सिद्धि के बाद स्वत: एवं अनिवार्य रूप से अनुकूल हो जाता है । क्योंकि महाकवि का मुख्य कार्य यह बताया गया है कि रसादि को मुख्य रूप से काव्य का विषय बनाकर उसके अनुरूप शब्द और अर्थों की रचना करना । इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि वस्तुत: काव्य रचना ही भाषा साधना है । यानी रस का संबंध काव्यभाषा से है । भावों की काव्यात्मक अभिव्यक्ति के स्वरूप का विश्लेषण रस सिद्धांत में हैं । भाषा अभिव्यक्ति का चरम लक्ष्य है । उसी प्रकार शैली को दीप्त करनेवाला रस ही है । आनंद के हेतु चाहे यह ध्वनि हो या रस वह शब्दों में यानी काव्यभाषा में ही स्थित रहता है ।

आनंदवर्द्धन के अनुसार रस को ध्वनित करने के लिए वर्ण, पद, पदांश, वाक्य, संघटना आदि सभी मिलते हैं । कवि जिस रस को ध्वनित करना चाहता है वह उसके हृदय में संस्कारत: स्थायी भाव के रूप में स्थित रहता है । इसको प्राप्त करने के लिए कवि को कोई भी प्रयत्न करना नहीं पड़ता है । कवि के हृदयगत रस को सहृदय तक पहूँचा देनेवाले वर्ण, पद, पदांश, वाक्य, संघटना

आदि की खोज करनी पड़ती है । इस प्रकार खोज की प्रक्रिया को कविता-रचना और खोजी हुई वस्तु (वर्ण, पदअर्थात् भाषा) को कविता माना जाता हैं ।

साधारणीकरण रस सिद्धांत का मूलाधार है । डॉ.नगेंद्रजी के मत में यह साधारणीकरण काव्यभाषा या भाषा का धर्म है । इस प्रकार काव्यभाषा और रस के बीच संबंध स्थापित हो जाता है । आचार्य भरतमुनि ने 'विभावानुभावव्यभिचारी संयोगात् रसनिष्पत्ति:' कहकर काव्यभाषा में रस का स्थान प्रस्तुत किया है । रस-सूत्र के संबंध में भट्टनायकजी ने जो व्याख्या प्रस्तुत की है उसमें काव्यभाषा को प्रमुखता प्राप्त हुई है । वह इसलिए है कि उन्होंने काव्य और नाटक को ध्यान में रखा है । उनके अनुसार रसास्वाद के तीन स्तर हैं – अभिधा, भावना और भोग । प्रथम स्तर या अभिधा में केवल शब्दार्थ का ज्ञान प्राप्त होता है । दूसरे स्तर (भावना) में आकर भाषा काव्यभाषा बनती है । तीसरे स्तर (भोग) पर सहृदय साधारणीकरण द्वारा भावित रस का भोग करते हैं । रस के प्रवर्तक आचार्य भरतमुनि ने इसकी संख्या चार माने है – शृंगार, रौद्र, वीर और बीभत्स । और आगे इन रसों से हास्य, करुण, अद्भुत और भयानक रसों की उत्पत्ति मानी है । भोज ने अपने ग्रंथ 'शृंगार प्रकाश' में इस प्रकार लिखा है –

श्रृंगार वीर करुणाद्भुत हास्य रौद्र,
बीभत्स वत्सल्य भयानक शांत नाम्न:

यहाँ उन्होंने दस रसों का उल्लेख किया है ।

प्रत्येक रस के साथ आलंबन, उद्दीपन, विभाव, अनुभाव तथा संचारी भावों का संबंध निम्नांकित तालिका से स्पष्ट हो जाता है -

रस	स्थायी भाव	आलंबन	उद्दीपन	अनुभाव	संचारी भाव
शृंगार रस	रति	नायक-नायिका	ऋतु सौंदर्य		
वीर रस	उत्साह	शत्रु, आश्चर्य,साहसिक कार्य, यश	चेष्टा, प्रदर्शन, ललकार	आँखों का लाल होना, भुजाओं या अंगों का संचालन, सैन्य को प्रेरित करना	गर्व, उग्रता, तर्क, असूया, मति आदि
करुण रस		प्रिय व्यक्ति या वस्तु का अनिष्टि, हानि या विनाश	दुखपूर्ण, अस्त-व्यस्त दशा का दर्शन या श्रवण	रुदन, वैवर्ण्य, विलाप, भाग्य या दैव को कोसना, शरीर का शिथिल हो जाना	चिन्ता, ग्लानि,विषाद, स्मृति, व्याधि, निर्वेद, मरण आदि
अद्भुत रस	विस्मय या आश्चर्य	अलौकिक चरित्र, दृश्य अथवा विचित्र वस्तु	ऐसे चरित्र या चरित्र के संबंध में सुनना या उन पर बार-बार विचार करना	आँखें फाड़कर देखना, रोमांच, स्तब्ध हो जाना, अवाक् हो जाना	भ्रम, हर्ष, औत्सुक्य, चंचलता, प्रलाप आदि
हास्य रस	हास	विकृत रूप, आकार, वेश-भूषा, विचित्र अनर्गल वचन, विलक्षण चेष्टायें	विचित्र अंगभंगिमा, क्रिया-कलाप आदि	आँखों और मुख का विकसित होना, खिलखिलाना आदि	चपलता, हर्ष, गर्व आदि

भयानक रस	भय	हिंस्र स्वभाववाले जीव तथा उग्र स्वभाव और आचरणवाले व्यक्ति	विकृत और उग्र ध्वनि, भयानक चेष्टायें, निर्जनता आदि	हाथ-पैर का काँपना, आँखों का फ़ाड़ना, रौंगटे खड़े हो जाना, विवर्णता, कण्ठावरोध, चिल्लाना, भागना आदि	शंका, मोह, दैन्य, आवेग, चिन्ता, त्रास, चपलता, मरण, जुगुप्सा आदि
बीभत्स रस	जुगुप्सा या घृणा	फ़ूहड़पन, रुधिर, मांस, सड़ी-गली तथा दुर्गन्धमय वस्तुएँ	उपर्युक्त वस्तुओं की चर्चा करना, देखना आदि	थूकना, मुँह फ़ेरना, नाक सिकोड़ना, कम्पन आदि	भय, आवेग, व्याधि, अपस्मार
रौद्र रस	क्रोध	शत्रु या कपटी, दुराचारी व्यक्ति	अपमान और निन्दा से भरे वचन	भौंहें तानना, दाँत पीसना, ललकारना, काँपना, मुँह लाल हो जना, हाथ चलाना आदि	गर्व, अमर्ष, उग्रता, चपलता, आवेग
शांत रस	निर्वेद	संसार की असारता और क्षणभंगुरता	सत्संग, श्मशान या तीर्थदर्शन, मृतक आदि	रोमांच, अश्रु,पश्चाताप, ग्लानि	हर्ष, घृति, मति,स्मरण, बोध
वात्सल्य रस	पुत्रस्नेह	पुत्र	उनकी चेष्टाएं, विद्या, दया	आलिंगन, अंग स्पर्श, सिर चूमना, निहारना	शंका, हर्ष, गर्व
भक्ति रस	भगवत् प्रेम	ईश्वर या उसका कोई रूप	पुराणादि का श्रवण	रोमांच	हर्ष, दैन्य

प्रत्येक रस से सम्बद्ध इन तत्त्वों से हम कविता में रस की पहचान कर सकते हैं ।

काव्य में रीति या शैली का महत्त्वपूर्ण स्थान है । काव्य में रीति को सर्वाधिक महत्त्व देनेवाले आचार्य वामन इसे काव्य की आत्मा माना है । रीति शब्द रीङ + क्ति से बना है जिसका अर्थ है प्रगति, पद्धति, प्रणाली, मार्ग आदि । लेकिन आज इसे ही हम शैली कहते हैं ।

रीति के चार भेद हैं – वैदर्भी, गौड़ी, पांचाली और लाटी । आचार्य विश्वनाथ वैदर्भी को काव्य की सर्वोत्तम रीति मानते हुए यह बताया है कि माधुर्य, व्यंजक वर्णों से युक्त ललित रचना ही वैदर्भी है । माधुर्य गुण प्रधान कविताएं इसमें होती हैं । आचार्य विश्वनाथ के अनुसार गौड़ी रीति वह है जिसमें ओज गुण के प्रकाशक वर्णों, लंबे समास युक्त पदों का प्राचुर्य और बन्ध का विशेष आड़ंबर हो । इसमें महाप्राण शब्दों की प्रमुखता है । वैदर्भी और गौड़ी रीतियों के बीच की रीति को पाँचाली कहते हैं । विश्वनाथजी का मानना है कि वैदर्भी एवं गौड़ी में मुख्य रूप से प्रयुक्त होनेवाले वर्णों से संघटित, अधिक से अधिक पाँच, छह पदों के समासों से युक्त रचना पाँचाली मानी जाती है । जिस शैली में कोमल पदोंवाली उचित समास से युक्त विश्लेषण प्रधान वर्णन किया है उस शैली को लाटी कहा है । आचार्य विश्वनाथजी इसे वैदर्भी और पाँचाली के मध्य की रीति माना है ।

कवि की प्रकृति और व्यक्तित्व, वर्ण-योजना, शब्द संगठन, अलंकार प्रयोग, भाव-संपत्ति तथा उक्ति वैचित्र्य प्रकाशित होता है । इसके द्वारा कविता में निजता होती हैं । शैली व्यक्ति, वर्ण्य विषय, पात्र, परिस्थिति, भाव, उद्देश्य आदि

पर आधारित होते हैं । सरस शौली, मधुर शैली, उदात्त शैली और व्यंग्य शैली आदि प्रचलित शैलियाँ है ।

सरस शैली भाव एवं रस का निरूपण करनेवाली होती है । यह प्रसाद गुण संपन्न है और सरल भाषा में भावनुसार शब्दावली का प्रयोग होता है । इस प्रकार सर्वजन सुगम, रमणीय शैली को सरस शैली कहते हैं । हिन्दी साहित्य में तुलसी, सूर, मीराबाई, मैथिलीशरण गुप्त आदि की रचनाओं में सरस शैली के उदाहरण मिलते हैं । मधुर शैली में सुकुमार एवं कोमल भावों का वर्णन मधुर एवं संगीतमय शब्दों द्वारा उपनागरिका वृत्ति के प्रयोग से किया है । जयदेव, विद्यापति, नन्ददास, देव मतिराम, पंत आदि इस शौली में लिखे हैं । ललित शैली में शब्दों का कलात्मक प्रयोग, कल्पना की रंगीन एवं वर्णन की सूक्ष्मता एवं चित्रात्मकता, उक्ति चमत्कार और आलंकारिकता रहती है । इस शैली में लिखनेवाले कवि हैं – कालिदास, बिहारी, प्रसाद, महादेवी आदि । क्लिष्ट शैली में शब्दों का सांकेतिक, लाक्षणिक, प्रतीकात्मक प्रयोग, गूढ अर्थ या क्लिष्ट कल्पना की प्रचुरता, भाव बिना व्याख्या या अस्पष्ट टीका आदि होते हैं । केशवदास, सेनापति, निराला आदि इस शैली में रचना करते हैं । जो शैली ओज गुण संपन्न, वीरता, उत्साह, भय आदि भावों की प्रेरक दीर्घमात्रा युक्त, दीर्घश्वास प्रवाही पदोंवाली, कहीं कहीं संयुक्ताक्षर युक्त उत्तेजक हो उसे उदात्त शैली कहते हैं । चन्दबरदाई, भूषण, दिनकर आदि इस शैली में काव्य रचना करते हैं । किसी बात को इस ढ़ंग से कहना कि उसमें एक तीखा प्रभाव व्यक्त हो तो उसे वक्रोक्ति

या व्यंग्य शैली कहते हैं । इसमें वाच्यार्थ गौण और व्यंग्यार्थ प्रधान होता है । सूरसागर का भ्रमर गीत प्रसंग, रामचरित मानस के लक्ष्मण-परशुराम संवाद, अंगद-रावण संवाद तथा बिहारी के कुछ दोहों में इसका प्रयोग देख सकते हैं ।

भारतीय साहित्यशास्त्रियों ने काव्य रचना के तीन हेतु माने हैं – 1) प्रतिभा (शक्ति) 2) व्युत्पत्ति 3) अभ्यास । प्रतिभाहीन व्यक्ति के द्वारा रचना संभव नहीं है । मात्र प्रतिभा से भी काव्य रचना संभव नहीं है । इसके लिए व्युत्पत्ति और निपुणता की आवश्यकता है । अध्ययन, चिन्तन-मनन, लोक के निरीक्षण आदि से कवि को व्युत्पत्ति या बहुज्ञता प्राप्त होता है । इसके निरंतर अभ्यास करने पर कवि की रचना प्रौढ़ होती है ।

गुण काव्य के प्रमुख तत्त्व हैं । गुण वर्ण संघटन, शब्द योजना, शब्द चमत्कार, शब्द प्रभाव और अर्थ की दीप्ति पर आश्रित है । काव्य गुण के लक्षण, स्थिति एवं प्रकारों की संख्या के विषय में संस्कृत आचार्यों में मतभेद है । गुण का स्वतंत्र लक्षण प्रस्तुत करने का श्रेय वामनजी और आनंदवर्द्धनजी को है । आचार्य वामन के अनुसार 'काव्यशोभाया: कर्तारो धर्मा; गुणा:' अर्थात् काव्य का शोभाकारक तत्त्व है गुण । आचार्य आनंदवर्द्धन ने यह माना है कि रसयुक्त रचना में गुण अविचल है और रस विहीन रचना में गुण का अभाव होता है ।

आचार्य भरतमुनि ने गुणों की संख्या दस माना है । आचार्य दण्ड़ी ने भी इन्हीं गुणों को स्वीकार किया है । आचार्य वामन और दण्ड़ी के मत में अंतर है । क्योंकि दण्ड़ीजी काव्य की शोभा बढ़ानेवाले तत्त्व अलंकार को मानते हैं तो

वामनजी गुण को । आ. वामन के अनुसार अलंकार शोभा बढ़ानेवाले हैं । आ.वामन पद रचना के दस गुण मानते हैं । उनके अनुसार पद रचना के संश्लिष्ट संगठन में ओज; शिथिल संगठन में प्रसाद; जहाँ एक पद से अनेक अर्थ लगें वहाँ श्लेष; शैली की एक समानता,समता; उतार-चढ़ाव का क्रम समाधि; समास रहित पद प्रयोग माधुर्य; कठोरता के अभाव से सौकुमार्य, जहाँ वर्ण नृत्य से करते हो वहाँ उदारता, जहाँ स्पष्टता, वहाँ अर्थव्यक्ति; नव्यता और चमक में कान्ति, गुणों का उपस्थिति मानी जाती है । उसी प्रकार अर्थ की दृष्टि से उन्होंने अलग व्याख्या दी है । उसके अनुसार अर्थ की प्रौढ़ता ओज, अनेक विशेषताओं का संगठन श्लेष; विषमता का अभाव समता; अर्थ की विशेषता समाधि; उक्ति वैचित्र्य माधुर्य; परुषता का अभाव सौकुमार्य; ग्राम्यत्व की हीनता, उदारता; स्पष्टता, अर्थव्यक्ति तथा रस की दीप्ति कान्ति है ।

आचार्य आनंदवर्द्धन के अनुसार गुण शब्द, अर्थ आदि काव्यांग न होकर काव्य के धर्म हैं । उनका कथन है 'तमर्थवलम्बन्तेचाङ्गिनं ते गुणाः स्मृताः ।' गुण अंग का धर्म न होकर अंगी का धर्म माना जाता है । आचार्य आनंदवर्द्धन और वामन के विचारों में अंतर हैं । क्योंकि वामन ने गुण को रीति के धर्म माना है और आनंदवर्द्धन, मम्मट, अभिनव गुप्त आदि आचार्यों ने इन गुणों को रस के धर्म माना है क्योंकि रस अंगी है ।

आनंदवर्द्धन, मम्मट, हेमचन्द्र, विद्याधर, विश्वनाथ, जगन्नाथ आदि संस्कृत आचार्यों ने गुणों की संख्या दस माने हैं । इनमें तीन प्रमुख माने जाते

हैं – माधुर्य, ओज और प्रसाद । ये गुण रसास्वाद के समय सामाजिक दुति, दीप्ति और प्रसन्नता जैसी तीन अवस्थाओं के साथ सामंजस्य द्वारा निश्चित किये गये हैं । यहाँ माधुर्य का संबंध चित्त को द्रवित करने से, ओज का संबंध चित्त को उत्तेजित करने से और प्रसाद का संबंध चित्त को प्रसन्न करने से है ।

गुणों की संख्या के संबंध में विद्वानों में मतभेद है । आचार्य भरत श्लेष, प्रसाद, समता, समाधि, माधुर्य, ओज, पद सौकुमार्य, अर्थ व्यक्ति, उदारता, कान्ति आदि दस गुण माने हैं । इसका समर्थन आचार्य दण्ड़ी ने किया है । आचार्य कुंतक औचित्य और सौभाग्य को दो अनिवार्य सामान्य गुण और माधुर्य, प्रसाद, लावण्य और आभिजात्य को चार विशिष्ट गुण माना है । आचार्य आनंदवर्द्धन, मम्मट, वामन आदि माधुर्य, ओज और प्रसाद गुण माने हैं । हिन्दी के आचार्यों ने इसे ही मान्यता प्रदान की है ।

इस शब्द का अर्थ है – मधुर होने की विशेषता, मिठास अथवा रोचकता आदि । काव्य के संदर्भ में भिन्न-भिन्न आचार्यों ने भिन्न-भिन्न अर्थ में इसे ग्रहण किया है । आचार्य भरत इसे श्रुति मधुर मानते हैं तो दण्ड़ी रसमयता या रस से उत्पन्न मानते हैं और वामन इसे दीर्घ समास का निषेध मानते हैं । माधुर्य ऐसा आनंद प्रदान करता है जिसमें अंत:करण द्रवित हो जाता है । यह गुण संयोग शृंगार, करुण, विप्रलंभ शृंगार और शांत रसों में क्रम से बढ़ा हुआ रहता है । इसमें छोटा समास होते हैं ।

माधुर्य गुण का प्रयोग शृंगार रस, करुण तथा शांत रस में होता है । इसमें कर्ण मधुर शब्दों का प्रयोग होता है । श्रुति सुखदता, सम्स-रहितता, उक्ति-वैचित्र्य,आर्द्रता, चित्त को द्रवित करने की विशेषता, भावमयता, आह्लादता आदि माधुर्य गुण के गुण-विशेष है ।

ओज का अर्थ है – तेज़, प्रताप, दीप्ति आदि । ओज गुण पाठकों के मन में उत्साह, वीरता, आवेश आदि जाग्रत करने की क्षमता रखते हैं । ओज गुण चित्त का विस्तार करते हैं । इसकी अधिकता, वीर, बीभत्स एवं रौद्र रसों में है । इसमें लम्बे समास होते हैं । वीर, बीभत्, तथा रौद्र रसों में परुषा वृत्ति लाने के लिए ओज गुण आवश्यक है । इसके लिए परुष या कर्ण कटु वर्ण जैसे ट, ठ, ड़, ढ़ आदि और संयुक्ताक्षर, द्वित्व और 'र' के संयोग से बने शब्दों का प्रचुर प्रयोग करते है । तथा इसमें समास तथा आड़ंबर पूर्ण पद योजना का बाहुल्य भी होता है ।

इसका अर्थ है - प्रसन्नता, खिल जाना या विकसित हो जाना । सभी युगों के श्रेष्ठ कवियों ने प्रसाद गुण का प्रयोग किया है । वाग्जाल रहित रचना को प्रसाद गुण कहते हैं जिसे पढ़ते ही कवि या लेखक का आशय समझ में आ जाता है । यानी इसमें सरल, सहज भाव व्यंजक शब्दावली का प्रयोग किया जाता है । सभी रसों में व्याप्त इसकी बड़ी विशेषता है – अर्थ की निर्मलता या स्वच्छता ।

अलंकार शब्द 'अलं + कार' से बना है, जिसमें 'अलं' का अर्थ है 'भूषण' और 'कार' का अर्थ है 'करनेवाला या जिससे किया जाए ।' इस प्रकार अलंकार का शाब्दिक अर्थ है 'वह साधन जो किसी वस्तु को अलंकृत करे अथवा जिससे कोई वस्तु अलंकृत की जाए ।' अलंकार शब्द की तीन व्युत्पत्तियाँ मानी गई है – 1) अलंकृति: अलंकार: 2) अलंकारोति इति अलंकार: और 3) अलंक्रियते अनेन अलंकार: । प्रथम व्युत्पत्ति में अलंकार को सर्वाधिक महत्त्व प्राप्त हुआ है । आचार्य वामन और जयदेव ने इसी व्युत्पत्ति को स्वीकारा है । आ. वामन कहते है कि अलंकार रहित काव्य काव्य नहीं है । दूसरी व्युत्पत्ति अलंकार को अलंकृत करनेवाला तत्त्व माना है । यानी काव्य को सौंदर्य प्रदान करनेवाला है । अलंकार काव्य का अंतरंग उत्पाद है । तीसरी व्युत्पत्ति के अनुसार, जिसमें अलंकार को बाह्य पदार्थ के रूप में माना है ।

संस्कृत काव्यशास्त्र में अलंकार शब्द सामान्य अर्थ में समस्त सौंदर्य का पर्यायवाची के रूप में है तो काव्यगत व्यापक अर्थ में संधि, संध्यंग, वृत्ति, वृत्यंग, लक्षण आदि काव्य के सभी सौंदर्य वर्द्धक तत्त्व अलंकार की सीमा में आ जाते हैं । काव्यगत विशिष्ट अर्थ में विशिष्ट शब्दयोजना और अर्थ चमत्कृतिमूलक अनुप्रास, उपमा आदि काव्यशोभाकार साधनों के लिए अलंकार प्रयुक्त होता है । इसी अर्थ में 'अलंकार' शब्द काव्यशास्त्र में रूढ़ हो गया है ।

काव्य में अभिव्यक्ति की पूर्णता या पर्याप्तता के लिए अलंकारों का प्रयोग करते है । इस पर्याप्तता में ही सौंदर्य का महत्त्व है । अत: जिस प्रकार सौंदर्य

के लिए अलंकार अनिवार्य है उसी प्रकार काव्य के लिए भी अनिवार्य है । अभिव्यक्ति की पूर्णता और अपूर्णता भाषा पर आधारित है । यानी अभिव्यक्ति की पूर्णता भाषा की पूर्णता ही है । अत: अलंकारों की सृष्टि भाषा को पूर्णता देने के लिए हुई है । इससे स्पष्ट है कि व्युत्पत्ति की दृष्टि से अलंकार का संबंध अभिव्यक्ति या काव्यभाषा से है ।

भाव और वस्तु काव्य के वर्ण्य होते हैं । काव्य में अलंकार कभी किसी भाव की तीव्र प्रतीति करता है तो कभी किसी वस्तु का बोध कराते है । वस्तु का बोध कई प्रकार से हो सकता है जैसे उसके रूप का बोध, गुण का बोध और उसकी क्रिया का बोध । वस्तु का बोध या निवृत्ति की भावना का भी बोध कराते है । इसकी समता प्रदर्शित करनेवाले अलंकारों का प्रयोग करते हैं और इसके दो पक्ष हैं – उपमेय या वर्ण्य वस्तु तथा उसके बोध के लिए लाई जानेवाली वस्तु या उपमान ।

1.7 निष्कर्ष:-

सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक, सांस्कृतिक परिवर्तनों का प्रभाव भाषा पर पड़ता है । भाषा का सशक्त प्रयोग साहित्यिक रचनाओं में प्राप्त होते हैं । अत: समाज, धर्म, राजनिति आदि प्रत्येक क्षेत्र के नेता एवं प्रवर्तकों ने अपने विरोधियों के प्रति घोर विरोध, घृणा, आक्रोश आदि प्रकट करने के लिए और उसी प्रकार अपना आभार प्रकट करने के लिए भी साहित्यिक रचनाओं की सृष्टि की है । इसके लिए उन्होंने विभिन्न साहित्यिक विधाओं को अपनाया है जैसे

कविता, नाटक, उपन्यास, कहानी, निबंध, आलोचना आदि । लेकिन इनमें से सबसे सशक्त एवं प्रभावशाली साहित्यिक विधा कविता ही है । काव्यभाषा और गद्यभाषा में व्याकरण, शब्दशक्ति, छंद और लय, प्रतीक और बिम्ब योजना आदि के कारण जो अंतर है वही इसका प्रमाण है ।

कविता और भाषा का अन्योन्याश्रित संबंध है तो है ही भाषा में होनेवाले परिवर्तन कविता में देख सकते हैं । उसी प्रकार कविता में भाषा के नये-नये प्रयोग भी होता ही रहते हैं जिसके द्वारा भाषा परिष्कृत हो जाती है । कविता में हम नये-पुराने शब्द, छंद, अलंकार आदि के अलावा तत्कालीन सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक परिस्थितियों को भी देख सकते हैं । कविता कम शब्दों में बहुत कुछ कह देती है । अत: आज भी इसके पाठकों की संख्या में कमी नहीं हुआ है । ये सब इस बात को सूचित करता है कि कविता आज भी साहित्यिक क्षेत्र में सशक्त रूप में प्रतिष्ठित है ।

.....ଓଡ.....

अध्याय दो
आदिकालीन काव्यभाषा का स्वरूप

भारत की सभी आधुनिक आर्य भाषाओं का जन्म एवं विकास भारतीय प्राचीन आर्य भाषा से हुआ है । हिन्दी आर्य परिवार की भाषा हैं । भारत में आर्यों का आगमन 2000-1500 ई.पूर्व माना जाता है । अनार्यों पर आर्यों का विजय राजनीति, संस्कृति तथा भाषा की दृष्टि से संपन्न विजय थी । अनार्यों की संस्कृति, भाषा तथा धर्म का प्रभाव आर्यों के यज्ञ-प्रधान संस्कृति पर अवश्य पड़ा ।

आर्यों के विभिन्न गोत्रों में प्रचलित भाषाओं में अंतर था । समय के साथ भाषा में भी परिवर्तन होने लगा । आर्यों के तत्कालीन बोलचाल की भाषा और साहित्यिक भाषा में अंतर था । साहित्य में बोलचाल की बोली नियमबद्ध हुआ, वाणी ने उसे भिन्न रूप प्रदान किया । इस प्रकार प्राचीन भारतीय आर्यभाषा से आधुनिक आर्यभाषा का विकास हुआ ।

भाषा के इतिहास की ओर गौर करें तो भारतीय आर्यभाषाओं में विकास के तीन चरण लक्षित होते हैं, जैसे :-

1) प्राचीन भारतीय आर्यभआषा – 1500 ई.पू. से 500 ई.पू. तक ।
2) मध्यकालीन भारतीय आर्यभाषा – 500 ई.पू से 1000 ई. तक ।
3) आधुनिक भारतीय आर्यभाषा – 1000 ई. से अब तक ।

कविता का इतिहास काव्यभाषा का भी इतिहास है । शुक्लजी कृत हिन्दी साहित्य के प्रामाणिक काल विभाजन के आधार पर हम हिन्दी काव्यभाषा के इतिहास को भी चार युगों में वर्गीकृत कर सकते हैं । जैसे –

1. आदिकालीन हिन्दी काव्यभाषा - सं.1050 से सं.1375 तक ।
2. पूर्वमध्यकालीन हिन्दी काव्यभाषा - सं.1375 से सं.1700 तक ।
3. आधुनिक कालीन हिन्दी काव्यभाषा - सं. 1900 से अब तक ।

2.1 कविता में देश काल परिकल्पना

अन्य विधाओं के समान कविता में देश-काल पर आधारित प्रवृत्तियाँ लक्षित होता है । आविर्भाव काल से किसी भाषा में साहित्य की रचना नहीं होने लगती । भाषा जब सर्वसाधारण में प्रचलित और शब्द-शक्ति संपन्न बनकर कुछ पुष्टता लाभ करती है तभी उसमें साहित्य का सृजन होता है । इस साहित्य का आदिम रूप प्राय: छोटे-छोटे गीतों अथवा साधारण पदों के रूप में पहले प्रकट होता है और यथाकाल वही विकसित होकर अपेक्षित विस्तार लाभ करता है । हिन्दी भाषा के लिए भी यही बात कही जा सकती है । इतिहास बतलाता है कि आठवीं शताब्दी में साहित्य रचना होने लगी थी । इस सूत्र से यदि उसका आविर्भाव काल छठीं या सातवीं शताब्दी मान लिया जाय तो असंगत न होगा ।

ऐतिहासिक अनुमानों से यह जान पड़ता है कि जिस समय मुसलमान लोग सिंध की सीमा पर थे उस समय देश में इन दोनों धर्मों में भारी लड़ाई हो रही थी और बौद्ध लोग ब्राह्मणों का सामना करने में अपने आपको असमर्थ

देखकर मुसलमानों की ओर मेल और प्रेम का हाथ बढ़ा रहे थे । सिंध पर अधिकार होने के बाद अरब विजेताओं ने भारत के विभिन्न प्रातों पर आक्रमण करना प्रारंभ किया । इस कारण से उस समय भारत का कुछ उत्तरी और दक्षिणी प्रांत रणक्षेत्र बन गया और ऐसी अवस्था में आक्रमित प्रांतों में युद्धोन्माद का आविर्भाव होना स्वाभाविक था । ये झगड़े नवीं और दसवीं शताब्दी में उत्तरोत्तर वृद्धि पाते रहे । इसलिए हिन्दी साहित्य की अधिकांश आदिम रचनाएँ वीरगाथाओं से ही संबंध रखती हैं । इन दोनों शताब्दियों में जितने साहित्य-ग्रन्थ रचे गये उनमें से अधिकतर में रण-भेरी-निनाद ही श्रवणगत होता है । खुमाण रासो, पृथ्वीराज रासो आदि इसका उदाहरण है । इस प्रकार आरंभिक काल आठवीं शताब्दी से तेरहवीं शताब्दी तक माना जाता है ।

आदिकाल में कुछ रचनाएँ ऐसी हैं जिन्हें 'अपभ्रंश' काव्य नाम दिया गया है । अपभ्रंश की इन रचनओं में सब प्रकार की प्रवृत्तियाँ हैं । कोई विशेष प्रवृत्ति व्यापक नहीं है । उसके साथ ही जिन दूसरी रचनाओं का विचार किया गया है उसका नाम 'रासा' है । 'रासा' नाम 'रासक' से बना है जिसका अर्थ है 'काव्य' । यह 'रासक' शब्द अपभ्रंश काल में 'काव्य' के अर्थ में प्रचलित था । इस शब्द के भाषा–भेद से तीन रूप प्रचलित थे रासा, रासो और रास । 'रासा' खड़ीबोली की प्रवृत्ति के अनुकूल, 'रासो' ब्रजभाषा की पद्धति के अनुरूप और 'रास' अवधी के प्रचलन के अनुसार था । जो ग्रन्थ इस नाम से राजस्थान में बनें उनका नाम 'रासो' ही होना चाहिए । क्योंकि इन ग्रन्थों में प्रयुक्त भाषा को राजस्थान के कवि 'पिंगल' कहते थे जो ब्रजभाषा का अथवा सर्वसामान्य ब्रजरंजित

काव्यभाषा का नाम था । ब्रजरंजित काव्यभाषा केवल राजस्थान में ही नहीं प्रचलित थीं, पंजाब, मध्यप्रदेश (महाकोशल), अवध, बिहार, यहाँ तक की महाराष्ट्र, उड़ीसा, बंगाल, असम और नेपाल में भी प्रचलित थी । मैथिल कोकिल विद्यापति की रचनाएँ हिन्दी के अन्तर्गत इसलिए मानी गई कि उनकी भाषा ब्रजरंजित है । शौरसेनी या मध्यदेशी भाषा आधार सर्वसामान्य काव्यभाषा में सदा से कुछ न कुछ रहा है । प्रादेशिक प्रवृत्तियों के प्रबल हो जाने पर वह धीरे-धीरे कम होता गया और प्रादेशिक भाषाएँ स्फुट होती गई । विद्यापति का 'अवहट्ठ' तो शौरसेनी रंजित है ही, उनके गीत भी शौरसेनी संवलित या ब्रजरंजित है । यही स्थिति सार्वजनिक थी । कोई रचना हिन्दी के अंतर्गत क्यों मानी जाय इसके लिए आधार था उसकी भाषा का ब्रजरंजित होना ।

'रासा' ग्रन्थों की भाषा ब्रजरंजित है, अत: वे हिन्दी के अंतर्गत में ही आते हैं । पर वे कृतियाँ जिस समय की कही जाती है उस समय की ही हैं इसमें बड़े-बड़े इतिहास मर्मज्ञों को भी संदेह हैं । प्रबल प्रमाणों से उन्होंने सिद्ध किया है कि अपने-अपने वर्तमान रूप में पृथ्वीराज रासो, बीसलदेव रासो संवत् 1600 के पूर्व तक नहीं जाते । पुरातन प्रबंध संग्रह में पृथ्वीराज की प्रशस्ति को जो दो-चार छंद मिले हैं और जिनमें से तीन कुछ परिवर्तित रूप में मुद्रित 'पृथ्वीराज रासो' में मिलते हैं उनसे इतना ही सिद्ध होता है कि पृथ्वीराज का प्रशस्ति-काव्य बहुत पहले से बन रहा था । यह 'प्रबंध संग्रह' से ही क्यों, 'प्राकृत पैंगलम' में दिए हुए पृथ्वीराज विषयक पद्यों के कतिपय उदाहरणों से भी सिद्ध है । पर इससे 'पृथ्वीराज रासो' पूरा का पूरा प्राचीन है यह प्रमाणित

नहीं होता । स्वयं 'पृथ्वीराज रासो' में ही लिखा है कि चंद द्वारा लिखित और उसके पुत्र द्वारा परिसमाप्त इस कृति के पद्य इधर-उधर बिखरे हुए थे जिन्हें 'कक्का' कवि ने संकलित किया । अनुमान से ये अमरसिंह के दरबारी कवि जान पड़ते हैं । इस प्रकार हिन्दी साहित्य के आदिकाल में ये रचनाएँ ऐतिहासिक दृष्टि से नहीं आतीं ।

आदिकालीन रचनाओं में चार प्रकार की भाषाएं उपलब्ध है – 1) अपभ्रंश 2) पिंगल 3) मैथिली 4) खड़ीबोली । तांत्रिक और योगमार्गी बौद्धों की रचनाओं में अपभ्रंश के सबसे प्राचीन रूप प्राप्त होते है । बौद्ध ग्रन्थों से उच्चकोटि के अपभ्रंश काव्य मेरुतुंग, सोमप्रभ सूरि आदि द्वारा लिखे गए हैं । अपभ्रंश, राजस्थानी और खड़ीबोली से मिश्रित भाषा का प्रयोग नाथ पंथियों ने की है । अपभ्रंश में विद्यापति ने दो ग्रन्थ लिखे हैं । उस समय के कवियों की भाषा अपभ्रंश थी । वे साहित्यिक प्राकृत से शब्द, विभक्तियाँ, कारक-चिह्न तथा क्रियाओं को भी अपना लिया है । सिद्धों की भाषा देशभाषा मिश्रित अपभ्रंश था । जैन साहित्य में चरित्र रासक, चतुष्पदी, ढ़ाल, दोहा आदि छंदों का प्रयोग नागर अपभ्रंश के प्रभाव से अधिक मिलता है ।

2.2 **रासो साहित्य** परंपरा **का विकास**

आदिकालीन रासो काव्य कृतियों में वीर चरित्र का वर्णन होता था । बाद में मुनियों एवं तीर्थ स्थलों के चरित्र माहात्म्य का उल्लेख एवं प्रशस्ति इसका विषय रहा है । इस प्रकार देखें तो रासो काव्य परंपरा का विकास दो स्वरूपों में होने लगा । वे हैं – 1) जैन रास काव्य कृतियाँ 2) जैनेतर रास काव्य कृतियाँ ।

जैन रास काव्य में जैन धर्म के प्रतिपादन, यतियों, मुनियों, तीर्थ स्थलों एवं धर्म के सिद्धांतों का वर्णन मिलता है । जैनेतर काव्य कृतियों में जैनों से भिन्न विषय को लेकर लिखा गया है । कालांतर में इससे भिन्न एक तीसरा स्वरूप भी रासो काव्य का विषय बन गया । इसमें समाज में फैली कुरूपताओं का व्यंग्य चित्र प्रस्तुत किया गया है । इन तीन धाराओं में लिखी गयी काव्य कृतियों ने रासो काव्य परंपरा के विकास में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है ।

प्रत्येक भाषा में 'रासो' शब्द का प्रयोग अलग-अलग अर्थ में होता है जैसे आधुनिक राजस्थानी में झगड़ा, उपद्रव, झंझट, युद्ध, कलह आदि अर्थों में प्रयुक्त होता है तो ब्रजभाषा में विशिष्ट काव्य रूप के अर्थ में प्रयुक्त होता है । रास, रासक, रसायन, रायसो, राइसो, रासठ, रासु आदि इसके समानार्थी शब्द है । 'रासो' शब्द की व्युत्पत्ति के संबंध में अनेक विद्वानों ने अपने-अपने ढ़ंग से मत प्रकट किया है । श्री पोपट लाल शाह ने रासो की व्युत्पत्ति 'रस' से मानी है तो आचार्य रामचन्द्र शुक्लजी ने 'रसायण' से मानी है और कविराज श्यामलदास काशीप्रसाद जायसवाल तथा रामनारायण दूगड़ ने 'रहस्य' से माना है । उसी प्रकार गर्सा द तासी ने 'राजसूय' से, विन्ध्येश्वरी प्रसाद दुबे ने 'राजयशः' से तथा ग्रियर्सन ने 'राजादेशः' से रासो की व्युत्पत्ति माना है

कुछ विद्वान लोग संस्कृत लक्षण ग्रन्थों में उपरूपक के लिए व्यवहृत 'रासक' शब्द से रासो की व्युत्पत्ति माना है । संस्कृत का 'रासक' शब्द अपभ्रंश में आकर 'रासअ', 'रासठ' और अंत में 'रासो' या 'रासौ' हो गया है ।

यह खड़ीबोली में छंद-नियमों में 'राइसो' या 'रायसो' हो गया है । हरिवंश पुराण, विष्णु पुराण, सरस्वती कंठाभरण तथा शृंगार प्रकाश आदि ग्रन्थों में नृत्य विशेष के रूप में इसका उल्लेख मिलता है । इस प्रकार प्राचीन राजस्थानी तथा गुजराती में बड़ी संख्या में रासो ग्रन्थ उपलब्ध होते हैं । दरबारी कवियों ने अपने आश्रयदाता राजाओं के वीरकार्यों को विशेषकर युद्ध विजय के बखान करने के लिए रासो काव्य की रचना की है । वर्ण्य-विषय के आधार पर 'रासो' शब्द का अर्थ निरंतर परिवर्तित होता रहा है ।

डॉ.माताप्रसाद गुप्त ने अपभ्रंश की रास या रासक के दो रूप माने हैं – गीत-नृत्य परक और छंद वैविध्य परक । गीत-नृत्य परक परंपरा में कथा माध्यम से अथवा मुक्तक रूप में जैन-धर्म का पोषण करनेवाले जैन काव्यों जैसे उपदेश रसायन रास, भरतेश्वर बाहुबलि रास, बुद्धि रास, चन्दनबाला रास, रेवन्तगिरि रास आदि का समावेश होता है जो गुजरात और पश्चिमी राजस्थान में रची गयी थी । छंद वैविध्यपरक परंपरा में वीर चरित वर्णन की प्रधानता है । हिन्दी प्रदेश में लिखी गयी यह काव्य-परंपरा वीर पुरुषों के चरित गान के रूप में विकसित हुई थी । जैन कवियों द्वारा रचे गये रासो ग्रन्थों में जैन धर्म के महापुरुषों का वर्णन और जैनेतर रासो ग्रंथों में ऐतिहासिक वीरों का वर्णन होता था । ये दो परंपराएँ अपभ्रंश में 'धार्मिक रास परंपरा' और हिन्दी में 'ऐतिहासिक रास परंपरा' के रूप में विकसित हुई थी । चंदबरदाई कृत 'पृथ्वीराज रासो' ऐतिहासिक रासो काव्य है । ऐतिहासिक दृष्टि से अत्यंत

विवादास्पद काव्य ग्रन्थ भी है । ड़ॉ.हज़ारीप्रसाद द्विवेदी ने इसके संबंध में यों कहा है – "पृथ्वीराज रासो चरित काव्य तो है ही, वह रासो या रासक काव्य भी है ।"[1] यहाँ उन्होंने 'पृथ्वीराज रासो' को रासो तथा रासक काव्य के रूप में स्वीकारा है ।

2.3 पृथ्वीराज रासो की काव्यभाषा

'पृथ्वीराज रासो' की भाषा के संबंध में विद्वानों में मतभेद है । अधिकाँश विद्वानों की राय में 'पृथ्वीराज रासो' की भाषा पिंगल (ब्रजभाषा) है । इसको माननेवालों में प्रमुख है – गर्स द तासी, डॉ. धीरेन्द्र वर्मा आदि । डॉ.धीरेन्द्र वर्मा का मत है कि पृथ्वीराज रासो की भाषा ब्रज होने का साथ-साथ अपभ्रंश और डिंगल रूपों का प्रयोग शब्द समूह में किया गया है । इसी शब्दावली के कारण पृथ्वीराज रासो की भाषा डिंगल या अपभ्रंश होने का संदेह पाठकों को होता है ।

रासो की भाषा न कोई जीवित भाषा है और न ही किसी प्रदेश की बोलचाल की भाषा । वह तो अनेक क्षेत्रों के भाषाओं से सम्मिलित एक कृत्रिम साहित्यिक भाषा है । इस प्रकार 'पृथ्वीराज रासो' में डिंगल और पिंगल का समावेश है । भाषा के संबंध में डॉ.हज़ारीप्रसाद द्विवेदीजी का मत है कि – "युद्धों के प्रसंग में 'पृथ्वीराज रासो' की भाषा ड़िंगल का रूप धारण करती है किन्तु विवाह, प्रेम जैसे सुकुमार प्रसंगों में वह प्रधान रूप से पिंगल ही बनी रहती है ।

[1] हज़ारीप्रसाद द्विवेदी – हिन्दी साहित्य का आदिकाल, पृ 64

वस्तुत: मूल 'पृथ्वीराज रासो' शौरसेनी अपभ्रंश में लिखा गया था जो परिनिष्ठित साहित्यिक अपभ्रंश से थोड़ी भिन्न और कुछ आगे बढ़ी हुई थी ।"[2]

'पृथ्वीराज रासो' में उसकी भाषा के संबंध में यह श्लोक आया है –

"उक्ति धर्मा विशालस्य । राजनीति नवं रसं ।।

षड्भाषा पुराणं च । कुरानं कथितं मया ।।"[3]

धर्म, राजनीति, नवरस, पुराण और कुरान की ये उक्तियाँ षड्भाषा में कही गयी है । ये षड्भाषा कौन-कौन सी हैं या हो सकती हैं इसका निश्चय किए बिना 'पृथ्वीराज रासो' की भाषा का विचार नहीं किया जा सकता । संस्कृत-प्राकृत के वैयाकरणों ने संस्कृत के साथ अपभ्रंश सहित पाँच प्राकृतों का नाम लिया है जिनमें से यदि अपभ्रंश को पृथक कर दें तो ये चार प्रसिद्ध प्राकृतें बचती हैं – महाराष्ट्री, शौरसेनी, मगधी, पैशाची । रासो की रचना भारत के पश्चिमी अंचल में हुई । अत: मागधी, जो पूर्वी अंचल की प्राकृत है, उसमें प्रयुक्त नहीं हो सकती । अत: संस्कृत अपभ्रंश सहित केवल पाँच ही भाषाएँ रह जाती हैं । फारसी संस्कृत की एक प्रकार की प्राकृत है इसे तो आधुनिक भाषाविज्ञान भी पुकारता है । ऐसी स्थिति में या तो यह माना जाय कि रासो की छठी भाषा फारसी है और फारसी में ही अरबी-तुर्की भी अंतर्भुक्त हैं । ऐसे ही यह भी कहा

[2] हज़ारीप्रसाद द्विवेदी – हिन्दी साहत्य का आदिकाल, पृ 69

[3] हज़ारीप्रसाद द्विवेदी और नामवर सिंह – संक्षिप्त पृथ्वीराज रासो, पृ 20

जा सकता है कि छठी भाषा अरबी है और उसीमें फारसी या फारसी और तुर्की अंतर्भुक्त है ।

मुसलमानों ने भारत में शासन आरंभ करते ही अनुभव किया था कि जो भाषा शासकों की है यदि उसके पर्यायवाची देशी शब्दों का ज्ञान शासन और लोक को नहीं कराया जाता तो जनता और शासन दोनों को कठिनाई होगी । इसी उद्देश्य से कई पर्यायवाची कोशों का निर्माण हुआ । पर वे सब मिलते नहीं । अमीर खुसरो की जो खालिकबारी कही जाती है उसमें अरबी-फारसी शब्दों और देशी भाषा के पर्यायवाची शब्द संकलित है – संस्कृत श्लोकों में । रासो को वर्तमान रूप मुसलमानी शासन के अनंतर प्राप्त हुआ यह निश्चित है । पर विदेशी शासन के पूर्व भी विदेशियों से संसर्ग-संपर्क अवश्य था । अत: छठी भाषा अरबी-फारसी या यवन भाषा हो सकती है । ऐसे अनुमान का कारण श्लोक का 'कुरान' शब्द भी है ।

रासो ग्रन्थ की रचना मुख्य रूप में 'ड़िंगल' या राजस्थानी भाषा में हुई है । ड़िंगल साहित्य अव्यवस्थित और पिंगल का मिश्रण होने के कारण इसका शुद्ध रूप मिलना कठिन है । बाद में इसमें संयुक्ताक्षरों और अनुस्वारों का प्रयोग अधिक देख सकते हैं । क्योंकि अपभ्रंश का प्रभाव डिंगल पर भी पडा है और अरबी-फारसी के प्रयुक्त शब्दों पर डिंगल की विभक्तियों का प्रभाव भी पडा है । संयुक्ताक्षरों और अनुस्वारों में जो प्रचुरता है वह भाषा की कृत्रिमता को व्यंजित करता है ।

रासो की भाषा में उत्तर भारत की बारहवीं शताब्दी की प्रचलित भाषाओं का मिलन होने कारण इसे 'संध्या भाषा' कहते हैं । इसमें वैदिक, संस्कृत, पाली, पैशाची, अर्धमागधी, महाराष्ट्री, शौरसेनी, मागधी आदि द्वितीय स्तर की प्राकृतों, अपभ्रंश, देश्य, प्राचीन राजस्थानी, प्राचीन गुजराती, पंजाबी, ब्रज आदि भारतीय भाषाओं के शब्द, अरबी, फारसी, तुर्की शब्दों का भी प्रयोग मिलते हैं । रासो के श्लोक छंद संस्कृत में और गाथा या गाहा छंद प्राकृत या अपभ्रंश मिश्रित हिन्दी में है । अरबी, फारसी, तुर्की आदि विदेशी शब्दों का प्रयोग श्लोक और गाहा छंदों में नहीं मिलते ।

आरंभिक काल का प्रधान कवि चंदबरदाई है । कुछ विद्वानों की यह सम्मति है कि चंद कृत पृथ्वीराज रासो की रचना पन्द्रहवीं या सोलहवीं शताब्दी की है । 'पृथ्वीराज रासो' में बहुत सी रचनाएँ ऐसी हैं जो इस विचार को पुष्ट करती है । परंतु हरिऔधजी का विचार यह है कि इन प्रक्षिप्त रचनाओं के अतिरिक्त उक्त ग्रंथ में ऐसी रचनाएँ भी है जिनको हम बारहवीं शताब्दी की रचना निस्संकोच भाव से मान सकते हैं । इस विषय में बहुत कुछ तर्क-वितर्क हो चुका है और अब तक इसकी समाप्ति नहीं हुई है । तथापि ऐतिहासिक विशेषताओं पर दृष्टि रखकर 'पृथ्वीराज रासो' की आदिम रचना को बारहवीं शताब्दी का मानना पडेगा । बहुत कुछ विचार करने पर श्री अयोध्यासिंह उपाध्याय हरिऔधजी इस सिद्धांत पर पहूँचते हैं कि 'पृथ्वीराज रासो' में प्राचीनता की जो विशेषताएँ मौजूद है वे वीरगाथा काल की किसी पुस्तक में

स्पष्ट रूप से नहीं पनपी जाती । किसी भाषा की आदिम रचनाओं में जो अप्राञ्जलता और शब्द विन्यास का असंयत भाव देखा जाता है वह 'पृथ्वीराज रासो' में मिलता है । इस ग्रन्थ का कुछ आदिम अंश अवश्य है । इस आदिम अंश में से ही उदाहरण स्वरूप कुछ पद्य नीचे लिखे जाते हैं –

1. हय हथ्थि देत सकै न मन । षल षंडन गढ़ गिरन बर ।।[4]
2. जैसे सिंधुर देखि मग । स्वान सुभाव भुसंत ।।[5]
3. अति ढंक्यौ न उधार । सलिल जिमि सिष्षि सिवालह ।।[6]
4. बहु जुद्ध रुद्ध कलि जुग्ग बर । भ्रिन्त सित्त दैतन भिरन ।।[7]

इन पद्यों में यह देखा जाता है कि जहाँ प्राकृत अथवा अपभ्रंश के जुग्ग, हथ्थि आदि प्रतिपादक शब्द आए है वहीं ढंक्यौ, मग आदि क्रियाएँ भी आई हैं । इनमें हय, कपाट, दल, बल इत्यादि संस्कृत के तत्सम शब्द भी मौजूद है और यह कवि द्वारा गृहीत उसकी भाषा की विशेषता है । प्राकृत अथवा अपभ्रंश में प्राय: संस्कृत के तत्सम शब्दों का अभाव देखा जाता है । विद्वानों ने प्राकृत और अपभ्रंश की यह विशेषता मानी है कि उसमें संस्कृत के तत्सम शब्द नहीं आते । परंतु चन्द की भाषा बतलाती है कि उसने अपने पद्यों में संस्कृत तत्सम शब्दों के प्रयोग की चेष्टा भी की है । उसने नकार के स्थान पर णकार का

[4] हज़ारीप्रसाद द्विवेदी और नामवरसिंह – संक्षिप्त पृछ्वीराज रासो, पृ 26
[5] हज़ारीप्रसाद द्विवेदी और नामवरसिंह – संक्षिप्त पृथ्वीराज रासो, पृ 19
[6] हज़ारीप्रसाद द्विवेदी और नामवरसिंह – संक्षिप्त पृथ्वीराज रासो, पृ 20
[7] हज़ारीप्रसाद द्विवेदी और नामवरसिंह – संक्षिप्त पृथ्वीराज रासो, पृ 23

प्रयोग प्राय: नहीं किया है और यह भी हिन्दी भाषा का एक विशेष लक्षण है । प्राकृत और अपभ्रंश में नकार का भी एक प्रकार से अभाव है । डिंगल अथवा राजस्थानी में भी प्राय: नकार का प्रयोग नहीं होता । इन पद्यों में कुछ ऐसी क्रियाएँ भी आई है जो ब्रजभाषा की मालूम होती है वे हैं – उडि चल्यो, आयो, करि आदि और ये सब वे ही विशेषताएँ है जो प्राकृत और अपभ्रंश से हिन्दी भाषा को अलग करती और शनै: शनै: विकसित होने का प्रमाण देती है ।

पद्यों की आदिम रचना इतनी प्राञ्जल और उतनी प्रौढ़ नहीं होती जितनी उत्तरकाल की । चंदबरदाई की रचनाओं में ये बातें पाई जाती है, जो उन्हें आरंभिक काल की मानने के लिए विवश करती हैं । नियम उसी समय निर्दोष बन सकते हैं, जब कार्यक्षेत्र में आने पर उन पर विवेचना का अवसर प्राप्त होता है । आदिम रचनाओं में प्राय: प्राञ्जलता और अनियमबद्धता इसलिए पायी जाती है कि उनका पथ विचार क्षेत्र में आकर प्रशस्त नहीं होता और न आलोचना और प्रत्यालोचनाओं के द्वारा उनकी प्रणाली परिमार्जित हो गयी होती ।

रस

रासो का प्रमुख रस वीर रस है । रौद्र, बीभत्स, भयानक और अद्भुत इसके अंगी रस है । वीर रस के लिए उदा –

"गजै गज मद्द मनौं धन भद्द । चिकार फिकार भए सुर रुद्द ।
तुरंग महींस कडक्क लगाम । खरक्किया पष्षर तोन सुतांन ।
चमकत तेज सनाह सनाह । करैं घर पद्धर राह विराह ।

झलक्कत टोप सुटोप उतंग । मानौं रज जोति उद्योत विहंग ।।"[8]

यहाँ वीर रस द्वारा युद्ध की वर्णना की है ।

शृंगार रस के लिए उदाहरण –

"जीविते लभ्यते लक्ष्मी मृते चापि सुरांगना ।

क्षणे विध्वंसिनी काया, का चिंता मरणे रणं ।।"[9]

इन पंक्तियों में वीर एवं श्रृंगार रस का अद्भुत समन्वय देख सकते हैं । क्योंकि यहाँ एक ओर वीरता और दूसरी ओर मरणोपरांत स्वर्ग में देव-कन्याओं की प्राप्ति दिखाई देती है ।

इस प्रकार चंद रस योजना में बहुत ही सफल कवि सिद्ध होते है ।

अलंकार

वस्तु-वर्णन रासो काव्य की एक प्रमुख विशेषता है । इसमें कवि अपने अनुभव या आँखों देखी घटनाओं या वस्तुओं का सूक्ष्म से सूक्ष्म बातों का ब्यौरा यथाक्रम नाम लेकर प्रस्तुत करता है । इसके लिए कवि अलौकिक कल्पना तथा अलंकारों का प्रयोग करते हैं ।

रासो काव्यों में उत्कृष्ट काव्यत्व होने के नाते 'पृथ्वीराज रासो' को प्रथम स्थान प्राप्त हुआ है । चंदबरदाई ने अपने काव्य में भावोत्कर्ष के लिए अलंकारों

[8] हज़ारीप्रसाद द्विवेदी और नामवरसिंह – संक्षिप्त पृथ्वीराज रासो, पृ 32

[9] हज़ारीप्रसाद द्विवेदी और नामवरसिंह – संक्षिप्त पृथ्वीराज रासो, पृ 39

का प्रयोग किया है । 'पृथ्वीराज रासो' में अनुप्रास, यमक आदि शब्दालंकारों का भरमार है । उदाहरण के लिए –

"त्रैनैनं त्रिजटेव सीस त्रितयं, त्रैरूप त्रीसूलयं

त्रदेवं त्रिदिया त्रिभू त्रिगुनयं, त्री संधि वेदन्नयं ।"[10]

यहाँ उन्होंने लाटानुप्रास का सुंदर प्रयोग किया है ।

उपमा के लिए उदाहरण –

जगमगत कंठ सिर कंठ केस, मनु अठ्ठ ग्रह चंपि ससि सीस बैसि ।[11]

गले में कंठश्री इस प्रकार शोभित है जिस प्रकार आठ ग्रहों को दबा कर चन्द्रमा बैठै है ।

रूपक के लिए उदाहरण ध्यातव्य है –

"देषि तथ्थ संजोगि, नेह जल काम करारे ।

हाय भाय विभ्रम कटाच्छ, दुज बहु भंति निनारे ।

रुचि तरंग झंकोर, बयन अंदोल कसय सब ।

हरन दुष्ष द्रुम रूप सिबाल, कुच चक्रवाल सोदि सब ।।"[12]

यहाँ संयोगिता में नदी के अवयवों का आरोप किया गया है । यहाँ प्रेम, काम, हाव, भाव, कटाक्ष, वाणी आदि नायिका के अवयवों में जल, तरंग, भँवर, चक्रवाल आदि नदी के अवयवों का आरोप किया गया है ।

---

[10] हज़ारीप्रसाद द्विवेदी और नामवरसिंह – संक्षिप्त पृथ्वीराज रासो, पृ 33

[11] हज़ारीप्रसाद द्विवेदी और नामवरसिंह – संक्षिप्त पृथ्वीराज रासो, पृ 27

[12] हज़ारीप्रसाद द्विवेदी और नामवरसिंह – संक्षिप्त पृथ्वीराज रासो, पृ 41

इसी प्रकार 'पृथ्वीराज रासो' में अतिशयोक्ति, यमक, उत्प्रेक्षा जैसे अलंकारों का भी सुंदर प्रयोग देख सकते हैं ।

छंद

'पृथ्वीराज रासो' में छंद के संबंध में यह दोहा प्रसिद्ध है –

छंद प्रबंध कवित्त जति । साटक गाह दुहथ्थ ।।

लहु गुर मंड़ित खंडियहि । पिंगल अमर भरथ्थ ।।[13]

इसमें कबित्त, साटक, गाह, दुहथ्थ चार छंदों का स्पष्ट उल्लेख है । कबित्त तो प्रसिद्ध छंद छप्पय है, साटक संस्कृत का शार्दूल विक्रीडित है, गाह प्राकृत की गाथा और दुहथ्थ अपभ्रंश का दोहा छंद है ।

'पृथ्वीराज रासो' में छप्पय (कबित्त) छंद का सफल प्रयोग मिलता है । साथ ही संस्कृत का पुट देने के लिए तद्भव शब्दों में अनुस्वार लगाया है । जैसे तपै तेज चहुआंन । भान ढिल्ली इच्छा बर ।।

बीर रूप उपज्यौ । पन्न रष्षै जुग्गन भर ।।

आबू बै अनभंग । जंग षंगौ षल दारुन ।।

जोग भोग षग मग्ग । नीर षित्री अबधारन ।।[14]

यहाँ कबित्त छंद के सुंदर नियोजन द्वारा भाव व्यक्त किया गया है ।

[13] हज़ारीप्रसाद द्विवेदी और नामवरसिंह – संक्षिप्त पृथ्वीराज रासो, पृ 20

[14] हज़ारीप्रसाद द्विवेदी और नामवरसिंह – संक्षिप्त पृथ्वीराज रासो, पृ 39

'पृथ्वीराज रासो' के कुछ छंद इस बात का प्रमाण हैं कि उसकी मुख्य रचनाएँ बारहवीं शताब्दी की है । आज तक हिन्दी साहित्य में गाथा छंद का व्यवहार नहीं होता, किन्तु चन्दबरदाई इस छंद से काव्य रचा है । वैदिक काल से बौद्धिक काल तक गाथा में रचनाएँ हुई हैं, अपभ्रंश काल में भी गाथा में रचनाएँ देखी जाती है । इसका तात्पर्य यह नहीं कि 'पृथ्वीराज रासो' आरंभिक काल की रचना है, क्योंकि अपभ्रंश के बाद ही हिन्दी भाषा का आरंभिक काल प्रारंभ होता है । गाहा छंद के लिए उदाहरण –

"मुष छुट्टा नृप बैनं । कै दिठ्ठाय धावता नैनं ।।
बज्जी वाहु सुबारं । धार ढारि मत्तयौ धरयं ।।"[15]

यहाँ उन्होंने भावाभिव्यक्ति के लिए गाहा छंद का प्रयोग किया है ।

इसके अतिरिक्त पृथ्वीराज रासो में पद्धरि, दूहा, अरिल्ल, बथूआ, भुजंगप्रयात, विराज, श्लोक, हनुफाल, रोला, कुंडलिया आदि छंदों का भी प्रयोग किया गया है ।

शब्द शक्ति

'पृथ्वीराज रासो' में प्रमुख रूप में अभिधा शब्द शक्ति का प्रयोग देख सकते है । जैसे –

"जीति जंग सैसव सु बय, इह दिष्षिय उनमान ।
मानों बाल बिदेस पिय, आगम सुनिं फुलि काम ।।"[16]

[15] हज़ारीप्रसाद द्विवेदी और नामवरसिंह – संक्षिप्त पृथ्वीराज रासो, पृ 89

यहाँ अभिधा द्वारा शैशव पर किशोरावस्था की विजय को चित्रित किया गया है ।

काव्य गुण

'पृथ्वीराज रासो' वीर रस प्रधान रचना होने के कारण ओज गुण का आधिक्य होना स्वाभाविक है । फिर भी इस कृति में प्रसाद और माधुर्य गुण की कमी नहीं है । ओजगुण के लिए उदाहरण –

करत पंग पायान, षेह उड्डत रवि लुक्कै ।
महुरै जल पुठ्ठै सु, पंक संरिता सर सुक्कै ।
पानी ठाहर षेह, एह उड्डती विराजै ।
बर पयान छावंत, भान सिर पट्ट कविज्जै । [17]

यहाँ वंगराज की चढाई के आतंक के द्वारा ओज गुण का प्रयोग देख सकते है ।

लोकोक्तियाँ और मुहावरे

किसी भी काव्य-रचना को सफल बनाने में लोकोक्तियाँ और मुहावरों का महत्वपूर्ण स्थान है । चंद ने इसके प्रयोग सफल ढंग में किया है । जैसे –

1. नीच बान नीचह जनिय, विलसन कित्ति अभग्ग ।
   सुनहु सरूप सु मुत्ति कर, दासि चरावति कग्ग ।।[18]
2. कर कुंवड लीनौ तमकि, अरुचि दान विधि जोय ।
   चरिय कग्ग तरवर सबै, हंसति हंसन होय ।।[19]

[16] हज़ारीप्रसाद द्विवेदी और नामवरसिंह – संक्षिप्त पृथ्वीराज रासो, पृ 61
[17] हज़ारीप्रसाद द्विवेदी और नामवरसिंह – संक्षिप्त पृथ्वीराज रासो, पृ 56
[18] हज़ारीप्रसाद द्विवेदी और नामवरसिंह – संक्षिप्त पृथ्वीराज रासो, पृ 70

यहाँ भावों की सफल अभिव्यक्ति के लिए लोकोक्तियों का प्रयोग किया गया है ।

2.4 विद्यापति की काव्यभाषा

मैथिली भाषा में काव्य रचना करनेवाले कवि हैं मैथिल कोकिल विद्यापति । विद्यापति श्रृंगारी कवि है । उनकी इस श्रृंगार धारा का प्रभाव उनके युग में नहीं रीति युगीन हिन्दी काव्यों में देख सकते हैं । इस दृष्टि से उन्हें रीति युगीन कवि मान सकते हैं । भाषा और काव्य रूपों की दृष्टि से विद्यापति आदिकालीन कवि सिद्ध होते हैं । उन्होंने तीन भाषाओं में काव्य रचना की है – संस्कृत, अपभ्रंश और मैथिली । संस्कृत में उन्होंने धर्म, भक्ति या नीति संबंधी ग्रंथ रचे हैं, अपभ्रंश में अपने आश्रयदाता का चरित गान किया है जैसे कीर्तिलता और कीर्तिपताका । मैथिली में शिव भक्ति से संबंधित छंद (पदावली) रचे हैं । हिन्दी साहित्य में उन्हें एक ऐसे विशिष्ट कवि के रूप में माना जाता है जो प्राचीन का अनुयायी है और नवीन काव्य रूपों का स्रष्टा भी है । इन्हीं कारणों से उन्हें हम आरंभिक कालीन कवि मानते हैं ।

हिन्दी की विभाषा मैथिली बिहार की बोली है । विद्यापति की पदावली इसी भाषा में लिखित अमूल्य निधि है । विद्यापति ने बड़ी ही सरस हिन्दी में पदावली की पचना की हैं । उनके पद्यों से रस निचुड पडता हैं । गीत गोविंदकार जयदेव की मधुर कोमलकांत पदावली पढ़कर जैसा आनंद अनुभव होता है वैसा ही विद्यापति की पदावलियों का पाठ कर प्राप्त होता है । अपनी

[19] हज़ारीप्रसाद द्विवेदी और नामवरसिंह – संक्षिप्त पृथ्वीराज रासो, पृ 45

कोकिल कंठता ही के कारण वे मैथिल कोकिल कहलाते हैं । उनके समय में हिन्दी भाषा कितनी परिष्कृत और प्रांजल हो गई थी, इसका विशेष ज्ञान उनकी रचनाओं को पढकर समझ सकते हैं । उदाहरण के लिए –

माधव, कत परबोधब राधा ।

हा हरि हा हरि कहतहि बेरि बेरि

अब जिउ करब समाधा ।।

धरनि धरिया धनि जतनहि बैठत

पुनहि उठइ नाहि पारा ।।[20]

इससे यह बात सिद्ध होता है कि इसमें मैथिली शब्दों का प्रयोग कम नहीं है । इसी कारण ग्रियर्सन इनको 'मैथिल कोकिल' कहते हैं ।

विद्यापति की कविता को पढ़ने से यह ज्ञात होता है कि उनके समय में हिन्दी भाषा प्राय: प्राकृत शब्दों से मुक्त हो गई थी और उसमें बडी सरस रचनाएँ होने लगी थी । उनकी रचना के शब्दों और प्रयोगों को हिन्दी मानने में किसीको आपत्ति न होगी, वे ब्रजभाषा के चिर परिचित शब्द हैं जो अपने वास्तविक रूप में पदावली में गृहीत हुए हैं ।

अयोध्यासिंह उपाध्याय हरिऔधजी का विचार है कि पन्द्रहवीं शती में प्रान्तीय भाषाओं में हिन्दी वाक्यों और शब्दों के प्रवेश का सूत्रपात हो गया था, जो आगे चलकर अधिक विकसित रूप में दृष्टिगत हुआ । हरिऔधजी इस

[20] खगेन्द्रनाथ मिश्र – विद्यापति, पद 748 पृ 486

प्रणाली का आदिप्रवर्तक विद्यापति को ही मानता है । यदि गुरु गोरखनाथ हिन्दी भाषा में धार्मिक शिक्षा के आदि प्रवर्तक हैं और उसको ज्ञान और योग की पुनीत धाराओं से पवित्र बनाते हैं तो विद्यापति उसको ऐसे स्वरों से करते हैं जिसमें सरस श्रृंगार रस की मनोहारिणी ध्वनि श्रवणगत होती है । सरस पदावली का आश्रय लेकर उन्होंने भगवती राधिका के पवित्र प्रेमोद्गारों से अपनी लेखनी रसमय ही नहीं बनाया, साहित्य क्षेत्र में अपूर्व भावों की भी अवतारणा की । हिन्दी भाषा में राधा-भाव के आदि प्रवर्तक विद्यापति ही हैं ।

विद्यापति की भाषा में मस्तिष्क को चमत्कृत और हृदय को आंदोलित करने की क्षमता है । इन दोनों की समन्विति से उनकी भाषा पूर्ण है । इसमें भावों का सफल अभिव्यक्ति की शक्ति भी निहित है । उदाहरण के लिए –

काक भाख निज भाखह रे
पहु आओत मोरा ।
खीर खाँइ भोजन देब रे
भरि कनक कटोरा ।।[21]

यहाँ राधा के माध्यम से विरहिणी नारी-जाति का हृदय बोल उठा है । इसमें प्रिय-मिलन की उत्कट इच्छा और स्वभाव की सरलता भी निहित है ।

विद्यापति की भाषा में चित्रमयता का गुण देख सकते हैं । वस्तु, रूप का चित्रात्मक वर्णन करने में वे सिद्धहस्त हैं । जैसे –

[21] श्री खगेन्द्रनाथ मिश्र – विद्यापति, पद 856, पृ 547

"चिकुर निकर तम सम

पुनु आनन पुनिम ससी।

नअन पङ्कज के पतिआओब

एक ठाम रहुबसी ।"[22]

यहाँ सद्य:स्नाता का रूप-चित्रण बहुत ही सुंदर ढंग से प्रस्तुत किया है ।

महाकवियों की भाषा में पाई जानेवाली एक विशेषता है – अनुरणात्मकता । शब्दों के द्वारा ध्वनि उत्पन्न करना ही अनुरणात्मकता है । यह विशेषता विद्यापति की पदावली में भी हम देख सकते है । जैसे –

"किंकिनी किनि किनि कंकन कनकन

कल रव नूपुर बाजे ।"[23]

यहाँ ध्वनियों का ध्वन्यात्मक चित्रण उत्पन्न करने के लिए किंकिनी, कंकन जैसे शब्दों को प्रयुक्त किया है ।

2.4.1 संगीत-संसृष्टि

गीत का अर्थ है – वह गाना जो लायर वाद्य के साथ गाया जा सके । आत्माभिव्यंजकता या वैयक्तिकता, रागात्मकता, कल्पना-प्रवणता, भाव-ऐक्य, आकारगत संक्षिप्तता, शैलीगत सुकुमारता, संगीतात्मकता, लोकतत्व आदि गीत के प्रमुख तत्व हैं । विद्यापति के गीत आत्माभिव्यंजन (कवि की स्वतंत्र

[22] श्री खगेन्द्रनाथ मिश्र – विद्यापति, पद 32, पृ. 30

[23] श्री खगेन्द्रनाथ मिश्र – विद्यापति,पद, 703, पृ 459

अनुभूति) प्रधान हैं । उन्होंने अपनी कविता में अपने सुख-दु:ख का भी वर्णन किया है । यानी उनके गीतों में व्यष्टिमूलक तथा समष्टिमूलक स्थितियों का सुंदर वर्णन हैं । उदाहरण के लिए –

माधव, बहुत मिनति करि तोय ।
देश तुलसी तिल देह समर्पिलूँ
दया जनि छाड़बि मोय ।।
गनइते दोस गुनलेस न पाओबि
जब तुहुँ करबि बिचार ।
तुहुँ जगन्नाथ जगते कहायसि
जग बाहिर नह मुञि छार ।।[24]

इसमें कवि की और जग की अनुभूति का एकाकार रूप दिखाई देता है ।

विद्यापति के गीतों का दूसरा प्रमुख तत्व है – रागात्मकता या राग तत्व, जिसके द्वारा कविता में राग, रंग और प्रेम का संचरण होता है । दूसरे शब्दों में कहें तो रागात्मकता कविता (गीत) की संजीवनी है । विद्यापति के गीतों में रागात्मक अनुभूतियों की गहनता के साथ-साथ गतिमयता भी है । गीत का तीसरा महत्वपूर्ण तत्व है – कल्पना प्रवणता । कवि ने कल्पना के द्वारा अपनी आभ्यंतरिकभावनाओं को युंदर तथा मनोरम रूप में चित्रित किया है । गीतों की

[24] श्री.खगेन्द्र नाथ मित्र – विद्यापति, पद 771, पृ.503

मनोहारिता और प्राणवान बनानेवाले अप्रस्तुतों का चयन कल्पना द्वारा होता है । विद्यापति के गीतों में गहन कल्पनाशीलता है । जैसे –

पीन पयोधर दूबरि गता ।

मेरु उपजल कनक-लता ।।[25]

यहाँ राधा की वर्णना एक नूतन ढंग से प्रस्तुत किया गया है जो कवि की कल्पना का परिचायक है ।

भावगत एकरूपता गीतिकाव्य की अन्य विशेषता है । विद्यापति के गीतों में भाव ऐक्य-चेतना का निर्वाह हुआ है । गीति काव्य की अन्य विशेषता है – शैलीगत सुकुमारता । इससे तात्पर्य उसमें व्यवहृत कोमलकांत पदावली से है । विद्यापति की कोमलकांत पदावली में स्वर मैत्री, व्यंजन मैत्री तथा अनुनासिक वर्णों की प्रधानता है । उदाहरण के लिए –

"नव वृन्दावन नव नव तरुगन

नव नव विकसित फूल ।

नवल वसन्त नवल मलयानिल

मातल नव अलि-कूल ।।"[26]

यहाँ अनुनासिक शब्दों का प्रयोग अधिक है जिससे गीत में लालित्य और रंगिमा आ गया है ।

[25] श्री.खगेन्द्र नाथ मित्र – विद्यापति, पद 237, पृ.178

[26] श्री.खगेन्द्र नाथ मित्र – विद्यापति, पद 718, पृ. 468

संगीतात्मकता या गेयता जैसे मूल्यवान तत्व युक्त गीत के लिए लोकतत्व अनिवार्य है । लोक तत्व में लोकभाषा, लोकभाव तथा लोक की रहनी और करनी आते है । उदाहरण के लिए –

"सुन्दरि चललिहु पहु-घर ना ।
चहुदिस सखि सब कर धर ना ।।
जइतहु लागु परम डर ना ।
जइसे ससि काँप राहु डर ना ।।"[27]

यहाँ उन्होंने लोकतत्व के बारे में सूचना दी है कि दु:ख सहकर ही सुख प्राप्त होता है ।

2.4.2 विशेषणों का प्रयोग

विद्यापति के काव्यों की प्रमुख विशेषता है – विशेषणों का प्रयोग । दिनकरजी कविता की चौथी कसौटी के रूप में विशेषणों के प्रयोग को मानते हैं । उनका मानना है कि इसके द्वारा ही हम यह जान सकते हैं कि किन्हीं दो कवियों में कौन छोटा है और कौन बड़ा है ? यानी जिस कवि में प्रज्वलनवाला गुण है, प्रेरणा के आलोक में शब्दों को सजीव बना देनेवाली शक्ति है, उसका सबसे बड़ा चमत्कार विशेषणों के प्रयोग में देखा जाता है । विशेषणों का प्रयोग आधी सफलता या असफलता नहीं होती । या तो वह पूर्ण रूप से सफल या असफल हो जाता है । शब्दों के सम्यक प्रयोग की जैसी पहचान विशेषणों में

[27] श्री.खगेन्द्र नाथ मित्र – विद्यापति, पद 896, पृ. 567

होती है, वैसी संज्ञा और क्रिया में नहीं । इसलिए विशेषणों का प्रयोग कविता की एक महत्वपूर्ण कसौटी है ।

विशेषण रहित पद विद्यापति की रचना में विरले हैं । लेकिन पदावली के अभिसार, मान एवं विरह के पदों में विशेषणों का प्रयोग बहुत ही कम किया है । यहाँ भाव की तन्मयता के लिए उन्होंने विशेषणों को छोड़ा है । रूप वर्णन या बिम्ब विधान की अधिकतावाले प्रसंगों में उन्होंने विशेषणों का प्रयोग किया है । उसी प्रकार विशेषणों का बाहुल्य वसंत वर्णन में भी है ।

विद्यापति विशेष्य-विशेषणों का प्रयोग अधिक करने के कारण उनकी काव्यभाषा में सूत्रात्मकता आ गई है । विशेषणों के अलावा इसके अनेक उपभेद जैसे – सार्वनामिक, गुणवाचक, संख्यावाचक आदि – भी विद्यामान हैं । यहाँ सार्वनामिक और संख्यावाचक विशेषण कवि की काव्यभाषा की केवल सूचना ही है । लेकिन विद्यापति इसका सफल शक्तिमत्त, चमत्कारपूर्ण प्रयोग किया है । जैसे –

"हातक दरपन माथक फूल
नयनक अंजन मुखक ताम्बूल ।
हृदय मृगमद गीमक हार
देहक सरबस गेहक सार ।।"[28]

यहाँ विशेषणों के विविध रूप उपलब्ध है ।

[28] श्री.खगेन्द्र नाथ मित्र – विद्यापति, पद 832, पृ. 532

2.4.3 गीति-योजना

गीति-काव्य माने हृदय की मार्मिक अनुभूतियों की सजीव भाषा में संगीतात्मक रूप में अभिव्यक्त करना है । इसमें वैयक्तिकता का प्राधान्य होना आवश्यक है । विद्यापति की पदावली में स्वानुभूति के दर्शन नहीं होते । उन्होंने अपने आत्मानुभव को प्रथम पुरुष रूप में प्रस्तुत न करके सीधे ढंग से व्यक्त किया है । फिर भी उनमें भावोन्माद का अभाव नहीं है । प्रगीत काव्य का दूसरा आवश्यक तत्व है – संक्षिप्तता । विद्यापति ने सर्वत्र छोटे-छोटे पदों में ही भावमूर्तियों का अंकन किया है । उनके पदों में न अधिक विस्तार है न संकोच जिसके कारण मूल भावना का चित्र उभर आ गए हैं । प्रगीत काव्य का तीसरा आवश्यक तत्व है – भाव एकता । प्रगीत में एक ही भाव का आदि से अंत तक होना आवश्यक है । विद्यापति की पदावली में कोई भी पद ऐसा नहीं है जहाँ भाव एकता के दर्शन न हों । चौथा आवश्यक उपादान है संगीतात्मकता या गेयता । विद्यापति की पदावली में कर्कश या कटु शब्दों का प्रयोग नहीं हुआ है । उनके पद स्वर-ताल से आबद्ध है । उदाहरण के लिए –

"नन्दक नन्दन कदम्बेरि तरुतर
धिरे धिरे मुरली बोलाव ।
समय संकेत निकेतन बइसल,
बेरि बेरि बोलि पठाव ।।"[29]

[29] श्री.खगेन्द्र नाथ मित्र – विद्यापति, पद 258, पृ. 191

यहाँ संगीतात्मकता के साथ अनुभूति का सुंदर सामंजस्य है ।

प्रगीत काव्य की एक अन्य विशेषता है कि प्रत्येक पद अपने आप में स्वतंत्र होना । विद्यापति के प्रत्येक पद की प्रत्येक पंक्ति में नूतन चित्रों की उद्भावना देखने को मिलती है ।

रस

यद्यपि पदावली में सभी रसों का सुंदर समावेश हुआ है, तथापि उसमें प्रधान रस श्रृंगार ही है । इसमें उन्होंने संयोग श्रृंगार के द्वारा नायक-नायिका सौंदर्य, सखी-शिक्षा, सद्य:स्नाता, मिलन, प्रकृति-चित्रण आदि को प्रस्तुत किया है । संयोग श्रृंगार के द्वारा अत्यंत मादक, वासनासिक्त रंगीन चित्र पदावली में चित्रित है । इसके द्वारा प्रणय का चित्रण अत्यंत सजीव, स्वच्छंद हो उठा है । कवि द्वारा प्रस्तुत संयोग श्रृंगार के चित्रण में बाह्य रूप के साथ ही नायिका के मनोगत भावों का भी मर्मस्पर्शी रूप देखने को मिलता है । जैसे –

"माधव, तोंहे जनु जाह विदेसे ।
हमरो रंग-रभस लए जैबह
लैवह कौन सने से ।।
बनहि गमन करन होएति देसर मति
विसरि जाएब पति मोरा ।।"[30]

[30] श्री.खगेन्द्र नाथ मित्र – विद्यापति, पद 503, पृ 342

यहाँ विरह विदग्धा नायिका का दैन्य, दर्द, पीडा, व्यथा और कुंठा को चित्रित किया गया है ।

विप्रलंभ श्रृंगार के माध्यम से उन्होंने अनुभूति की गहराई, भाव प्रवणता, तन्मयता का दिग्दर्शन, विरह वर्णन आदि का सूक्ष्म वर्णन किया है । विरह वर्णन में उन्होंने शारीरिक और मानसिक व्यथा को चित्रित किया है और वहाँ भाषा एवं छंद कमनीय व कोमल है ।

पदावली में कहीं-कहीं भक्ति रस प्रधान पद देखने को मिलते हैं । जैसे –

"जय-जय भैरवि असुर-भयाउनि
पशुपति-भामिनि माया ।।"[31]

यहाँ कवि ने देवी माता की स्तुति की है ।

अलंकार

हृदय और मस्तिष्क के समुचित समन्वय की परिणत को काव्य कहते हैं । लेकिन किसी काव्य में भावधारा का प्राधान्य है तो किसी में मस्तिष्क के चिन्तन का । इसके आधार पर काव्य के दो भेद हैं – भाव पक्ष और कला पक्ष । जहाँ भाव पक्ष में हृदय प्रधान होता है वहाँ कलापक्ष में मस्तिष्क प्रधान होता है । भाव पक्ष काव्य की आत्मा है यानी उसमें हृदय पक्ष रसाभिव्यंजना प्रमुख है ।

काव्य में जिनका वर्णन, लक्ष्य अभिप्रेत होते हैं उन्हें प्रस्तुत कहते हैं । अप्रस्तुत विधान वह है जो काव्य के विषय को अधिक ग्राह्य बनाने के लिए

[31] श्री.खगेन्द्र नाथ मित्र – विद्यापति, पद 772, पृ. 504

करनेवाले विधि-विधान है । अप्रस्तुत के दो भेद हैं – वास्तविक अप्रस्तुत और कल्पना प्रसूत अप्रस्तुत । वास्तविक अप्रस्तुत का संबंध वास्तविक जगत से है तो कल्पना प्रसूत का संबंध काल्पनिक जगत से है, वास्तविक जगत से इसका कोई संबंध नहीं है । अलंकार की दृष्टि से देखें तो वास्तविक अप्रस्तुत का क्षेत्र उपमा है और कल्पना प्रसूत का क्षेत्र उत्प्रेक्षा है । पदावली में उन्होंने उपमा और उत्प्रेक्षा अलंकारों का अद्वितीय प्रयोग किया है । उपमा के लिए उदाहरण –

"अन्धर विघटु आकामिक कामिनि
करे कुच झाँपु सुछन्दा ।
कनक-सम्भु सम अनुपम सुन्दर
दुई पंकज दस चन्दा ।।"[32]

यहाँ नायिका के सुंदर हाथों की उपमा स्वर्ण के शिव से दी गई है ।

उत्प्रेक्षा के लिए उदाहरण –

"सुंदर बदन सिंदुर विन्दु
सामर चिकुर भार ।।
जनि रवि ससि संगहि उगल
पाछु कए अंधकार ।।"[33]

[32] श्री.खगेन्द्र नाथ मित्र – विद्यापति, पद 39, पृ 35
[33] श्री.खगेन्द्र नाथ मित्र – विद्यापति, पद 23, पृ 21

यहाँ सुंदर मुख उस पर सिंदुर का टीका, फिर काले-काले बालों का संभार का वर्णन इस प्रकार है कि मानो अंधकार को पीछे धकेल कर सूर्य और चन्द्र साथ-साथ उठ आए हैं । यूर्य और चन्द्र का एक साथ उगना असंभव है । अत: यहाँ कल्पना प्रसूत अप्रस्तुत है और इसके लिए उत्प्रेक्षा का प्रयोग किया है ।

छंद

पदावली में वर्णिक छंदों तथा दोहा जैसे अर्द्ध सम और रट्टा-गाथा जैसे विषम छंदों का अभाव है । लेकिन इसके बदले पदावली में मात्रिक छंदों का प्रयोग ज़्यादा है । अहीर, लीला, हाकलि, चौपाई, पद्धरि, सरसी, सार आदि छंदों का प्रयोग स्वतंत्र रूप में पदावली में किया गया है ।

अहीर छंद के लिए उदाहरण –

"मधुर जुवतिजन संग
मधुर मधुर रसरंग
मधुर मृदंग रसाल
मधुर मधुर करताल ।।"[34]

यहां कवि ने वृन्दावन में कृष्ण और गोपिकाओं की लीलीओं का चित्रण करने के लिए अहीर छंद का प्रयोग किया है ।

चौपाई के लिए उदाहरण –

"सैसव जौवन दरसन भेल

[34] श्री.खगेन्द्र नाथ मित्र – विद्यापति, पद 717, पृ 468

दुहु दलबले धनि दन्द पड़ि गेल ।।

कबहु बान्धये कच कबहु विथारि

कबहु झाँपय अंग कबहु उधारि ।।"[35]

यहाँ विद्यापति अपने प्रिय छंद चौपाई द्वारा श्रृंगारिक भावों का सफल अभिव्यक्ति करते हैं ।

शब्द

विद्यापति को इस बात का ज्ञान है कि किस स्थान पर कौन-सा शब्द अधिक प्रभावोत्पादक हो सकता है तथा कोई भी रचना पाठक के अन्तस को उसी समय बेध सकती है जब उसमें कोई भी शब्द ऐसा न हो जिससे इधर-उधर अथवा परिवर्तित किया जा सके । इसी कारण उनके द्वारा प्रयुक्त शब्दों के स्थान पर पर्यायवाची शब्द नहीं रखा जा सकता । विद्यापति की रचनाओं में तत्सम, तद्भव, देशज, विदेशी, दृष्टिकूल और ध्वन्यात्मक शब्दों का प्रयोग मिलते हैं ।

तत्सम शब्द :- अनंग, अनुपम, भवन, चारुतर, समागम, गुरु, श्रीयुत, मंडप, सारंग आदि ।

तद्भव शब्द :- अमिञ, अछत,, चान्दक, होयल, बसथि आदि ।

देशज शब्द :- औघट (असामान्य), ननुमि (छोटी), हुलना (हुल्लड), चेंगना (बच्चे), सरिआओ (ठीक क्रम में करना) आदि ।

[35] श्री.खगेन्द्र नाथ मित्र – विद्यापति, पद 618, पृ 409

विदेशी शब्द :- सुल्तान, पातिसाह, तुलुक, सराब, मुकदमा, गुण्डा, बाग, हुकुम, मसीद, निमाज आदि ।

ध्वन्यात्मक शब्द :- ससन, नहाएलि, कनकानि, घनघन, बिजुरि, रनरनि, किंकिनि, दरपन, कन्हाइया, गरसल आदि ।

पदावली के प्रत्येक शब्द से यह बात साबित हो जाता है कि विद्यापति भाषा के सम्राट है । उन्होंने शब्दों को तेड़-मरोड़ा हैं । लेकिन विकृत नहीं बनाया है । उन्होंने भाषा की कोमलता पर ध्यान दिया है । उन्होंने पदों को सुंदरता एवं सुघडता के साथ प्रस्तुत किया है ।

शब्दशक्ति

विद्यापति ने अपने काव्य में शब्दशक्तियों का प्रसंगानुकूल प्रयोग किया है । उन्होंने अभिधा का प्रयोग वर्णनात्मक स्थलों में किया है तो लक्षणा एवं व्यंजना का प्रयोग प्रेम एवं सौंदर्य वर्णन में किया है । अभिधा के लिए उदाहरण –

"जहाँ जहाँ पद जुग धरई ।
तहिं तहिं सरोरुह भरई ।।
जहाँ जहाँ झलकत अंग ।
तहिं तहिं बिजुरि-तरंग ।।"[36]

यहाँ राधा का सुंदर चित्र प्रस्तुत किया गया है ।

[36] श्री.खगेन्द्र नाथ मित्र – विद्यापति, पद 625, पृ 413

विद्यापति की पदावली में व्यंजना शब्दशक्ति की कमी नहीं है । जैसे –

"कर घरु करु मोहि पारे ।

देव में अपरुब हारे, कन्हैया ।।

सखि सभ तेजि चलि गोली ।

न जानु कोन पथ भेली, कन्हैया ।।"[37]

इसका अभिधार्थ यह है कि राधा कृष्ण से उसके हाथ पकडकर यमुना पार कराने के लिए प्रार्थना करती है । व्यंग्यार्थ यह है कि राधा अपना हाथ कृष्ण के हाथ में देकर आत्मसमर्पण करना चाहती है ।

काव्यगुण

पदावली श्रृंगार प्रधान काव्य होने के कारण इसमें माधुर्य गुण की प्रधानता है । जैसे –

"कुसुमे रचित सेजा दीप रहल तेजा

परिमल अगर चन्दने ।

जबे जबे तुअ मेरा निफल बहलि वेरा

तबे तबे पीड़लि मदने ।।"[38]

यहाँ प्रिय मिलन की पीड़ा को चित्रित किया गया है ।

[37] श्री.खगेन्द्र नाथ मित्र – विद्यापति, पद 349, पृ 246

[38] श्री.खगेन्द्र नाथ मित्र – विद्यापति, पद 358. पृ 252

बिम्ब योजना

बिम्ब विधान सौंदर्य वर्णन तथा कलाभिव्यक्ति का एक प्रमुख उपादान है । काव्य रचना के लिए बिंब की आवश्यकता निश्चित है । काव्य में अर्थ ग्रगण के साथ बिंब ग्रहण की भी अनिवार्यता है और यह बिंब ग्रहण निर्दिष्ट गोचर और मूर्त विषय का ही हो सकता है । शुक्लजी का मत है कि कवि अपने सूक्ष्म निरीक्षण द्वारा वस्तुओं के अंग-प्रत्यंग, वर्ण-आकृति और उसके आसपास की परिस्थिति का परस्पर संश्लिष्ट विवरण देता है वहाँ बिंब ग्रहण होता है ।

बिंब का संबंध मानवीय संवेदनाओं के होने के कारण इसका निर्माण किसी वस्तुगत अनुभूति की प्रतिछाया होता है । इसलिए उसमें जितनी स्पष्टता तथा सहजता होगी बिंब भी उतना ही अनाविल, मूर्त और रुचिर होगा । अनुभूति की गहनता, विशेषणों के चयन की चतुरता, सादृश्य मूलक अलंकारों की नियोजना और उत्कृष्ट काल्पनिकता की भूमिका से बिंब निर्माण संभव है ।

काव्य-शिल्प का सबसे महत्वपूर्ण धर्म है – बिंबात्मकता । रस की सृष्टि करने के लिए भाव की बिंबात्मकता या अनुभूति की साकारता आवश्यक है । विद्यापति सौंदर्य के उत्कट कवि होने के कारण उनकी कविता में बिंबात्मकता की अधिकता है । विद्यापति में बिंबात्मकता के दो रूप मिलते हैं – रूप चित्रण और भाव बिंब । वातावण तथा स्त्री-पुरुष सौंदर्य के चित्र रूप-चित्रण के अंतर्गत आते हैं और अमूर्त भावों (अनुभूतियों), भावनाओं, मनोविकारों और वृत्यों के चित्र भाव-बिंब में आते हैं । रूप-चित्रण के लिए उदाहरण –

"वारिस वसिल वीसत धारा

धरि जलधर कोपि ।

तरुन तिमिर दिग न जानए

अहिसिर गए रोपि ।।"[39]

यहाँ रात की भयंकरता को चित्रित किया गया है ।

भाव बिंब के लिए उदाहरण –

"....हिनि बाला

कत सहवि कुसुम सरधारा ।

नयन निरन्तर नोरे

वामा करतल मिलल कपोले ।।"[40]

यहाँ विरहिणी बाला की व्यथा को चित्रित किया गया है ।

इस प्रकार विद्यापति ने बिंबों के द्वारा यौवन, सौंदर्य, प्रेम की विभिन्न अवस्थाएँ और मुद्राओं को सुंदर ढंग से चित्रित किया है ।

लोकोक्तियाँ और मुहावरे

अभिव्यंजना शक्ति को तीव्र बनाने के लिए लोकोक्तियों और मुहावरों का प्रयोग किया जाता है । लोकोक्तियों के प्रयोग कवि का लोकभाषा पर पूर्ण अधिकार सूचित करते हैं । पदावली में लोकोक्तियों का बहुल प्रयोग मिलते हैं ।

[39] श्री.खगेन्द्र नाथ मित्र – विद्यापति, पद 366, पृ 257

[40] श्री.खगेन्द्र नाथ मित्र – विद्यापति, पद 145, पृ 109

जैसे – 'जनि उजडल लंका, फल दैबह आअत, अरथ असम्भव के पतिआए, अवसर बहला रह पचताब' आदि ।

2.5 निष्कर्ष:- आदिकालीन काव्यभाषा के मूल्यांकन का मानदंड

भाषा का सबसे प्राचीन रूप संस्कृत माना जाता है । आदिकाल में संस्कृत के साथ-साथ अपभ्रंश, राजस्थानी, डिंगल-पिंगल तथा खडीबोली का प्रयोग भी उपलब्ध है जो समाज के मध्य एवं निचले स्तर के लोगों की भाषा मानी गयी थी । संस्कृत से हटकर इन भाषाओं में रचना करने का प्रयास सिद्ध-जैन पंथियों के प्रवर्तकों द्वारा हुआ है जिनका प्रमुख उद्देश्य निम्नों का उद्धार एवं धर्म प्रचार था ।

साहित्य जब जन सामान्य के बीच उतरे तो उसकी भाषा में अभूतपूर्व परिवर्तन आया । फिर भी इस समय की रचनाओं में राजाओं का जीवन चरित, युद्ध, नायिका आदि का वर्णन ही प्रमुख विषय रहा है । इस युग के प्रमुख कवियों – चन्दबरदाई और विद्यापति – की भाषा इसका परिचायक है । इनकी रचनाओं में तत्कालीन सामाजिक परिस्थिति का प्रत्यक्ष उल्लेख तो नहीं मिलता फिर भी काव्य सौंदर्य एवं भाषा का सुंदर प्रयोग तथा स्वरूप उपलब्ध है ।

.....ଓ୦.....

अध्याय तीन
पूर्व मध्यकालीन काव्यभाषा का स्वरूप

हिन्दी साहित्य का इतिहास साक्षी है कि भक्ति काव्य के आरंभ में (पन्द्रहवीं शती) मुसलमान शासकों ने भारत पर अपना अधिकार जमा कर लिया था । मुगल शासकों ने देश में सुचारू शासन-व्यवस्था स्थापित करने की कोशिश की थी । फिर भी अधिकार या शक्ति शासकों के हाथों में ही था । मुगल शासन में हिन्दू और मुसलमान पीडित और परेशान थे । इस काल की एक उल्लेखनीय बात यह है कि भक्ति-काव्य ने उसके चरम विकास को छुआ । इस काल में वीर गाथाओं का अभाव है । क्योंकि हिन्दू राजा पराजित हो चुके थे । इस समय के समाज में, विशेषकर हिन्दू समाज में, जाति-पाँति, छुआछूत, बाल विवाह जैसे अत्याचारों का बोलबाला था । अत: कबीर, तुलसी आदि कविगणों ने अपने समाज में व्याप्त इन अंधविश्वासों और पृथाओं का विरोध व खण्डन करने का साहस दिखाया ।

यह समय दो संस्कृतियों की टकराहट था । यहाँ के हिन्दू प्राचीन परंपरा का दम्भ दिखाते थे तो नवीन मुस्लिम संस्कृति उस पर हावी होना चाह रही थी । फलस्वरूप हिन्दू-मुस्लिम में घृणा भाव बढने लगा । कबीर जैसे कवियों ने जनता में नवीन संस्कृति को प्रतिष्ठित किया है ।

भक्ति-काव्य उसके विषय को लेकर ही नहीं काव्य सौंदर्य की दृष्टि से भी अत्यंत श्रेष्ठ कोटि का हैं । इस युग में रसराज श्रृंगार का बहुत ही संतुलित प्रयोग किया गया है । तुलसीदास अपने काव्य में पूर्ववर्ती और समकालीन सभी

शैलियों के प्रयोग से शैलीगत दृष्टि से इस युग का प्रतिनिधित्व करते हैं । यह युग प्रतीकों का अक्षय भण्डार है । भाषा की (बोलचाल की) दृष्टि से कबीर इस युग का प्रतिनिधित्व करते है । कबीर के समय से ही हिन्दी काव्यभाषा का परिनिष्ठित रूप ग्रहण कर लिया है और यह हम सूरदास और तुलसीदास के काव्य में भी देख सकते हैं । इस युग के काव्य चमत्कार प्रदर्शन और वाग्वैदग्ध्य का न होकर आत्माभिव्यक्ति का काव्य है ।

पूर्व मध्यकाल काव्यधारा के तो प्रमुख चार भेद हैं ही – ज्ञानाश्रयी शाखा, प्रेमाश्रयी शाखा, राम भक्ति काव्य और कृष्ण भक्ति काव्य । इन धाराओं के प्रतिनिधि कवि हैं क्रमश: - कबीर, जायसी, तुलसीदास और सूरदास । अत: इन्हीं कवियों की काव्यभाषा के अध्ययन द्वारा हिन्दी काव्यभाषा के विकास क्रम को हम परख सकते हैं ।

3.1 कबीर की काव्यभाषा

'सधुक्कडी' उन साधुओं की भाषा है जो हिन्दू-मुसलमान दोनों धर्मों के अनपढ़ लोगों को अपना अनुयायी बनाना चाहते थे । देश के परंपरागत सामान्य काव्यभाषा से भिन्न इस भाषा में राजस्थानी, पंजाबी, ब्रज, अवधी, खडीबोली आदि का मिश्रण है । कबीर की भाषा में भी यह हम देख सकते हैं । आचार्य रामचन्द्र शुक्लजी ने कबीर की भाषा को 'सधुक्कडी' नाम दिया है । यानी राजस्थानी-पंजाबी मिली खडीबोली भाषा है । उनकी भाषा और पंथ के संबंध में

उन्होंने यों कहा है – "इस पंथ का प्रभाव शिष्ट और शिक्षित जनता पर नहीं पडा, क्योंकि उसके लिए न तो इस पंथ में कोई नई बात थी, न नया आकर्षण । संस्कृत बुद्धि, संस्कृत हृदय और संस्कृत वाणी का वह विकास इस शाखा में नहीं पाया जाता जो शिक्षित समाज को अपनी ओर आकर्षित करता ।"[1] इससे यह बात स्पष्ट हो जाती है कि कबीर की भाषा जन साधारण की भाषा थी । कबीर की भाषा तर्क – वितर्क की भाषा न होकर आत्म-साक्षात्कार की भाषा है और कबीर का विषय आध्यात्मिक होने के कारण उनकी भाषा को आध्यात्मिक भाषा भी कह सकते हैं ।

कबीर की काव्यभाषा के दो प्रमुख प्रकार्य है – मग्न करना और झकझोरना । यही कबीर की कविताओं की पहचान है । कबीर एक समाज सुधारक होने के कारण कटू, आक्रामक और सनसनीखोज भाषा का प्रयोग किया है । इस प्रकार श्रोता के मस्तिष्क और चेतना को झकझोरने का काम उलटबांसियाँ सबसे अधिक करती हैं । कबीर की भाषा के संबंध में डॉ.हज़ारीप्रसाद द्विवेदी ने यों कहा है – "भाषा पर कबीर का ज़बरदस्त अधिकार था । वे वाणी के डिक्टेटर थे । जिस बात को उन्होंने जिस रूप में प्रकट करना चाहा है उसे उसी रूप में भाषा से कहलवा लिया है।"[2] इससे यह बात स्पष्ट हो जाती है कि अभिव्यक्ति के लिए उपयुक्त शब्दों को चुनने एवं प्रयुक्त करने में

[1] रामचंद्र शुक्ल – हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ 73

[2] डॉ.हज़ारीप्रसाद द्विवेदी – कबीर, पृ 216

कबीर की क्षमता अतुलनीय है । विषय की दृष्टि से कबीर की भाषा कहीं-कहीं आध्यात्मिक है तो कहीं उपदेशात्मक भी हैं ।

उलटबाँसियाँ

कबीर अपनी उलटबाँसियों के लिए प्रसिद्ध हैं । उनकी उलटबाँसियों में गूढ आशय या आध्यात्मिक अनुभूति निहित हैं । उनके द्वारा प्रयुक्त उलटबाँसियों के लिए उदाहरण हैं–

"साधो भाई, जीवित ही करो आसा ।
जीवित समझे जीवित बूझे, जीवत मुक्तिनिवासा ।"[3]

यहाँ आत्मा-परमात्मा मिलन की आशा को उन्होंने व्यक्त किया है ।

इस प्रकार कबीर की रचनाओं में उलटबाँसियों का प्रयोग अधिक देख सकते हैं । जैसे –

1. "कहै कबीर कोइ जूझिहै सूरमा
   कायराँ भीड़ तहँ तुर्त भाजे ।।"[4]
2. "या मतको कोई बिरलै बूझै, सो अटर हो बैठे हो ।
   मत कबीर काहूको थापै, मत काहूको मेटे हो ।"[5]

[3] डॉ.हज़ारीप्रसाद द्विवेदी – कबीर, कबीरवाणी, पृ 232
[4] डॉ.हज़ारीप्रसाद द्विवेदी – कबीर, कबीरवाणी, पृ 260
[5] डॉ.हज़ारीप्रसाद द्विवेदी – कबीर, कबीरवाणी, पृ 279

इस प्रकार उलटबाँसियों के प्रयोग द्वारा उन्होंने अभिव्यक्ति को सफल तथा सशक्त बना दिया है ।

रस

कबीर की रचनाओं में आध्यात्मिक पक्ष प्रबल रूप में दर्शनीय है । उन्होंने आत्मा-परमात्मा के मिलन की उत्कट इच्छा, विरह-व्यथा, पीडा को ज़्यादा व्यक्त किया है । अत: हम कह सकते हैं कि उनकी रचनाएँ वियोग श्रृंगार प्रधान है । जैसे

"चकई बिछुरी रैनि की, आइ मिली परभाति ।
जो नर बिछुरे रांम सौं, ते दिन मिले न राति ।।"[6]

यहाँ उन्होंने यह सूचित किया है कि चकवी रात को बिछुडने पर भी प्रभात में पुन: मिल जाती है लेकिन राम से बिछुडने पर दिन हो या रात मिलन असंभव है । उसी प्रकार उनके द्वारा प्रयुक्त वीर रस के लिए उदाहरण है –

"रिपु कै दल मैं सहजहिं रौंदौं अनहद तबल घुराऊं जी ।
कहै कबीर मेरै सिर परि साहेब मैं ताकौं सीस नवाऊं जी ।।"[7]

यहाँ वीर रस का सुंदर प्रयोग दृष्टव्य है ।

---

[6] पारसनाथ तिवारी – कबीर ग्रंथावली, पृ 141

[7] पारसनाथ तिवारी – कबीर ग्रंथावली, पृ 5

अलंकार

कबीर अलंकारों से अपरिचित होने पर भी उनके काव्यों में अलंकार का प्रयोग देखा जा सकता है । उन्होंने परंपरागत अलंकारों से ज्यादा मौलिक अलंकारों का प्रयोग किया है जिसके लिए उन्होंने पानी की बुलबुला, गगन, जल, मिट्टी आदि को चुना है । इसके अलावा अनुप्रास, यमक, उपमा, रूपक, अन्योक्ति, उत्प्रेक्षा आदि सादृश्यमूलक अलंकार और विरोधाभास, विभावना आदि विरोधमूलक अलंकारों का भी प्रयोग किया है । उन्होंने अलंकार और कल्पना द्वारा अपने भावों को व्यक्त किया हैं ।

कबीर ने अपनी भाषा में छोटे-छोटे अनुप्रासों का प्रयोग किया हैं । यह अनुप्रास प्राय: दो वर्णों के होते हैं । जैसे काबा और काशी, राम और रहीम, मोठ और मैदा आदि । उनके द्वारा प्रयुक्त अनुप्रास के लिए उदाहरण है –

"सतगुर सवां न को सगा, सोधी सई न दाति ।

हरि जी सवां न को हितू, हरिजन सई न जाति ।।"[8]

यहाँ दाति और जाति से अनुप्रास अलंकार सिद्ध होता है ।

यमक के लिए उदाहरण –

"सतगुरु की महिमा अनंत अनंत किया उपगार ।

लोचन अनंत उघारिया, अनंत दिखावनहार ।।"[9]

यहाँ 'अनंत' शब्द से भाव को व्यक्त किया गया है ।

[8] पारसनाथ तिवारी – कबीर ग्रंथावली, पृ 135

[9] पारसनाथ तिवारी – कबीर ग्रंथावली, पृ 137

छंद

'साखी' में उन्होंने दोहा, सोरठा, दोहा, चौपाई, श्याम उल्लास, हरिपद, गीता, सार तथा छप्पय जैसे छंदों का प्रयोग किया है । 'रमैनी' की रचना वर्णनात्मक शैली में है और इसमें दोहा और चौपाई अधिक पाई जाती हैं । दोहा छंद के लिए उदाहरण –

"सतगुरु की महिमा अनंत अनंत किया उपगार ।

लोचन अनंत उघारिया, अनंत दिखावनहार ।।"[10]

यहाँ सतगुरु की महिमा का वर्णन करने के लिए दोहा छंद को प्रयुक्त किया गया है ।

शब्द

साधुओं के सत्संग के कारण कबीरजी की भाषा में ब्रज, पंजाबी, राजस्थानी, खडीबोली, अरबी, फारसी तथा संस्कृत भाषाओं का प्रभाव पडा है । उन्होंने उतंग, उदक (जल), उपाधि (अवच्छेदक सीमाएँ), कपाट (द्वार), कलत्र (स्त्री), कीर (तोता), जलनिधि (सागर), ततुमसी (तत्-त्वम्-असि), नन्दन (पुत्र), नभ, पारधी (शिकारी), पारन (व्रत के बाद का भोजन), पावक, पिपीलिका (चींटी), पुरन्दर (इन्द्र) आदि संस्कृत तत्सम शब्दों का प्रयोग किया है । उनके द्वारा प्रयुक्त अरबी-फारसी शब्द हैं – कसद (शक्तिशाली), खाता

[10] पारसनाथ तिवारी – कबीर ग्रंथावली, पृ 137

(अपराध), जुलुम (अत्याचार), तष्टा (तसला), तदबीर (उपाय), नज़रि (दृष्टि), नफर (नौकर), करद (कटार), असरार (हठपूर्वक), इफतरा (आरोप), दरगह (दरबार), दरीचे (झरोखा), कारकुन (प्रबन्ध कर्ता), पाकंपाक (पवित्रों में पवित्र) आदि ।

शब्दशक्ति

उन्होंने अपनी रचनाओं में मुख्य रूप में व्यंजना शक्ति का प्रयोग किया है । उनके व्यंजना शक्ति प्रयोग को देखकर हम यह कह सकते हैं कि हिन्दी साहित्य में व्यंजना शक्ति का सर्वप्रथम सशक्त प्रयोग उनके द्वारा ही हुआ है । व्यंजना शक्ति द्वारा ही उन्होंने समाज में व्याप्त कुरूपताओं का व्यंग्यात्मक चित्रण किया है । उनके द्वारा प्रयुक्त व्यंजना शक्ति के लिए उदाहरण –

"चउथै पद कौं जो जन चीन्हैं तिनहीं परम पदु पाया ।
चिंतै तो माधव चिंतामनि हरि पद रमैं उदासा ।
चिंता अरु अभिमांन रहित है कहै कबीर सो दासा ।।"[11]

इसमें व्यंजना शक्ति 'पद' शब्द में 'पैर' का अर्थ बोध कराते है ।

लक्षणा शब्दशक्ति के लिए उदाहरण –

"कबीर कुल सोई भला, जिहिं कुल उपजै दास ।।"[12]

यहाँ लक्ष्यार्थ को द्योतित करने के लिए मुहावरे का भी प्रयोग किया है ।

[11] पारसनाथ तिवारी – कबीर ग्रंथावली, पृ 124
[12] पारसनाथ तिवारी – कबीर ग्रंथावली, पृ 194

कबीर के पदों में उलटबांसियों की अधिकता है तो साखियों में सांकेतिक शब्दों का । इनमें लाक्षणिक ढंग से सांप्रदायिक शिक्षा व उपदेश दिया है । फिर भी उनके काव्यों में अभिधा के उदाहरण अनंत है । यथा –

"कबीर कहता जात है, सुनता है सब कोइ ।
राम कहें भला होइगा, नातर भला न होइ ।"[13]

यहाँ सीधा अर्थ व्यक्त करने में वे सफल हुए हैं ।

काव्यगुण

उनकी रचनाओं में माधुर्य, प्रसाद और ओज गुण को हम देख सकते हैं ।

"हँसै न बोलै उन्मनी, चंचल मेल्ह्या मारि ।
कहै कबीर भीतरि भिधा, सतगुरु कै हथियार ।।"[14]

यहाँ माधुर्य की सुंदर अभिव्यक्ति प्रकट है ।

प्रसाद गुण के लिए उदाहरण –

"चकइ बिछुरी रैनि की, आइ मिली परभाति ।
जे जन बिछुटे राम सौं, ते दिन मिले न राति ।।"[15]

यहाँ रहस्यात्मक तथ्यों का उल्लेख प्रसाद गुण के द्वारा प्रस्तुत की है ।

ओज गुण के लिए उदाहरण –

---

[13] पारसनाथ तिवारी – कबीर ग्रंथावली, पृ 302
[14] डॉ.जयदेव सिंह और डॉ.वासुदेव सिंह – कबीर वाङ्मय खंड 3, साखी, पृ 5
[15] डॉ.जयदेव सिंह और डॉ.वासुदेव सिंह – कबीर वाङ्मय खंड 3, साखी, पृ 33

"कोने परा न छूटिहै सुनु रे जीव अबूझ ।

कबीर मरि मैदान में करि इन्द्रिन सो जझं ।।"[16]

यहाँ ओज गुण द्वारा शूरत्व को द्योतित किया गया है ।

प्रतीक योजना

कबीर द्वारा प्रयुक्त प्रतीक उसकी सरलता के कारण प्रसिद्ध हैं । उन्होंने मुख्य रूप से परंपरागत प्रतीकों को अपनाया हैं । उनके संकेत और संक्षिप्त प्रतीक गंभीर और सूक्ष्म की ओर इशारा करते हैं । कबीर द्वारा प्रयुक्त प्रतीक दैनिक अनुभवों को व्यक्त करते हैं । उदाहरण के लिए –

"जो ऊगै सो आथवै, फूलै सो कुम्हिलाइ ।

जो चुनियां सो ढहि पडै, जांमैं सो मरि जाइ ।।"[17]

यहाँ प्रतिदिन होनेवाले जन्म-मरण के संबंध की ओर इशारा किया गया हैं । इस प्रकार के रहस्यों को मधुर शब्दों में अभिव्यक्त करना ही प्रतीक का काम है ।

कबीर ने प्रतीक के अनेक रूप प्रयुक्त किए हैं जैसे सांकेतिक प्रतीक, पारिभाषिक प्रतीक, सांख्यमूलक प्रतीक, वात्सल्यमूलक प्रतीक, दाम्पत्यमूलक प्रतीक आदि । उनके द्वारा प्रयुक्त पारिभाषिक प्रतीक के लिए उदाहरण है –

"सूर समांनां चांद मैं, दुहूं किया घर एक ।"[18]

यहाँ सूर और चांद इडा और पिंगला नाडियों के प्रतीक हैं ।

---

[16] डॉ.जयदेव सिंह और डॉ.वासुदेव सिंह – कबीर वाङ्मय खंड 3, साखी, पृ 204

[17] पारसनाथ तिवारी – कबीर ग्रंथावली, पृ 200

[18] पारसनाथ तिवारी – कबीर ग्रंथावली, पृ 169

कबीर की प्रतीक-पद्धति सूफियों और नाथ-पंथियों से प्रभावित थी । कबीर ने दाम्पत्य प्रतीकों के द्वारा रहस्यवाद को प्रस्तुत की हैं । अत: उन्होंने दिव्य प्रेम की अभिव्यक्ति के लिए पति-पत्नि को प्रतीक माना हैं । उसी प्रकार आत्मा-परमात्मा के संबंध को अभिव्यक्त करने के लिए भी प्रतीकों का सहारा लिया है ।

बिम्ब योजना

रहस्यवादी कवि होने के कारण कबीर ने बिम्बों का विशेष प्रयोग किया हैं । जैसे –

"हेरत हेरत हे, सखी रहा कबीर हिराइ ।

समुंद समांना बूँद मैं, सो कत हेरा जाय ।।"[19]

यहाँ कवि ने बूँद के द्वारा यह व्यक्त किया है कि जिस प्रकार बूँद सागर में विलीन होकर उसका अस्तित्व मिट जाते है उसी प्रकार आत्मा परमात्मा को प्राप्त कर या विलीन होकर अपना अस्तित्व खो देते है ।

लोकोक्तियाँ और मुहावरे

कबीर ने लोकोक्तियों का सफल प्रयोग किया है । इसके प्रयोग द्वारा संप्रेषण की क्षमता दुगुनी हो जाती है । कबीर द्वारा प्रयुक्त लोकोक्ति के लिए उदाहरण –

[19] पारसनाथ तिवारी – कबीर ग्रंथावली, पृ 165

"कबीर सतगुरु बपुरा क्या करै, जे सिष हीं माहैं चूक ।

भावै त्यूं परमोधि ले, ज्यूं बांसि बजाई फूंक ।।"[20]

उन्होंने यहाँ उपर्युक्त लोकोक्ति द्वारा भ्रम ग्रस्त शिष्य की अवस्था को बहुत ही सरल ढंग से प्रस्तुत किया है ।

दूसरा उदाहरण –

"कबीर कहा गरबियौ, देही देखि सुरंग ।

बीछडियां मिनिबौ नहीं, ज्यूं कांचली भुवंग ।।"[21]

यहाँ उन्होंने किसी स्पृहणीय वस्तु के हाथ से निकल जाने पर पछतावा होने की स्थिति की ओर इशारा किया है ।

उसी प्रकार उन्होंने सुनें घर का पाहुण, ओसौं प्यास न भाजइ, पाका कलस कुंभार का बहुरिन बढई चकि, माडे बहुत मंडाप, दित्रस चारि का पोषणा आदि लोकोक्तियों का भी प्रयोग किया हैं ।

3.2 जायसी की काव्यभाषा

भारत पर मुसलमानों का आक्रमण वीरगाथा काल में ही प्रारंभ हो गए थे । मुसलमान शासकों ने हिन्दू समाज पर घोर आक्रमण किया । बाद में मुसलमान आक्रमणकारियों को यह बात मालूम हुई कि किसी भी जीवित जाति को तहस-नहस नहीं किया जा सकता । तो मुसलमान प्रचारक प्रेम की कहानियों तथा जादू-

[20] पारसनाथ तिवारी – कबीर ग्रंथावली, पृ 4

[21] पारसनाथ तिवारी – कबीर ग्रंथावली, पृ 39

टोने के चमत्कारों के द्वारा इन जातियों को अपना अनुयायी बनाने लगे । साहित्यिक क्षेत्र में इन्हें 'सूफी कवि' या 'प्रेम मार्गी कवि' कहा जाता हैं ।

मुसलमान समाज में सूफी शब्द प्रेम तथा त्याग का द्योतक है । अपनी कामनाओं को पूर्णत: ईश्वराधीन कर देना और गुरु की अन्ध भक्ति सूफी कवियों की विशिष्टताएँ हैं । सूफियों ने कभी भी अन्य या दूसरे मत से द्वेष नहीं रखा इसलिए भारतीय जनता में सूफी काव्यों का स्वागत हुआ । अत: भारतीय भाषाओं में सूफी कवियों ने जिन-जिन ग्रंथों की रचना की है उसमें हिन्दू-मुसलमान मतों का अद्भुत मिश्रण आने लगे । इन प्रेममार्गी साहित्यिक शाखा के प्रमुख कवि हैं 'मालिक मुहम्मद जायसी '। जायसी कृत 'पद्मावत' इसका एक सफल उदाहरण है ।

भक्तिकाल में भाषा अपभ्रंश की रूढियों से मुक्त होकर उसके वास्तविक रूप में प्रकट हुई । इस समय अवधी और ब्रज जैसी प्रादेशिक भाषाएँ साहित्यिक भाषा का स्थान ग्रहण करने लगा । इसमें जायसी ने अवधी भाषा में काव्य-रचना किया । 'पद्मावत' की भाषा पूरबी अवधी होने पर भी उसमें पश्चिमी हिन्दी, फारसी, अरबी, संस्कृत के शब्दों का भी प्रयोग मिलता हैं । जायसी की भाषा ऊपर से देहाती अवधी मालूम होती है लेकिन भीतर अत्यंत प्रौढ़, अर्थ संपत्ति से समृद्ध है । जायसी की भाषा विशुद्ध अवधी होने से उसमें तत्समता का अभाव है । अत: उनकी कृति 'पद्मावती' न होकर 'पद्मावत' है । जायसी की ठेठ अवधी पूरबी प्रदेश की थी और यह तुलसीदास की अवधी से

भिन्न है । जायसी ने कर्ण कटू शब्दों के स्थान पर मधुर शब्दों का प्रयोग किया है । उसमें संस्कृत की कोमलकांत पदावली नहीं है पर इधर-उधर कुछ गंवारू और भौडे शब्द दृष्टिगत होते है । लेकिन तुलसी को लोकभाषा के साथ-साथ संस्कृत भाषा पर भी अधिकार था । तुलसी की अपेक्षा जायसी की भाषा में लोकभाषा का सजीव स्वरूप मिलता है । जायसी की भाषा के संबंध में हरिऔध जी का कहना है कि - "जो प्रवाह जायसी की रचना में मिलता है, वह इन लोगों की (परवर्ती कवियों की) रचनाओं में नहीं । अवधी भाषा की जो सादगी, सरसता और स्वाभाविकता उनकी कविता में मिलती है इन लोगों की कविता में नहीं ।"[22] इससे यह आशय व्यक्त होता है कि उन्होंने भाषा का सरल प्रयोग किया है । शब्दों को तोड-मरोडने का कार्य उन्होंने नहीं किया है ।

एक मुसलमान कवि होने के कारण जायसी की रचनाओं में उर्दू-फारसी शब्दों का आना स्वाभाविक है । आचार्य शुक्लजी के अनुसार – "यद्यपि 'पद्मावत' की रचना संस्कृत प्रबंध काव्यों की सर्गबद्ध पद्धति पर नहीं है, फारसी की मसनवी शैली में है, पर श्रृंगार, वीर आदि के वर्णन चली आती हुई भारतीय काव्य परंपरा के अनुसार ही हैं ।"[23] इससे यह बात सिद्ध होती है कि जायसी कृत 'पद्मावत' भारतीय काव्य परंपरा की अनूठी रचना है ।

---

[22] अयोध्यासिंह उपाध्याय हरिऔध – हिन्दी भाषा और साहित्य का विकास, पृ 177

[23] रामचन्द्र शुक्ल – हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ 105

रस

'पद्मावत' में रस का महत्वपूर्ण स्थान है । इसमें उन्होंने विरह, संयोग एवं प्रेम के रहस्यों का निरूपण किया है । यानी 'पद्मावत' में श्रृंगार के दोनों पक्ष – संयोग एवं वियोग – का प्रयोग हुआ है । श्रृंगार रस प्रधान 'पद्मावत' में वीर रस अंगी रस के रूप में आता हैं । वियोग श्रृंगार के लिए उदाहरण –

"और दग्ध का कहौं अपारा । सती सो जरै कठिन अस झारा ।।
होई हनुवंत पैठ है कोई । लंकादाहु लागु करै सोई ।।"[24]

यहाँ पद्मावती की विरह व्यथा को चित्रित किया गया हैं ।

वीर रस के लिए उदाहरण –

"लोहसार हस्ती पहिराए । मेघ सम जनु गरजत आए ।।
मेघहि चाहि अधिक वै कारे । भएउ असूझ देखि अँधियारे ।।"[25]

यहाँ अलाउद्दीन की सेना के हाथियों का वर्णन किया गया है ।

इस प्रकार जायसी कृत 'पद्मावत' में रसों का सफल परिपाक देख सकते हैं । उपर्युक्त रसों के अलावा इसमें करुण, बीभत्स, रौद्र आदि अन्य रसों का भी प्रयोग किया गया हैं ।

---

[24] राजनाथ शर्मा – जायसी ग्रंथावली, पृ 325

[25] राजनाथ शर्मा – जायसी ग्रंथावली, पृ 640

अलंकार

जायसी ने अपनी रचनाओं में भाषा सौंदर्य में वृद्धि लाने के लिए अलंकारों का प्रयोग किया है । 'पद्मावत' का प्रमुख अलंकार सादृश्य-मूलक अलंकार है । क्योंकि इसके द्वारा स्वरूप-बोध एवं भाव तीव्रता आती है । सादृश्यमूलक अलंकारों के अंतर्गत उपमा, उत्प्रेक्षा आदि आते हैं । इसके साथ-साथ श्लेष, अनुप्रास और यमक जैसे शब्दालंकारों का भी प्रयोग किया गया है । उत्प्रेक्षा अलंकार का ज़्यादा प्रयोग 'पद्मावत' में हैं । जैसे –

"साहस कराँ जो सुरुज दिपाई । देखि लिलाट सोठ छपि जाई ।"[26]

यहाँ नायिका के ललाट का वर्णन सूर्य से की है ।

उपमा के लिए –

"पद्मावति चँवला ससि-जोति । हँसौ फूल, रोवै सब मोति ।।

बरजा पितै हँसी औ रोजू । लागे दूत, होइ निति खोजू ।।"[27]

यहाँ पद्मावती की माँग में जो सिंदूर है उसका तथा उसकी केशालंकार विधान को उपमा द्वारा चित्रित किया गया है ।

इस प्रकार जायसी कृत 'पद्मावत' में अतिशयोक्ति, यमक, रूपक आदि अलंकारों का प्रयोग भी देख सकते हैं ।

---

[26] वासुदेवशरण अग्रवाल – पद्मावत, पृ 114

[27] राजनाथ शर्मा – जायसी ग्रंथावली, पृ 318

छंद

'पद्मावत' में प्रमुख रूप से चौपाई और दोहा छंद का प्रयोग हुआ है ।

चौपाई छंद के लिए उदाहरण –

"मानुस पेम भएउ बैकुंठी नाहिं त काह छार एक मूँठि ।।"[28]

यहाँ प्रेम की महत्ता को चित्रित किया गया है ।

दोहा छंद के लिए उदाहरण –

"जहाँ दलपति दलमलहिं तहाँ तोर का जोग ।

आजु गवन तोर आवै मंदिल मानु सुख भोग ।।"[29]

यहाँ बादल की माता यशोवती की व्याकुल व्यथा को चित्रित किया गया है ।

इस प्रकार छंदों के सम्यक प्रयोग से जायसी के काव्यों में भाव सर्वथा उद्दीप्त, घनीभूत, सुस्पष्ट, सुनियोजित एवं सम्यक रूप में व्यक्त हो पाए हैं ।

शब्द

उन्होंने भावों की सफल अभिव्यक्ति के लिए तत्सम, तद्भव, अपभ्रंश शब्दों का प्रयोग किया है । अस्तु, अहेरी, इन्द्रलोक, देवगिरि, देवलोक, परिमल, रूपमंजरी, माला, दिगम्बर, राजपाट, बाला, गवन, सिद्धपुरुष, सुमेरु, हस्ति आदि तत्सम शब्दों का प्रयोग उन्होंने किया है । उनके द्वारा प्रयुक्त तद्भव शब्द हैं – अंतरिख, अधियार, अंविरथा, आई, ब्रह्मा, हुलास आदि । उन्होंने दिनिअर,

[28] वासुदेवशरण अग्रवाल – पद्मावत, पृ 189

[29] वासुदेवशरण अग्रवाल – पद्मावत, पृ 819

ससहर, अवहट्ठ, भुवाल, अग्गि पहुमिपात, बेंड, पब्ब, दिब्ब, भवति, हेवंत, कमँठ जैसे प्राकृत तथा अपभ्रंशमूलक शब्दों के अलावा पारा, आछै आदि बंगला शब्दों का भी प्रयोग किया हैं ।

शब्दशक्ति

'पद्मावत' में मुख्य रूप से अभिधा शब्द शक्ति का प्रयोग किया गया है । कहीं-कहीं व्यंजना एवं लक्षणा का प्रयोग देख सकते हैं । अभिधा के लिए उदाहरण –

"बादिल केरि जसोवै माया । आइ गहे बादिल के पाया ।

बादिल राय मोर तूँ बारा । का जानसि कस होइ जुझारा ।।"[30]

यहाँ अभिधा द्वारा बादल के प्रति उसकी माता की ममता का सरस, मार्मिक वर्णन किया गया है ।

लक्षणा शब्दशक्ति के लिए उदाहरण –

"गढ़ी सो सोने सोंधै भरी सो रूपै भाग ।

सुनत रूखि भै रानी हिएँ लोन अस लाग ।।"[31]

यहाँ पद्मावती का सौंदर्य चित्रण किया गया है ।

व्यंजना शब्दशक्ति के लिए उदाहरण –

"सो दिल्ली अस निबहुर देसू । कोई न बहुरा कहै संदेसू ।

[30] वासुदेवशरण अग्रवाल – पद्मावत, पृ 818

[31] वासुदेवशरण अग्रवाल – पद्मावत, पृ 95

जो गवनै सो तहाँ कर होई । जो आवै किछु जान न सोई ।।

अगम पंथ पिय तहाँ सिधावा । जो रे गएउ सो बहुरि न आवा ।।"[32]

यहाँ दिल्ली गमन के द्वारा परोक्ष रूप में परलोक योत्रा को व्यंजित किया गया है ।

काव्यगुण

'पद्मावत' श्रृंगार प्रधान रचना होने के कारण इसमें माधुर्य गुण का आना स्वाभाविक है । लेकिन इसमें प्रसाद एवं ओज गुण का भी समुचित प्रयोग हुआ है ।

माधुर्य गुण के लि उदाहरण –

"धाई सिंघ बरु खातेउ मारी । कै तसि रहति अही जसि बारी ।

जोबन सुनेऊँ कि नवल बसंतू । तेहि बन परेउ हस्ति मैमंतू ।।"[33]

इन पंक्तियों में विरह संतप्त हृदय की टीस और यौवन के प्रति खीझ की सफल अभिव्यक्ति की गई हैं ।

ओज गुण के लिए उदाहरण –

"तब सरजा गरजा बरिवंडा । जानहुँ सेर केर भुअडंडा ।

कोपि गुरुज मेलेसि तस बाजा । जनहुँ परी परवत सिर गाजा ।।"[34]

---

[32] राजनाथ शर्मा – जायसी ग्रंथावली, पृ 728

[33] वासुदेवशरण अग्रवाल – पद्मावत, पृ 194

[34] वासुदेवशरण अग्रवाल – पद्मावत, पृ 857

यहाँ राजा का क्रोध तथा क्रोधवश तलवार खींचने पर उसकी बिजली सी चमक उठने का वर्णन किया गया है ।

प्रसाद गुण के लिए उदाहरण –

"छाँडु फेंटि घनि बादिल कहा । पुरुख गवन घनि फेंट न गहा ।

जौ तूँ गवन आइ गजगामी । गवन मोर जहँ वाँ मोर स्यामी ।।"[35]

यहाँ बादल का बाला के प्रति जो संवाद है उसको चित्रित किया गया है ।

प्रतीक योजना

जायसी की 'पद्मावत' में प्रतीकों के विभिन्न रूप देख सकते हैं । उन्होंने लौकिक एवं आध्यात्मिक तत्वों को प्रस्तुत करने के लिए प्रतीकों का प्रयोग किया गया हैं । उन्होंने संख्यावाचक प्रतीक, साधनापरक प्रतीक, रासायनिक प्रतीक, प्राकृतिक प्रतीक आदि का प्रयोग किया गया है । उन्होंने संख्यावाचक प्रतीक, साधनापरक प्रतीक, रासायनिक प्रतीक, प्राकृतिक प्रतीक आदि का प्रयोग किया हैं । उनके द्वारा प्रयुक्त प्रतीक के लिए उदाहरण है –

"सो गढ़ देखु गगन तें ऊँचा । नैनन्ह देखा, कर न पहूँचा ।

बिजुरी चक्र फिरै चहुँ फेरी । औ जमकात फिरै जम केरी ।।"[36]

इसमें उन्होंने साधक के सम्मुख साधना मार्ग में आनेवाली विध्न बाधाओं का प्रतीकात्मक शैली में वर्णन किया है । इसमें 'गगन से ऊँचा गढ'

[35] वासुदेवशरण अग्रवाल – पद्मावत, पृ 825

[36] राजनाथ शर्मा – जायसी ग्रंथावली, पृ 222

को 'आकाश या विशुद्धि चक्र से ऊपर सहस्रार चक्र' के प्रतीक के रूप में प्रस्तुत किया गया है और 'नैन' 'भ्रू मध्य या आज्ञाचक्र की अन्तर्दक्रृष्टि' तथा 'बिजुरी-चक्र' अध्यात्म या हठयोग पक्ष में चक्रों की विद्युत या प्राणधारा का प्रतीक है ।

बिम्ब योजना

'पद्मावत' को महत्वपूर्ण या सफल काव्य बनाने में बिम्बों का योगदान भी कम नहीं है । उन्होंने बिम्बों के द्वारा सुंदर चित्र हमारे सामने उपस्थित किया है । उनके द्वारा प्रयुक्त बिम्ब के लिए उदाहरण –

"मानसरोदक देखिअ काहा । भरा समुँद असअति अवगाहा ।

पानी मोति अस निरमर तासू । अंब्रित बानि कपूर सुबासू ।।"[37]

यहाँ मानसरोवर का सुंदर वर्णन किया है जो जन मानस पर सहज ही अंकित हो जाता हैं ।

इस प्रकार जायसी ने 'पद्मावत' में चाक्षुष बिम्ब, जलीय बिम्ब, आकाशी बिम्ब आदि का सुंदर प्रयोग किया है ।

काव्य दोष

किसी भी रचना दोष रहित नहीं होता । लेकिन दोष विहीन होने से कोई भी काव्य सफल या श्रेष्ठ नहीं बन जाता । फिर भी काव्य में त्रुटियों से मुक्त रहना आवश्यक है । कवि अपनी अनुभूतियों और कल्पनाओं को अभिव्यक्त

[37] वासुदेवशरण अग्रवाल – पद्मावत, पृ 36

करते वक्त भाषा की व्याकरणिक गठन को तोडते हैं । इसी कारण से काव्य में अधिकाँश दोष आ जाते हैं । जायसी भी इससे मुक्त नहीं है । जायसी के काव्य में प्रमुख रूप से शब्द दोष ही दृष्टव्य है जो इस प्रकार है –

"कस **हरतार** पार नहिं पावा । गंधक कहाँ **कुरकुटा** खावा"[38]

"अभरक कै तन **एँगुर** कीन्हा । सो तुम्ह फेरी अगिनि महँ दीन्हा ।।"[39]

हरतार, कुरकुटा, एँगुर जैसे अप्रचलित शब्दों के प्रयोग इसमे हुआ है जो अर्थ ग्रहण करने में बाधा उपस्थित करता हैं ।

इसके अलावा उन्होंने 'रावन' शब्द का प्रयोग 'रमण करनेवाला', 'रमणीय' जैसे अर्थों में प्रयुक्त किया है जो सर्वथा अनुचित है और इस तरह का प्रयोग भाषा के सहज सौंदर्य को नष्ट कर देते हैं ।

उनके 'पद्मावत' में दृष्टिगत अन्य दोष है – विभक्ति लोप । जैसे –

"जंघ छपा केदली होई बारी ।"[40]

यहाँ 'से' विभक्ति लुप्त है । उसी प्रकार 'में, की' विभक्तियों के अभाव से प्रसाद गुण का ह्रास हुआ है । अव्यय दोष के लिए उदाहरण –

"तब तहँ चढ़ै फिरै सत भँवरी ।"[41]

यहाँ 'फिरै' से पूर्व 'जब' का लोप हुआ है ।

---

[38] वासुदेवशरण अग्रवाल – पद्मावत, पृ 338
[39] वासुदेवशरण अग्रवाल – पद्मावत, पृ 342
[40] वासुदेवशरण अग्रवाल – पद्मावत, पृ 353
[41] वासुदेवशरण अग्रवाल – पद्मावत, पृ 732

इस प्रकार अव्यय दोष, विभक्ति लोप जैसे न्यून पदत्व दोष के अलावा अनुचितार्थत्व दोष, अश्लीलत्व दोष आदि भी 'पद्मावत' मे दृष्टिगत होते हैं ।

लोकोक्तियाँ और मुहावरे

सामान्यत: मुहावरे वाक्याँश होते हैं लेकिन उनका स्वरूप वाक्य का होता है । उनमें मुख्य क्रिया के रहने से पूर्व अर्थ की भी उपस्थिति होती है । जब यह वाक्य में प्रयुक्त होता है तो काल, पुरुष, लिंग, वचन आदि के अनुसार परिवर्तित हो जाते हैं । कुछ मुहावरे वाच्यार्थ के रूप में प्रचलित है तो कुछ व्यंग्यार्थ के रूप में । मुहावरों की लक्षणायें प्राय: सादृश्यमूला होती हैं । स्वभावोक्ति, रूढ़ोक्ति, उपमा, उत्प्रेक्षा, अतिशयोक्ति, विरोधाभास आदि कई अलंकार इसके अंतर्गत आते हैं । मुहावरे अलंकारों का चमत्कार बढ़ाते हैं, भावों को तीव्रतर करते है ।

लोकोक्तियाँ मुहावरों से भिन्न होती हैं । इनकी व्याप्ति मुहावरों की अपेक्षा कम होती है । वाक्य में प्रयुक्त होने पर इनमें परिवर्तन नहीं होता । लोकोक्ति का प्रयोग काव्य और जीवन में कम होता है ।

"नाइत माँझ भँवर हति गीवाँ । सरजै कहा मंद यहु जीवाँ ।।"[42]

इस लोकोक्ति के द्वारा भावाभिव्यक्ति सफल ढ़ंग से हुई है ।

[42] वासुदेवशरण अग्रवाल – पद्मावत, पृ 704

"नीर-खीर छानै दरबारा । दूध पानि सब करैं निनारा ।।"[43]

इस लोकोक्ति द्वारा राजा की न्याय-निष्ठा को व्यक्त किया गया हैं ।

इसके अलावा उन्होंने 'जहवैं दुख है तहवै पीरा, बोवै बबुर यवै कितन धाना, सो सेवक कस सोवै लागै' आदि लोकोक्तियों का भी प्रयोग किया गया है ।

उनके द्वारा प्रयुक्त मुहावरे क् लिए उदाहरण –

"छत्रहि अछत निछत्रहि छावा । दोसर नाहिं जो सरबरि पावा ।"[44]

यहाँ उन्होंने 'बराबरी न कर सकने' के अर्थ में इस मुहावरे का प्रयोग किया है ।

इसके अलावा 'निसि दिन रहै बसंत तह छवौ ऋतु बारह मासा' (सदा वसंत रहना) 'भा चितउर के पंथ' (रास्ता लेना), 'तस ए हुऔ जीठ पर खेलहि' (प्राण पर खेलना) आदि मुहावरों का भी प्रयोग किया गया है ।

3.3 तुलसी की काव्यभाषा

इस शताब्दी में भारत के हिन्दू समाज में मुख्य रूप से दो प्रकार की उपासना प्रचलित थी – रामोपासना और कृष्णोपासना । साधना के इन दोनों पक्ष साहित्यिक क्षेत्र भी प्रभावित हुआ । इसके फलस्वरूप अवधी और ब्रज भाषा में उच्चकोटि के सुंदर साहित्य विरचित होने लगे । इन दोनों भाषाओं में काव्य-रचना करनेवाले साहित्यकारों में प्रमुख हैं क्रमश: तुलसीदास और सूरदास । यद्यपि सूरदास जी का जन्म पहले हुआ है लेकिन आचार्य शुक्लजी ने अपने

[43] राजनाथ शर्मा – जायसी ग्रंथावली, पृ 22

[44] वासुदेवशरण अग्रवाल – पद्मावत, पृ 6

इतिहास में तुलसी को ही ऐतिहासिक दृष्टि से पहले वर्णित किया है और सूरदास को बाद में । साहित्यिक योगदान की दृष्टि से तुलसी को ही पहले मानना होगा । इसलिए अन्य इतिहासकार अपने इतिहास में सूर को पहले और तुलसी को बाद में रखते है ।

तुलसीदासजी ने अवधी और ब्रज दोनों भाषाओं पर काव्य रचना की हैं । उन्होंने 'रामचरितमानस', 'जानकीमंगल', 'रामलला नहछू', 'बरवै रामायण', 'पार्वती मंगल' अवधी भाषा में लिखा है तो ब्रजभाषा में उन्होंने 'विनय पत्रिका', 'कृष्ण गीतावली', 'कवितावली' की रचना किया है । अन्य ग्रन्थों में उन्होंने स्वतंत्र रूप में दोनों भाषाओं के शब्दों का प्रयोग किया हैं ।

तुलसीदासजी ने 'रामचरितमानस' की रचना परिमार्जित अवधी भाषा में की हैं । साथ ही वे संस्कृत के ज्ञानी होने के कारण सरस, भावमय और कोमल संस्कृत शब्दों का प्रयोग करते थे । जायसी की अवधी और तुलसी की अवधी में यही भिन्नता है । यद्यपि जायसी ने संस्कृत शब्दों का प्रयोग किया है लेकिन उनका शब्द-भंडार उतना विशाल नहीं है जितना तुलसी का हैं । अत: तुलसी ने जायसी की तरह संस्कृत शब्दों को तोड-मरोडकर विकृत करने का कार्य नहीं किया । शुक्लजी के अनुसार – "रामभक्ति का वह परम विशद साहित्यिक संदर्भ इन्हीं भक्त शिरोमणि द्वारा संघटित हुआ जिससे हिन्दी काव्य की प्रौढ़ता के युग

का आरंभ हुआ ।"[45] हिन्दी काव्य के साथ हिन्दी भाषा का भी प्रौढतम विकास इन्हीं के द्वारा आरंभ हुआ हैं ।

तुलसी ने जनभाषा को संस्कृत से ज्यादा महत्व दिया है । क्योंकि संस्कृत बहुत ही सीमित लोगों द्वारा बोली जानेवाली भाषा है । रामकथा को साधारण लोगों तक पहूँचाने के उद्देश्य से ही उन्होंने जनभाषा को चुना है ।

तुलसी के काव्यों की प्रमुख विशेषता है – स्वाभाविकता और सरलता । काव्य में सरलता आने पर कृत्रिमता दूर हो जाती है । अपने काव्यों में सरलता लाने के लिए उन्होंने अवधी और ब्रज का प्रयोग किया है । अर्थात् साधारण जनता की भाषा में भावों को सरल वाक्यों में अभिव्यक्त किया है । अगली विशेषता प्रभावोत्पादकता है । इसी प्रभावोत्पादकता के कारण ही उनके द्वारा वर्णित दृश्य, चरित्र, भाव, तथ्य आदि का सजीव रूप हमारे सामने उभर आते हैं । तुलसी काव्य की तीसरी विशेषता यह है कि वह मर्यादापूर्ण तथा औचित्य और सुरुचि संपन्न है । तुलसी ने भाषा के उपकारक अंग के रूप में ध्वनि, स्वभावोक्ति, गुण, अलंकार, शब्द-विन्यास कौशल को माना हैं ।

रस

श्री हरिऔधजी के अनुसार – "गोस्वामी नवरस – सिद्ध महाकवि हैं ।"[46] हरिऔधजी का यह कथन सर्वथा उपयुक्त है । क्योंकि उनके 'रामचरितमानस' में

[45] आचार्य रामचन्द्र शुक्ल – हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ 121

[46] श्री अयोध्यासिंह उपाध्याय हरिऔध – हिन्दी भाषा और साहित्य का विकास, पृ 198

रसों के विविध रूप हम देख सकते हैं । वातावरण तथा प्रसंगानुकूल रसों का समन्वय करने में वे सिद्धहस्त हैं । प्रत्येक कांड में भक्ति रस प्रमुख रूप में उभरते हैं । फिर भी वीर, वात्सल्य, श्रृंगार, करुण आदि सभी रसों का समुचित प्रयोग किया गया हैं । तुलसी ने ही भक्ति को रस के अंतर्गत समाहित करने का प्रबल प्रयास किया है । भक्ति रस के लिए उदाहरण –

"करन चहऊँ रघुपति – गुन – गाहा । लघु मति मोरि चरित अवगाहा ।।
सूझ न एकउ अंग उपाऊ । मम मति रंक मनोरथ राऊ ।।"[47]

यहाँ श्रीरामचन्द्रजी के प्रति अपने सेवक भाव को उन्होंने व्यक्त किया है ।

वियोग श्रृंगार के लिए उदाहरण –

"अनि काठ रचु चिता बनाई । मातु अनल पुनि देहि लगाई ।
सत्य करहि मम प्रीति सयानी । सुनइ को स्रवन सूलसम बानी ।।"[48]

यहाँ सीताजी की विरह-व्यथा को अत्यंत मार्मिक ढंग से प्रस्तुत किया गया है ।

इस प्रकार तुलसी ने विभिन्न रसों का सफल प्रयोग किया है ।

अलंकार

तुलसी ने अपने काव्य की सुंदर अभिव्यक्ति के लिए अलंकारों का प्रयोग किया है । उन्होंने उपमा, रूपक, यमक आदि अलंकारों का प्रयोग किया हैं । सबसे उल्लेखनीय बात यह है कि मानवीकरण अलंकार, जो छायावादी युग की

[47] (सं) श्यामसुंदरदास – रामचरितमानस, पृ 13
[48] (सं) श्यामसुंदरदास – रामचरितमानस, पृ 764

प्रमुख काव्य विशेषता है, प्रयोग करने का प्रारंभ उन्हीं के द्वारा हुआ हैं । उनके द्वारा प्रयुक्त मानवीकरण अलंकार के लिए उदाहरण है –

"श्रीफल कनक कदलि हरषाहीं । नेकु न संक सकुच मन माहीं ।।
सुनु जानकी तोहि बिनु आजू । हरषे सकल पाइ जनु राजू ।।"[49]

यहाँ नारियल, सुवर्ण, केला सब में मानवीय भावों को (प्रसन्नता) आरेपित किया गया है ।

उपमा के लिए उदाहरण –

"पावकमय ससि स्रवत न आगी । मानहुँ मोहि जानि हतभागी ।।"[50]

यहाँ चन्द्रमा के मुख को अग्नि के समान कहा गया है ।

अनुप्रास के लिए उदाहरण –

"देखि बुद्धि-बल-निपुन कपि कहेउ जानकी जाहु ।
रघु-पति-चरन हृदय धरि तात मधुरफल खाहु ।।"[51]

यहाँ अनुप्रास के सुंदर प्रयोग से भावाभिव्यक्ति की हैं ।

छंद

'रामचरितमानस' में प्रमुख रूप से दोहा और चौपाई छंद का प्रयोग किया गया है और आंशिक रूप से सोरठा छंद का प्रयोग मिलते हैं । दोहा के लिए उदाहरण –

---

[49] (सं) श्यामसुंदरदास – रामचरितमानस, पृ 691
[50] (सं) श्यामसुंदरदास – रामचरितमानस, पृ 765
[51] (सं) श्यामसुंदरदास – रामचरितमानस, पृ 797

"जिन्ह पायन्ह के पादुकन्हि भरत रहे मन लाइ ।

ते पद आजु बिलोकिहउँ इन्ह नयनन्हि अब जाइ ।।"[52]

इस दोहे में रामजी के प्रति विभीषण की भक्ति द्योत्त है ।

चौपाई के लिए उदाहरण –

"प्रभु बिलोकि मुनिमनु अनुराग । तुरत दिष्य सिंहासन माँगा ।।

रबिसम तेज सो बरनि न जाई । बैठे राम द्विजन्ह सिरु नाई ।।

जनक-सुता-समेत रघुराई । पेखि प्रहरषे मुनिसमुदाई ।।

बेदमंत्र तब द्विजन्ह उचारे । नभ सुर मुनि जय जयति पुकारे ।।"[53]

यहाँ श्रीरामचन्द्रजी को सिंहासन पर विराजे देखकर गुरु वसिष्ठ, राज माताएँ, ऋषि-वृन्द, देवता आदि के हर्षातिरेक को वर्णित किया गया है ।

सोरठा के लिए उदाहरण –

"गुरु सन कहब सँदेसु बार बार पदपदुम गहि ।

करब सोइ उपदेसु जेहि न सोच मोहि अवधपति ।।"[54]

यहाँ रामचन्द्रजी के संदेश को चित्रित किया है ।

शब्द

तुलसी के काव्य में प्रयुक्त शब्दों के संबंध में आचार्य शुक्लजी ने इस प्रकार कहा है – "तुलसीदासजी की भाषा में ऐसे शब्द, जो स्थान विशेष के

---

[52] (सं) श्यामसुंदरदास – रामचरितमानस, पृ 797

[53] (सं) श्यामसुंदरदास – रामचरितमानस, पृ 982-983

[54] (सं) श्यामसुंदरदास – रामचरितमानस, पृ 485

बाहर नहीं बोले जाते हैं, केवल दो स्थानों के हैं – चित्रकूट के आसपास के और अयोध्या के आसपास के ।"[55] तुलसी के काव्य में प्रमुख रूप से चित्रकूट के माहुर, सरौ, फहराना या फहरना, फुर, अनभल, ताकना, राउर, रउरेहि, रमा लही, कूटि आदि शब्दों का और कुराय, सुआर आदि अयोध्या के आसपास बोले जानेवाले शब्दों का प्रयोग ज़्यादा दिखता है । इसके अलावा उनके द्वारा प्रयुक्त तद्भव शब्दों के लिए उदाहरण है – बाति, अहेर, अहिवात, रहट, कौडी, कनी, थूनि, उलीचा, बीछी, साँझ, रूख, नाच, घाम, सिअरे, उबरा आदि । डोंगर, डाँग, गोड, पेट, खोरी, टाट, हिसिषा, डँहकि, बिसूरना, लवाई, ढंढोरी , ढारइ, मोट, अवढर, ढाबर, काँकर, जोइहि, गुडी, डसाई, हेरी, लुकाई, झारि, ठट्टा, ठग, टहल, घमोई, झोंपडी, सुपेती, रेगाई, जनिबी, मानिबी आदि देशज शब्दों का प्रयोग उनके द्वारा हुआ है । इसके अलावा उन्होंने अनेक विदेशी शब्दों का भी प्रयोग किया है जैसे – साहेब, नेवाज, जवार, गनी, गरीब, जिनिस, जमात, मनसा, बाग, बिदा, हाल, कागद, रुख, दरबार, पलक, लगाम, सक आदि ।

इस प्रकार तुलसी के काव्य अपने शब्द-भंडार के कारण भी प्रसिद्ध एवं महत्वपूर्ण हैं ।

शब्दशक्ति

तुलसी ने प्रमुख रूप से अभिधा का प्रयोग किया है । लक्षणा एवं व्यंजना का इसमें कमी नहीं है । अभिधा के लिए उदाहरण –

[55] आचार्य रामचन्द्र शुक्ल – हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ 126

"लगे कहन हरिकथा रसाला । दच्छ प्रजेस भये तेहि काला ।।

देखा बिधि बिचारि सब लायक । दच्छहिँ कीन्ह प्रजापतिनायक ।।"[56]

इसमें शिवजी द्वारा भगवान् श्रीरामजी की कथाओं की शुरुआत तथा यज्ञ का प्रजापतियों का नायक बनने का संकेत किया गया है ।

लक्षणा शब्दशक्ति के लिए उदाहरण –

"सुनि सिसुरुदन परम प्रिय बानी । संभ्रम चलि आईं सब रानी ।

हरषित जहँ तहँ धाईं दासी । आनँदमगन सकल पुरबासी ।।"[57]

यहाँ श्रीरामजी के जन्म से अयोध्यावासियों के आनंद को सूचित किया गया हैं ।

व्यंजना शब्दशक्ति के लिए उदाहरण –

"तीनि अवस्था तीनि गुन तेहि कपास तें काढि ।

तूल तुरीय सँवारि पुनि बाती करइ सुगाढि ।।"[58]

यहाँ तीन अवस्था से तात्पर्य जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति से हैं और तीन गुण हैं – सत्व, रज और तम ।

इस प्रकार 'रामचरितमानस' में शब्दशक्तियों का समुचित प्रभावात्मक प्रयोग किया गया हैं ।

---

[56] (सं) श्यामसुंदरदास – रामचरितमानस, पृ 67

[57] (सं) श्यामसुंदरदास – रामचरितमानस, पृ 184

[58] (सं) श्यामसुंदरदास – रामचरितमानस, पृ 1100

काव्य गुण

तुलसी ने माधुर्य, प्रसाद और ओज गुण इन तीनों का प्रयोग अपनी रचना में किया हैं । रचना में भाव के बदलने के साथ-साथ गुणों के नियोजन में भी उन्होंने ध्यान रखा है । 'रामचरितमानस' में प्रसाद गुण की अधिकता है । शेष गुणों का भी उचित मात्रा में प्रयोग किया है । माधुर्य गुण के लिए उदाहरण –

"नूतनकिसलय अनलसमाना । देहि अगिनि तन करहि निदाना ।

देखि परमबिरहाकुल सीता । सो छन कपिहि कलपसम बीता ।।"[59]

यहाँ विरह से तप्त सीताजी को चित्रित किया गया है ।

प्रसाद गुण के लिए उदाहरण –

"नित पूजत प्रभुपावँरी प्रीति न हृदय समाति ।

माँगि माँगि आयसु करत राजकाज बहु भाँति ।।"[60]

यहाँ श्रीरामजी के प्रति भाई भरतजी के प्रेम को सूचित किया गया है ।

ओज गुण के लिए उदाहरण –

"मारेसि मेघनाद कै छाती । परा धरनि घुर्मित सुरघाती ।।

पुनि रिसान गहि चरन फिरावा । महि पछारि निज बल देखरावा ।।"[61]

यहाँ मेघनाद और जाम्बवान के बीच के भयंकर युद्ध को चित्रित किया गया हैं ।

---

[59] (सं) श्यामसुंदरदास – रामचरितमानस, पृ 765

[60] (सं) श्यामसुंदरदास – रामचरितमानस, पृ 641

[61] (सं) श्यामसुंदरदास – रामचरितमानस, पृ 900

प्रतीक योजना

यद्यपि प्रतीकों का प्रयोग आधुनिक युग में अधिक दृष्टिगत है तथापि मध्यकाल में भी इसका प्रयोग कहीं-कहीं मिलते हैं । तुलसी ने भी प्रतीकों का प्रयोग किया है । तुलसी के राम मर्यादा, ब्रह्म और सत् का प्रतीक है तो भरत भ्रातृ-प्रेम एवं त्याग का प्रतीक है । उसी प्रकार कर्तव्यनिष्ठा, प्रेम की अनन्यता और बलिदान-भावना के प्रतीक रूप में लक्ष्मण को चित्रित किया है तो सीता पतिव्रता नारी का प्रतीक है ।

तुलसी ने उनके राम को एक-दूसरे रूप में भी चित्रित किया है – परब्रह्म के प्रतीक के रूप में । यानी उनके राम परब्रह्म का ही अवतार है । तुलसी ने माया के दो रूप – अविद्या माया और विद्या माया – मानकर सीता को विद्या माया के रूप में प्रस्तुत किया है और रावण को अविद्या माया के प्रतीक भी माना है । उनके द्वारा प्रयुक्त प्रतीक के लिए उदाहरण है –

"संसय – सर्प्प – ग्रसन - उरगाद: । समन – सु – कर्कस – तर्क - विषाद:

भव – भंजन रंजन – सुर - जूथ: । त्रातु सदा नो कृपाबरूथ: ।।"[62]

यहाँ सर्प को संशय के प्रतीक के रूप में, गरुड को संशय निवारण करनेवाले के प्रतीकवत् रूप में चित्रित किया हैं ।

---

[62] (सं) श्यामसुंदरदास – रामचरितमानस, पृ 661

अन्य उदाहरण है –

"एक दुष्ट अतिसय दुखरु पा । जा बस जोव परा भवकूपा ।।
एक रचइ गुनबस जाके । प्रभुप्रेरित नहिँ निजबल ताके ।।"[63]

यहाँ विद्या और अविद्या को सूचित किया गया है ।

बिम्ब योजना

तुलसी के काव्य में विविध प्रकार के बिम्बों को देख सकते हैं । जैसे –

जलीय बिम्ब, आकाशीय बिम्ब, ध्वनि बिम्ब, नाद बिम्ब आदि । उनके द्वारा प्रयुक्त बिम्ब के लिए उदाहरण है –

"कैकयसुता सुनत कटुबानी । कहि न सकइ कछु सहमि सुखानी ।।
तन पसेउ कदली जिमि काँपि । कुबरी दसन जीभ तब चाँपी ।।"[64]

यहाँ कैकेयी के शरीर के कंपन को मूर्तित करने के लिए कदली बिम्ब का प्रयोग किया गया है । इसके अलावा ऊमरि, चन्दन, पीपल, किंशुक आदि वृक्षों को भी बिम्ब के रूप में प्रस्तुत किया गया है ।

एक और उदाहरण है –

"भूप बिलोके जबहिँ मुनि आवत सुतन्ह समेत ।
उठेउ हरषि सुखसिंधु महँ चले थाह सी लेत ।।"[65]

---

[63] (सं) श्यामसुंदरदास – रामचरितमानस, पृ 667
[64] (सं) श्यामसुंदरदास – रामचरितमानस, पृ 368
[65] (सं) श्यामसुंदरदास – रामचरितमानस, पृ 293

यहाँ राम-लक्ष्मण के साथ मुनि विश्वामित्र के आते देखकर दशरथ को जो असीम हर्षानुभूति हुई है उसे व्यक्त करने के लिए सागर में थाह लेने का अतीव मार्मिक बिम्ब प्रस्तुत किया गया है ।

संवाद योजना

तुलसी ने संवाद योजना द्वारा काव्य को अधिक मार्मिक एवं बोधगम्य बनाया हैं । 'रामचरितमानस' में लक्ष्मण-परशुराम-राम संवाद बहुत ही प्रसिद्ध है । व्यंग्यात्मक शैली के द्वारा तुलसी ने इसे सर्वथा मौलिक संवाद बना दिया है । उदाहरण के लिए –

"मिले न कबहुँ सुभट रन गाढे । द्विज देवता घरहिँ के बाढे ।।
अनुचित कहि सब लोग पुकारे । रघुपति सैनहिँ लषन निवारे ।।

\- - - - -

\- - - - -

जौँ लरिका कछु अचगरि करहीँ । गुरु पितु मातु मोद मन भरहीँ ।।
करिय कृपा सिसु सेवकु जानी । तुम्ह सम-सील धीर मुनि ग्यानी ।।

\- - - - -

\- - - - -

गौर सरीर स्याम मन माहीँ । काल-कूट-मुख पयमुख नाहीँ ।।

सहज टेढ़ अनुहरइ न तोहीं । नीच मीचसम देख न मोहीं ।।"[66]

यहाँ लक्ष्मण-राम-परशुराम के संवाद को स्पष्ट एवं सफल रूप में व्यक्त किया गया है ।

तुलसी ने संवाद योजना द्वारा पात्रों के चरित्र-चित्रण तथा वातावरण को बहुत ही स्पष्ट रूप में व्यक्त किया है ।

लोकोक्तियाँ और मुहावरे

लोकोक्तियाँ और मुहावरों के प्रयोग से काव्य में जीवंतता आ जाती है । तुलसी कृत 'रामचरितमानस' में भी इसका प्रयोग देख सकते है । उदाहरण के लिए –

"भूप सुमंत्रु लीन्ह उर लाई । बूडत कछु अधार जनु पाई ।।"[67]

यहाँ दशरथ राजा की मानसिक स्थिति को द्योतित करने के लिए इसका प्रयोग किया गया है ।

उनके द्वारा प्रयुक्त अन्य लोकोक्तियों के लिए उदाहरण है - 'धान को गाँव पयार ते जानिय दूध को जयौं पिअत फूँकि फूँकि मह्यो, चोरहिं चंदिनि राति न भावा, जस काछिय तस चाहिउ नाचा, अरघ तजहिं बुध सरबस दाता, तस पूजा चाहिउ जस देवता आदि । उनके द्वारा प्रयुक्त मुहावरे के लिए उदाहरण है –

[66] (सं) श्यामसुंदरदास – रामचरितमानस, पृ 266-267

[67] (सं) श्यामसुंदरदास – रामचरितमानस, पृ 482

"सदा सोहागिनि होहु तुम्ह जब लगि महि अहिसीस ।।"[68]

'सीताजी चिरकाल तक सुहागिनी रहें' इसको सूचित करने के लिए यहाँ मुहावरे का प्रयोग किया है ।

इसके अलावा पावहुँगे फल आपन कीन्हा, नाहि त मौन रहब दिन राती, परघर घालक लाजक न भीरा, अंधहि लोचन लाभु सुहावा, भामिनी भइहु दूध कइ माखी आदि मुहावरों का भी प्रयोग उन्होंने किया हैं ।

3.4 सूरदास की काव्यभाषा

भक्तिकाल में अवधी के समानांतर ब्रज भाषा भी साहित्यिक भाषा के रूप में विकसित होने लगी । ब्रज भाषा में साहित्यिक रचना करनेवालों में सर्वप्रमुख है – सूरदास । आचार्य रामचन्द्र शुक्लजी के अनुसार – "सूरदासजी ब्रज की चलती भाषा को परंपरा से चली आती हुई काव्यभाषा के बीच पूर्ण रूप से प्रतिष्ठित करके साहित्यिक भाषा को लोकव्यवहार के मेल में ले आए । उन्होंने परंपरा से चली आती हुई काव्यभाषा का तिरस्कार न करके उसे एक नया चलता रूप दिया ।"[69] इस प्रकार ब्रज को तत्कालीन काव्यभाषा के पद पर विराजित करने में उनका प्रमुख स्थान है ।

सूरदास जी की काव्यभाषा ब्रज हैं । सूर ने ब्रजभाषा को एक सुव्यवस्थित साहित्यिक रूप प्रदान करने का सर्वप्रथम प्रयोस किया है ।

---

[68] (सं) श्यामसुंदरदास – रामचरितमानस, पृ 456

[69] आचार्य रामचन्द्र शुक्ल – हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ 129

लालित्य, मनमोहकता, काव्योपयोगी रमणीय शब्दों की भरमार, शब्दों को स्वेच्छानुकूल बनाने की क्षमता आदि ब्रजभाषा की विशेषताएँ है । सूर के द्वारा प्रयुक्त भाषा शुद्ध और परिमार्जित न होकर सभी गुणों से युक्त साहित्यिक ब्रजभाषा है । इसकी विशेषताएँ है – कोमलकांत पदावली की बहुलता, भावानुरूप शब्द संगठन, सार्थक शब्द-योजना, ताल लय युक्त धारावाहिक प्रवाह, अत्यंत बलवती सजीवता । सूर काव्य का सबसे बडा गुण है – भाषा की सजीवता ।

रस

सूर ने अपने काव्य में श्रृंगार रस को महत्व दिया है । विप्रलंभ श्रृंगार पर प्रेम-मार्ग की महत्ता की छाप होने के कारण वह अत्यंत हृदयग्राही और मार्मिक बन पडा है । श्रृंगार रस के लिए उदाहरण –

"ऊधौ अँखियाँ अति अनुरागी ।
इकटक मग पावस जोवतिँ अरु रोवतिँ, भुलेहुँ पलक न लागी ।।
बिनु पावस पावस करि राखी, देखत हौ बिदमान ।
अब धौँ कहा कियौ चाहत हौ, छाँडौ निरगुन ज्ञान ।।"[70]

यहाँ कृष्ण के वियोग से गोपियों की विरह-पीडा को मार्मिक ढंग से प्रस्तुत की हैं ।

[70] श्री नंददुलारे वाजपेयी – सूरसागर, पृ 1343

सूर के काव्य में श्रृंगार के साथ-साथ वात्सल्य रस का भी समान महत्व है । उन्होंने वात्सल्य रस का सुंदर प्रयोग किया है । जैसे –

"जसोदा हरि पालनै झुलावै

हलरावै दुलराइ मल्हावै जोइ सोइ कछु गावै ।।"[71]

यहाँ कृष्ण के प्रति माता यशोदा के वात्सल्य एवं प्रेम को चित्रित किया है ।

इसके अलावा वीर, करुण, बीभत्स जैसे रसों का भी सम्यक प्रयोग करके उन्होंने अपने काव्य को बहुत ही रोचक बनाया है ।

अलंकार

सूर ने शब्दालंकारों से ज़्यादा अर्थालंकारों का प्रयोग किया है । सूर का अलंकार-विधान प्रमुखतया भावाश्रित हैं । उनकी अभिव्यंजना अत्यंत अलंकृत तथा सौष्ठव संपन्न है । उनके द्वारा प्रयुक्त रूपकातिशयोक्ति के लिए उदाहरण है

"पीतांबर की सोभा सखि री, मोपै कही न जाई ।

सागर सुत पति आयुध मानौ, बन रिपु रिपु मैं देत दिखाई ।

जा रिपु पवन तासु सुत स्वामी आभा, कुंडल कोटि दिखाई ।

छाया पति तनु बदन बिराजत बंधुक अधरनि रहे लजाई ।।"[72]

यहाँ सखियों के बीच में होनेवाली बातचीत के द्वारा कृष्ण का वर्णन किया गया है ।

---

[71] श्री हरदेव बाहरी – सूरसागर, पृ 354

[72] श्री नंददुलारे वाजपेयी – सूरसागर, पृ 891-892

उपमा के लिए उदाहरण –

"धीरज तज्यौ निरखि छबि ।

कोटि मदन अपनौ बल हार्यौ, कुंडल किरनि छप्यौ रबि ।।"[73]

यहाँ कृष्ण को कामदेव से और उनके कुंडल को सूर्य से उपमित किया है । इसके अलावा सूर ने वक्रोक्ति, यमक, अनुप्रास आदि अलंकारों का सफल प्रयोग किया है ।

छंद

सूर ने 'सूरसागर' में सोरठा, सारंग, धनाश्री, ललित जैसे छंदों का प्रयोग किया है । सोरठा के लिए उदाहरण है –

"काम स्यामतनु चप्प कियौ ।

मान धर्यौ नागरि जिय गाढौ, सूख्यौ कमल हियौ ।।"[74]

यहाँ राधिका की मानसिक स्थिति की ओर संकेत किया गया है ।

धनाश्री के सिए उदाहरण –

"है कोउ ऐसी भाँति दिखावै ।

किंकिनि सब्द चलत धुनि, रुनधुन ठुमुकि ठुमुकि गृह आवै ।।"[75]

यहाँ बालकृष्ण का सुंदर वर्णन किया गया है ।

---

[73] श्री नंददुलारे वाजपेयी – सूरसागर, पृ 863

[74] श्री नंददुलारे वाजपेयी – सूरसागर, पृ 1018

[75] श्री नंददुलारे वाजपेयी – सूरसागर, पृ 1199

इस प्रकार छंदों के परिवर्तन से भावों की सफल अभिव्यक्ति उन्होंने किया है ।

शब्द

ब्रजभाषा में संस्कृत के तत्सम, तद्भव, खडीबोली, राजस्थानी, अरबी-फारसी आदि के शब्द मिलते हैं । सूर की भाषा में भी ये सब देख सकते हैं । उनके द्वारा प्रयुक्त तत्सम शब्द है – अंबर, अपवाद, अग्नि, आच्छादित, आनंद, आभा, इंदु, उत्साह, प्रीति, मध्य, लता, दान, तनु, कला, पीयूष, भुजंग आदि । अखूट, गाँस, खुटक, अपबल, साट, छनेक, गोहन, चरित लेना, दुन्द मचाना, सतर होना. हटकना, निसारना आदि तद्भव शब्दों का प्रयोग किया गया है । उन्होंने अमल, जरद, दस्तक, निहाय, खसम, कसूर, मौज, मिलिक, निवाजना, मुकरना, बकसाना, मुसाहिब, अकल, दगा, जहाज़, जमानत, दलाली, दीवान आदि अरबी-फारसी शब्दों का भी प्रयोग किया है । उन्होंने शब्दों को तेड़-मरोडकर भी प्रयुक्त किया है । जैसे किलकी, तिलकी, हिलकी, मिलकी, पिलकी, सिलकी आदि । उपजाना, उमँगना, त्यागना, पोषना, भासना, लजाना, बिराजना आदि नवीन शब्दों को भी प्रयुक्त किया गया है ।

शब्दशक्ति

सूर ने तीनों शब्दशक्तियों के प्रयोग से सहज भावानुभूति उत्पन्न की है । जैसे अभिधा के लिए उदाहरण –

"आजु दशरथ कैँ आँगन भीर ।

ये भूभार उतारन कारन प्रगटे स्याम सरीर ।।"[76]

यहाँ भगवान श्रीरामचन्द्रजी के अवतार या जन्म का उल्लेख मिलता है ।

व्यंजना शब्दशक्ति के लिए उदाहरण –

"हरि पद कमल कौ मकरंद ।

मलिन मति मन मधुप परिहरि विषय नीरस मंद ।।"[77]

यहाँ मन की विषयाक्ति को द्योतित किया गया है ।

लक्षणा शब्दशक्ति के लिए उदाहरण –

"चढ़ि गिरि शिखर सब्द एक उरच्यौं गगन उठ्यौ आघात ।।

कंपत कमठ सेष बसुधा नभ रवि रथ भयौ उतपात ।।"[78]

यहाँ शेष नाग, पृथ्वी और आकाश का काँपना तथा सूर्य का रथ का हिलना-डुलना द्वारा हनुमानजी के हुँकार की तीव्रता या भयंकरता को व्यक्त किया गया है ।

काव्य-गुण

सूर के काव्य में ओज, प्रसाद और माधुर्य गुण का सफल परिपाक हुआ है । काव्य गुणों के सही नियोजन से अभिव्यक्ति सरल बन गयी है । 'सूरसागर' में माधुर्य एवं प्रसाद गुण की प्रमुखता है । जैसे –

[76] हरदेव बहरी – सूरसागर, पृ 248

[77] हरदेव बहरी – सूरसागर, पृ 245

[78] हरदेव बहरी – सूरसागर, पृ 270

"प्रात समय नँद नंदन स्यामा देखे आवत कुंजगली ।

नव घनस्याम तरुन दामिनि मिल राजत रूप अनूप अली ।।"[79]

यहाँ माधुर्य गुण का समायोजन स्पष्ट ही झलकता है ।

प्रसाद गुण के लिए उदाहरण –

"हरि मुख निरखि नागरि नारि ।

कमल नैन के कमल बदन पर, बारिज वारिज वारि ।।"[80]

यहाँ बाल कृष्ण के वर्णन के लिए प्रसाद गुण का समायोजन किया है ।

ओज गुण के लिए उदाहरण –

"पकरि कै भुज सौं फिरायौ ताल कैं तर आइ ।

असुर लै तरु सौं पछार्यौ गिर्यौ तरु भहराइ ।।"[81]

यहाँ युद्ध की तीव्रता को प्रस्तुत किया गया है ।

प्रतीक योजना

सूर के काव्य में प्रतीक की कमी नहीं है । उनके द्वारा प्रयुक्त प्रतीक के लिए उदाहरण है –

"मधुकर निपट हीन मन उचटे ।

सूँघत फिरत सकल कुसुमनि कौं, कहूँ न रीझि कटे ।।"[82]

---

[79] श्री नंददुलारे वाजपेयी – सूरसागर, पृ 1597

[80] श्री नंददुलारे वाजपेयी – सूरसागर, पृ 877

[81] श्री नंददुलारे वाजपेयी – सूरसागर, पृ 1580

[82] श्री नंददुलारे वाजपेयी – सूरसागर, पृ 1623

यहाँ 'मधुकर' कृष्ण का प्रतीक है और 'कुसुमनि' वृन्दावन की गोपिकाओं का प्रतीक है ।

दूसरा उदाहरण है –

"अष्ट दस घट नीर अँचवति, तृषा तउ न बुझाइ ।

छहौं रस हूँ धरत आगैं तउ न गंध सुहाइ ।।"[83]

यहाँ 'अष्ट दस घट' अठारह पुराणों के और 'छहौं रस' छह शास्त्रों के प्रतीक हैं ।

इसके अलावा उन्होंने मीन को प्रेम के प्रतीक के रूप में, कृष्ण को परब्रह्म के रूप में, मुरली को नादब्रह्म के रूप में, भ्रमर को कृष्ण के रूप में प्रस्तुत किया हैं ।

बिम्ब योजना

सूर के काव्य में आकाशीय बिम्ब, जलीय बिम्ब, धरातलीय बिम्ब आदि का प्रयोग देख सकते हैं । धरातलीय बिम्ब के लिए उदाहरण –

"जा दिन मन पंछी उड़ि जैहै ।

ता दिन तेरे तन तरुवर के सबै पात झरि जैहैं ।।"[84]

यहाँ जीवन की क्षणभंगुरता की अभिव्यक्ति के लिए वृक्ष से पत्तों के झडने का बिम्ब दिया गया है ।

---

[83] हरदेव बहरी – सूरसागर, पृ 26

[84] हरदेव बहरी – सूरसागर, पृ 38

इस प्रकार बिम्बों के द्वारा शाश्वत सत्यों का उल्लेख करने की क्षमता सूर में है ।

लोकोक्तियाँ और मुहावरे

सूर काव्य में लोकोक्तियों का सशक्त एवं प्रसंगानुकूल प्रयोग हुआ है । जैसे –

"पग तर जरत न जानै मूरख घर तजि घूर बुझावै ।।"[85]

जिस प्रकार मूर्ख जन पैरों के नीचे जलते हुए घर को नहीं जनता और घर छोडकर घूरे की आग बुझाने चल पडता है उसी प्रकार लोग कृष्ण को छोडकर अन्य देवी-देवताओं के भजन या स्मरण करने चल पडता है । यहाँ भगवान कृष्ण की महत्ता को सूचित किया गया है ।

इस प्रकार सूर ने लोकोक्तियों का प्रयोग किया है जैसे – तुम बाँधति आकास बात झूठी को सहै, द्वै कौडी के कागद मसी कौ लागत है बहु मोल, आदि ।

3.5 मीराबाई की काव्यभाषा

भक्तिकाल की प्रमुख कवयित्री है – मीराबाई । मीरा ने किसी एक ही भाषा का प्रयोग मात्र नहीं किया है । बल्कि ब्रज, राजस्थानी, पंजाबी, गुजराती भाषाओं का भी प्रयोग किया है । उनका जन्म तथा जीवनकाल राजस्थान में होने के कारण राजस्थानी भाषा की प्रमुखता है । आचार्य रामचन्द्र शुक्लजी ने

[85] हरदेव बहरी – सूरसागर, पृ 160

इसके संबंध में लिखा है – "इनके पद कुछ तो राजस्थानी मिश्रित भाषा में हैं और कुछ विशुद्ध साहित्यिक ब्रजभाषा में ।"[86] इससे उनकी भाषा परक विविधता स्पष्ट हो जाती है । मीरा की राजस्थानी मिश्रित पद के लिए उदाहरण है –

"थे तो पलक उघाडो दीनानाथ, मैं हाजिर नाजिर कब की खड़ी ।
साजनियाँ दुसमण होय बैठ्यां, सबने लगूँ कडी ।।"[87]

यहाँ प्रमुख रूप से राजस्थानी शब्दों का प्रयोग मिलता है ।

ब्रज मिश्रित भाषा के लिए उदाहरण है –

"थहि विधि भक्ति कैसे होय ।
मन की मैल हिये से न छूटी, दियो तिलक सिर धोय ।।"[88]

इन पंक्तियों में ब्रजभाषा का प्रयोग अधिक हुआ है ।

अपने हृदय में उमडते प्रेम को व्यक्त करना ही मीरा के काव्य का उद्देश्य रहा है । अत: उनका काव्य भाव प्रधान है । भावों की सफल अभिव्यक्ति के लिए उन्होंने भाषा, शब्द-शक्तियाँ, अलंकार, छंद. गुण आदि को साधन बनाया है ।

रस

मीरा कृष्ण की प्रेमिका होने के कारण उनके पदों में श्रृंगार एवं शांत रस की प्रमुखता है । जैसे –

---

[86] आचार्य रामचन्द्र शुक्ल – हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ 179
[87] पद्मावती शब्नम (सं) – मीरा-बृहद-पद-संग्रह, पृ 58
[88] पद्मावती शब्नम (सं) – मीरा-बृहद-पद-संग्रह, पृ 194

"कैसे जिऊँ री भाई हरि बिन कैसे जिऊँ री ।।

उदक दादुर पीनवत है, जल से ही उपजाई ।।"[89]

यहाँ उन्होंने वियोग श्रृंगार का सुंदर प्रयोग किया है ।

"आवो सहेल्याँ रली कराँ हे, पर घर गवण निबारि ।

झूठा माणिक मोतिया री, झूठी जगमग जोति ।।"[90]

यहाँ संयोग श्रृंगार की सुंदर अभिव्यक्ति हुई है ।

"म्हारा सतगुर बेगा आज्यो जी,

म्हारे सुख री सीर बुवाज्यो जी ।।"[91]

इन पंक्तियों में शांत रस का आभास मिलता है ।

अलंकार

उन्होंने उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक, अर्थान्तरन्यास, अत्युक्ति, अनुप्रास, विभावना, अन्योक्ति आदि का प्रयोग किया है । अनुप्रास के लिए उदाहरण –

"जिण चरण प्रहलाद परसे, इन्द्र पदवी धरणा

जिण चरण ध्रुव अटल कीणे, राखि अपनी सरणा ।।"[92]

यहाँ अनुप्रास का सफल सुंदर प्रयोग दृष्टव्य है ।

---

[89] श्रीमती विष्णुकुमारी श्रीवास्तव 'मंजू' (सं) – मीरा पदावली, पृ 15

[90] श्रीमती विष्णुकुमारी श्रीवास्तव 'मंजू' (सं) – मीरा पदावली, पृ 8

[91] श्रीमती विष्णुकुमारी श्रीवास्तव 'मंजू' (सं) – मीरा पदावली, पृ 82

[92] श्रीमती विष्णुकुमारी श्रीवास्तव 'मंजू' (सं) – मीरा पदावली, पृ 1

"हरि बिन जिवडो क्यूँ जलै रे ज्यूँ दीपक संग बाती ।।"[93]

यहाँ उपमा का सुंदर चित्रण मिलते है ।

छंद

मीरा ने सार छंद, ताटंक छंद, विष्णु पद, सरसी छंद, दोहा आदि छंदों का प्रयोग किया है । जैसे –

"घडी एक नहिं आवड़े, तुम दरसण बिन मोय ।

तुम हो मेरे प्राण जी, कासूँ जीवण होय ।।"[94]

इसमें उन्होंने दोहा छंद का प्रयोग किया है ।

"सखी मेरी नींद नसानी हो ।

पिय को पंथ निहारत, सिगरी रैण विहानी हो ।"[95]

उपमान छंद का प्रयोग इन पदों में हुआ है ।

शब्दशक्ति

मीरा का काव्य अभिधा प्रधान है । फिर भी उनके काव्यों में यत्र-तत्र लक्षणा का प्रयोग मिलते है । अभिधा के लिए उदाहरण –

"घूघरूं बाँध मीरा नाची रे पग घूघरूं ।

लोग कहै मीरां होगई बावरी, सांस कहै कुलनासी रे ।।"[96]

---

[93] श्रीमती विष्णुकुमारी श्रीवास्तव 'मंजू' (सं) – मीरा पदावली, पृ 32

[94] श्रीमती विष्णुकुमारी श्रीवास्तव 'मंजू' (सं) – मीरा पदावली, पृ 20

[95] श्रीमती विष्णुकुमारी श्रीवास्तव 'मंजू' (सं) – मीरा पदावली, पृ 100

[96] पद्मावती शब्नम (सं) – मीरा-बृहद-पद-संग्रह, पृ 157

यहाँ अभिधा द्वारा अर्थ सीधे स्पष्ट हो जाते हैं । यहाँ अभिधा का मार्मिक एवं कलात्मक रूप देख सकते हैं ।

"पिया तेरे नाम लुभाणी हो ।

नाम लेत तिरता सुण्या, जैसे पाहण पाणी हो ।।"[97]

यहाँ 'लुभाणी' शब्द द्वारा लक्षणा शब्दशक्ति बन गयी है ।

काव्यगुण

मीरा के काव्यों में माधुर्य एवं प्रसाद गुम की प्रधानता है । फिर भी उसमें ओज गुण की कमी नहीं है । माधुर्य गुण के लिए उदाहरण –

"रंग भरी रंग भरी, रंग सूँ भरी री,

होली आई प्यारी रंग सूँ भरी री ।

उड़त गुलाल लाल भये बाहर,

पिचकारिन की लगी झरी री ।।"[98]

यहाँ आह्लाद को चित्रित किया गया है ।

प्रसाद गुण के लिए उदाहरण –

"मेरे तो गिरधर गोपाल, दूसरो न कोई ।

जाके सिर मोर मुकुट, मेरो पति सोई ।।"[99]

यहाँ प्रसाद गुण की सुंदर अभिव्यक्ति हुई है ।

---

[97] श्रीमती विष्णुकुमारी श्रीवास्तव 'मंजू' (सं) – मीरा पदावली, पृ 50

[98] पद्मावती शब्नम (सं) – मीरा-बृहद-पद-संग्रह, पृ 142

[99] पद्मावती शब्नम (सं) – मीरा-बृहद-पद-संग्रह, पृ 195

"माई म्हांरी हरी हूं न बूझी बात ।

पिंड़ मां सूँ प्राण पापी, निकसीं क्यूँ नहि जात ।।"[100]

यहां मीरा ने ओज गुण द्वारा कर्कशता या कठोरता को प्रस्तुत किया है ।

बिम्ब योजना

मीरा के पदों में बिम्ब का प्रयोग कहीं-कहीं मिलते है । उनके द्वारा प्रयुक्त बिम्ब लघु, सूक्ष्म, अनलंकृत तथा समाहृत है । जैसे –

"बिरह समद में छोड गया हो, नेह की नाव चलाय ।।"[101]

यहाँ दृश्य बिम्ब के द्वारा प्रभावोत्पादकता की सृष्टि की गई है ।

लोकोक्तियाँ और मुहावरे

मीरा के काव्यों में लोकोक्ति और मुहावरों का प्रयोग मिलते है । जैसे –

"मीरा के प्रभु गिरधर नागर, रंग दियो रंग मजीठी ।।"[102]

यहाँ 'कभी न छूटनेवाला रंग' के अर्थ में 'रंग दियो रंग मजीठी' का प्रयोग किया गया है ।

साँवरे मारया तीर (तीर मारना), आड़ी री म्हारे काँ चोड़डे डियाँ बजंता ठोड (मोल लेना, ढ़ोल बजाकर लेना), निश दिण पंथ णिहाराँ पिव रो पकड़ णा पड भर डागी (पंथ निहारना, पलक न लगाना) आदि अनेक मुहावरों का प्रयोग उनके द्वारा प्रयुक्त हुआ है ।

---

[100] पद्मावती शब्नम (सं) – मीरा-बृहद-पद-संग्रह, पृ 170

[101] पद्मावती शब्नम (सं) – मीरा-बृहद-पद-संग्रह, पृ 31

[102] श्रीमती विष्णुकुमारी श्रीवास्तव 'मंजू' (सं) – मीरा पदावली, पृ 23

निष्कर्ष - पूर्व मध्यकालीन काव्यभाषा के मूल्यांकन का मानदण्ड

युग परिवर्तित होता रहता है । युग में आनेवाले परिवर्तन, चाहे वह सामाजिक हो, सांस्कृतिक हो या धार्मिक, भाषा पर गहरा प्रभाव डालता है । जब मुस्लिम शासकों ने भारत पर कब्जा कर लिया तो भारतीय संस्कृति में समूल परिवर्तन आया । भाषा के स्तर पर यह परिवर्तन सशक्त रूप में दिखाई पड़ता है । भाषा में अरबी, फारसी, उर्दू शब्दों का प्रयोग इसीको ही द्योतित करता है ।

इस युग के कवियों ने सामाजिक उद्धार एवं परिवर्तन को ध्यान में रखकर काव्य रचना की है । इसके लिए उन्होंने एक ओर आक्रोश, विरोध, क्रांति की आवाज़ मुखरित की तो दूसरी ओर प्रेम, दया, लोकमंगल की भावना को प्रसारित करने का प्रयास किया है । इस युग में साहित्यिक भाषा जन साधारण की भाषा में बदल गई । सामाजिक वैविध्य की तरह भाषापरक वैविध्य भी इस युग में प्राप्त है । देश, काल तथा वातावरण के अनुसार भाषा में जो परिवर्तन आता है उसका स्पष्ट उदाहरण इस युग में उपलब्ध है । इस युग में भाषा के विविध रूप – सधुक्कडी, अवधी और ब्रज – अपने विकसित एवं परिवर्तित रूप में प्राप्त होते है । कबीर ने प्रतीकों एवं उलटबांसियों का समर्थ प्रयोग किया है तो जायसी ने श्रृंगार रस की समुचित योजना की है । सूरदासजी ने माधुर्य गुण युक्त काव्यों में श्रृंगार तथा वात्सल्य रसों का सुंदर प्रयोग किया है लेकिन तुलसीदासजी ने अपने भक्तिरस प्रधान पदों में मानवीकरण अलंकार

का प्रयोग किया है । मीराबाई का काव्य उसमें प्रयुक्त शब्द तथा श्रृंगार व शांत रस के कारण प्रसिद्ध है । अत: इस युग के कवियों ने अपनी रचनाओं के द्वारा ही नहीं बल्कि भाषा के बहुआयामी प्रयोग के कारण जनमानस पर प्रतिष्ठा प्राप्त की है ।

अध्याय चार
पूर्व मध्यकालीन काव्यभाषा का स्वरूप

पूर्व मध्यकाल से उत्तर मध्यकाल तक आते-आते राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक एवं साहित्यिक परिस्थितियाँ बदलने लगी । मुगल शासन धीरे-धीरे पतन की ओर बढ़ते थे । सामन्तवाद के इस युग में नैतिक मूल्यों की कमी थी । इस युग में नारी उपभोग की वस्तु बन गई । इस समय की धार्मिक अवस्था भी शोचनीय थी । मंदिरों में ऐश्वर्य और विलास की लीला होने लगी थी और उन लीलाओं में खोई हुई विलासी जीवन की खोज थी । लेकिन साहित्य एवं कला के लिए यह युग पर्याप्त समृद्ध था । साहित्यकारों को अपने आश्रयदाताओं से प्रोत्साहन तो मिला लेकिन स्वतंत्र रूप में यानी व्यक्तिगत अनुभूतियों पर काव्य रचना करने में उन्हें पाबंदी थी । फलस्वरूप इस युग की भाषाओं में आश्रयदाताओं की प्रशस्तियाँ अतिरंजित शैली में करते थे । इसके लिए कविगण, प्रमुख रूप से राजाश्रित कवि संस्कृत काव्यशास्त्र में बताये गए सौंदर्य के उपकरणों को अपनाने लगे । लेकिन जन-कवि इससे सर्वथा मुक्त थे यानी वे स्वतंत्र रूप से काव्य-रचना करते थे ।

संस्कृत के आचार्यों को तीन वर्गों में विभाजित किया जा सकता हैं – उद्भावक आचार्य (संप्रदाय प्रवर्तक), व्याख्याता आचार्य (सिद्धांतों के विशद भाष्यकार) और कविशिक्षक । सरस, सुबोध काव्यशास्त्रीय पाठ्य-ग्रन्थ प्रस्तुत करना ही कवि शिक्षक आचार्य की साधना है । आचार्य केशवदास इस कोटि में आते हैं ।

आचार्य केशव का समय भक्ति और रीतिकाल का संधियुग था । तुलसी ने 'रामचरितमानस' के द्वारा लोकधर्म की स्थापना की है । मानस के पात्रों का पारस्परिक और सामाजिक व्यवहार आदर्श तथा अनुकरणीय है । यानी इसमें उन्होंने दार्शनिक और धार्मिक सिद्धांतों का स्पष्ट निरूपण किया है । लेकिन आचार्य केशव की 'रामचन्द्रिका' में न तो कोई धार्मिक या दार्शनिक आदर्श है और न लोकशिक्षा का स्वरूप । उन्होंने भक्ति, दर्शन आदि के आदर्शों की उपेक्षा करके आचार्यत्व का प्रदर्शन इसमें किया हैं ।

4.1 रीतिबद्ध कवि आचार्य केशवदास की काव्यभाषा

आचार्य केशव के समय दो प्रकार की भाषाएँ प्रचलित थी – अवधी और ब्रज । इसमें उन्होंने ब्रजभाषा को ही काव्यभाषा के रूप में अपनाया है । इसका पहला कारण यह है कि वे बुन्देलखंड के निवासी थे और बुन्देलखंडी भाषा ब्रजभाषा से बहुत कुछ साम्य रखती हैं । यानी ब्रज, बुन्देलखंडी और खडीबोली एक ही भाषा (शौरसेनी) की विभिन्न शाखाएं हैं । दूसरा कारण यह है कि प्रचार में ब्रज सबसे अधिक व्यापक थी । अवधी की तुलना में ब्रज बहुत ही मधुर भाषा है । साथ ही विदेशी भाषाओं के शब्दों को पचाने की शक्ति तथा शब्दों को तोड-मरोडने का अवकाश अवधी से ज़्यादा ब्रज में है ।

आचार्य केशव के प्रामाणिक ग्रंथ हैं – 'रसिकप्रिया', 'नख-शिख', 'कविप्रिया', 'रामचन्द्रिका', 'वीरसिंहदेवचरित', 'रतनबावनी', 'विज्ञानगीता' और 'जहाँगीर-जस-चन्द्रिका' । इसमें उनकी काव्यशास्त्र संबंधी रचना है – 'रसिकप्रिया' । सोलह

प्रकाशों में विभक्त इस ग्रन्थ में रस, वृत्ति तथा काव्यदोषों का वर्णन है । रसों में श्रृंगार रस का सांगोपांग वर्णन है । काव्य सौंदर्य की दृष्टि से देखें तो यह ग्रन्थ उनकी समस्त रचनाओं में सर्वश्रेष्ठ है । 'रसिकप्रिया' केशव द्वारा रचित सर्वप्रथम लक्षण ग्रन्थ है । 'नख-शिख' में कवि ने नियमानुसार राधा के नखशिख वर्णन किया है । 'कविप्रिया' काव्यशिक्षा संबंधी ग्रन्थ है । इस ग्रन्थ की रचना के द्वारा ही उन्हें कविता के प्रथम आचार्य पद प्राप्त हैं । यह एक कठिन काव्य है । दण्डी के 'काव्यादर्श' को आधार बनाकर रचे गये इस ग्रन्थ में पद लालित्य उतना नहीं है जितना काव्यादर्श में है । 'वीरसिंहदेवचरित' के द्वारा उन्होंने अपना आश्रयदाता वीरसिंहदेव के चरित का गुण-गान किया है । पैंतीस प्रकाशों में विभक्त इस ग्रन्ख में वीर रस का अधिक प्रयोग हैं । यह ग्रन्थ काव्य की दृष्टि से महत्व न रखकर ऐतिहासिक दृष्टि से महत्व रखते है ।

ओरछा नरेश मधुकर शाह के पुत्र कुंवर रतनसेन की प्रशंसा में लिखा गया ग्रन्थ है – 'रतनबावनी' । इस ग्रन्थ में राजपूताने की डिंगल कविता की शैली और चारण कवियों के समान छप्पय छंदों का विशेष प्रयोग हैं । साथ ही बहुत ही ओजपीर्ण रचना है । दार्शनिक विषय संबंधी रचना है – 'विज्ञानगीता' । इसमें उनके दार्शनिक विचार और तत्कालीन सामाजिक स्थिति की जानकारी मिलती है । केशव की अधिकांश रचनाएं संस्कृत ग्रन्थों के आधार पर रची गई है । संस्कृत नाटक 'प्रबोध चन्द्रोदय' के आधार पर रची हुई रचना है 'विज्ञानगीता' । केशव ने संस्कृत पदावली की श्लेष और श्लेषानुप्राणित अलंकारों

का प्रयोग किया है और वे इसके विशेष प्रेमी है । उद्यम और भाग्य के कथोपकथन को लेकर लिखी गयी रचना है – 'जहाँगीर-जस-चन्द्रिका' । यह एक प्रशस्ति काव्य है ।

'रामचन्द्रिका' उनका महाकाव्य है और इसमें पांडित्य प्रदर्शन का पुट भी मिलता है । चमत्कार प्रदर्शन इसका लक्ष्य रहा है । इसमें संस्कृत महाकाव्य, वर्णवृत्त आदि का प्रयोग किया गया है ।

कवि जो कुछ कहना चाहता है और भाव-विशेष के स्पष्टीकरण में, उसकी गंभीरता एवं अभीष्ट प्रभाव सुरक्षित रखने के लिए संयमित शब्दों का प्रयोग किया है । इस प्रकार संकेत मात्र देकर भाव-विशेष का स्पष्टीकरण पाठक पर छोडने का कार्य केशव ने भी किया है । जैसे –

"राम चलत नृप के जुग लोचन । बारि भरित भए बारिद-रोचन ।
पाइन परि रिषि के सजि मौनहिँ । 'केसव' उठि गए भीतर भौनहिँ ।।"[1]

यहाँ दशरथ के पुत्र-वियोग की पीडा को रेखांकित किया गया हैं ।

रस

केशव ने अपने काव्यों में संयोग श्रृंगार का सुंदर एवं विस्तृत वर्णन किया है । इसके द्वारा उन्होंने सौंदर्य-वर्णन, रूप-वर्णन, हाव-भाव वर्णन, अष्टयाम, उपवन, जलाशय, क्रीड़ा-विलास आदि का विस्तृत वर्णन किया है । जैसे –

[1] श्री विश्वनाथ प्रसाद मिश्र (सं) – कबीर ग्रन्थावली, पृ 237

"जब जब धरि बीना प्रकट प्रबीना बहु गुनलीना सुखसीता ।

पिय जियहि रिझावै दुखनि भजावै बिबिध बजावै गुनगीता ।

तजि मतिसंसारी बिपिनबिहारी सुखदुखकारी घिरि आवैं ।

तबतब जगभूषन रिपुकुलदूषन सबकौं भूषन पहिरावैं ।।"[2]

यह सीता-राम के वनवास प्रसंग है । यहाँ संयोग श्रृंगार का मर्यादापूर्ण चित्र प्रस्तुत किया गया हैं ।

अन्य कवियों की तरह केशव ने भी विरह के प्रसिद्ध उद्दीपकों, परंपरित वर्णन-परिपाटियों तथा शैलियों के द्वारा विरह वर्णन किया है । उदाहरण के लिए –

"हिमांसु सूर सो लगै सो बात ब्रज सो बहै ।

दिसा लगै कृसानु ज्यौं बिलोप अंग को दहै ।

बिसेष कालराति सी कराल राति मानिये ।

बियोग सीय को न, काल लोकहार जानिये ।।"[3]

यहाँ सीता के वियोग में चन्द्रमा की शीतल किरणें किस प्रकार राम के हृदय को दग्ध करती है उसका सुंदर वर्णन है ।

---

[2] " " - " " , पृ. 285

[3] श्री विश्वनाथ प्रसाद मिश्र (सं) – केशव ग्रन्थावली, पृ 291

उन्होंने प्रमुख रूप में श्रृंगार एवं वीर रस का प्रयोग किया है । अलंकारों के प्रति अत्यधिक मोहित होने के कारण भाव, प्रसंग और रस-परिपाक की ओर ध्यान नहीं दिया है ।

"भगन भयो हर धनुष साल तुमकौं अब सालौ ।
बृथा होइ बिधि-सृष्टि ईस आसन तैं चालौं ।
सकल लोक संघरै सेष सिर तैं घर डारौ ।
सप्त सिंधु मिलि जाहिँ होइ सब ही तम भारै ।।"[4]

परशुराम द्वारा गुरु निंदा सुनकर शांतशील राम को क्रोध हुआ और वह परशुराम के ललकारता है । इसका उन्होंने रौद्र रस द्वारा सफल ढंग से चित्र किया है ।

इस प्रकार केशव के काव्य में रस का सरस प्रयोग देख सकते है ।

अलंकार

'रामचन्द्रिका' में उपमा, श्लेष, विरोधाभास, परिसंख्या आदि अलंकारों का प्रयोग पर्याप्त मात्रा में दृष्टिगत होते है । केशव ने पांडित्य प्रदर्शित करने के उद्देश्य से अलंकारों का प्रयोग किया हैं । उनके द्वारा प्रयुक्त अलंकारों को दो वर्गों में विभक्त कर सकते हैं – चमत्कार प्रधान अलंकार और भावानुगामिनी अलंकार योजना । चमत्कार प्रधान अलंकार के अंतर्गत यमक, श्लेष आदि अलंकार आते हैं । श्लेषालंकार के लिए उदाहरण –

[4] श्री विश्वनाथ प्रसाद मिश्र (सं) – केशव ग्रन्थावली, पृ 268

"भौंहैं सुरचाप चारु प्रमुदित पयोधर, भूषन जराइ जोति तडित रलाई है ।
दूरि करि सुखमुख सुषमा ससी की नैन अमल कमलदल दलितनिकाई है ।।
'केसोदास' प्रबलकरेनुकागमनहर मुकुत-सुहंसक-सबद सुबदाई है ।
अंबर बलित मति मौहै नीलकंठजू की कालिक कि बरषा हरषि हिय आई है ।।"[5]

इसमें प्रमुख रूप से श्लेषालंकार है और इसके आधार पर अन्य अलंकार भी सिद्ध होते है । अर्थात् इसकी प्रथम तीन पंक्तियों में रूपक, श्लिष्ट-अश्लिष्ट, प्रतीत, हेतूत्प्रेक्षा है । इन सबके द्वारा संदेह की सिद्धि होती हैं ।

इसके अलावा उन्होंने मौलिक कल्पना को अलंकारों से सुसज्जित करके प्रस्तुत किए है । जैसे –

"भृकुटि कुटिल बहु भायन भरी । भाल लाल दुति दीसत खरी ।
मृगमद तिलक रेख जुग बानी । तिनकी सोभा सोभति घनी ।
जनु जमुना खेलति सुभगाथ । परसन पितहि पसारे हाथ ।।"[6]

यहाँ उत्प्रेक्षा द्वारा सीता की दासियों के भाल पर लगी, भृकुटियों के मध्य तिलक-रेखा पर क्रीडा करती हुई यमुना और सूर्य की ओर बढ़े हुए उनके हाथ की कल्पना की हैं ।

---

[5] श्री विश्वनाथ प्रसाद मिश्र (सं) – केशव ग्रन्थावली, पृ 296
[6] श्री विश्वनाथ प्रसाद मिश्र (सं) – केशव ग्रन्थावली, पृ 383

आचार्य केशव के अलंकार निरूपण संबंधी धारणाएं 'कविप्रिया' में मिलते हैं –

"अलंकार कवितानि को सुनि सुनि बिबिध बिचार
कविप्रिया 'केसव' करी कविता को सिंगार ।"[7]

यहाँ उन्होंने इस बात को व्यक्त किया है कि कविता में अलंकार का प्रमुख स्थान है ।

काव्य के सभी वर्ण्य विषय और शास्त्र के सभी उपादेय अंग और भावादि, काव्य के अंतरंग उपकरण आदि को उन्होंने अलंकार के अंतर्गत माना है ।

केशव की अलंकार संबंधी मान्यताएं इस प्रकार हैं –

1) उनके अनुसार अलंकार और अलंकार्य में भेद नहीं है । यानी वर्ण, वर्ण्य, भूश्री, राज्श्री आदि उनकी नज़र में अलंकार है न कि अलंकार्य । विशिष्ट अलंकारों में रसमूलक वर्ण्य को और सामान्य अलंकारों में विवरणमूलक वर्णन विधि को रखा है ।
2) अलंकार के अंतर्गत काव्य के सभी सौंदर्य-विधायक उपकरण (परंपरामूलक और शास्त्रीय उपकरण) आते है ।

छंद

रामकथा संबंधी इस ग्रंथ में छंदों का जितना प्रयोग है अन्यत्र नहीं । उपदेशों के आधिक्य होने के कारण इसके काव्यत्व को क्षति पहूँची है । उन्होंने

[7] श्री विश्वनाथ प्रसाद मिश्र (सं) – केशव ग्रन्थावली, पृ 22

एक सर्ग में एक ही छंद के प्रयोग किया है । किन्तु 'रामचन्द्रिका' में छंदों के शीघ्र परिवर्तन से एकरसता का अभाव है ।

केशव ने अपनी प्रतिभा द्वारा छंद की गति और भाव की गति में सामंजस्य उपस्थित किया है । उन्होंने द्रुतगति के चित्रण के लिए चंचला जैसे लघु छंदों का प्रयोग किया है तो ठिठकती हुई गति सूचित करने के लिए त्रिभंगी छंद, वीर-रौद्र रसों की व्यंजना के लिए छप्पय छंद का प्रयोग किया है ।

'रामचन्द्रिका' में वर्णिक और मात्रिक छंदों का प्रयोग किया गया हैं । मात्रिक छंदों में दोहा, रोला, धत्ता, छप्पय, प्रज्झटिका, अरिल, पादाकुल आदि का प्रयोग किया गया हैं तो श्री, सार, दंडक, तरणिजा, सोमराजी, कुमारललिता, नगस्वरूपिणी, हंस आदि वर्णिक छंदों का भी प्रयोग मिलते है ।

उनके द्वारा प्रयुक्त चौपाई छंद के लिए उदाहरण कैं –

"निकट बिभीषन आइ तुलाने । कपिपति सौं तबहीं गुदराने ।
रघुपति सौं तिन जाइ सुनायो । दसमुख-सोदर सेवहिँ आयो ।।"[8]

चौपाई के द्वारा उन्होंने यहाँ विभीषन के आगमन को सूचित किया है ।

छंद की विविधता काव्य सौंदर्य बढ़ाने में सहायक निकले है । 'रामचन्द्रिका' में नवीन मौलिक छंदों का प्रयोग देख सकते है । इस ग्रंथ में चौबोला और चौपाई का मिश्रित रूप उन्होंने प्रस्तुत किया हैं और कहीं चौबोला के दो चरण पहले प्रयुक्त हुए हैं तो कहीं चौपाई के । जैसे –

[8] श्री विश्वनाथ प्रसाद मिश्र (सं) – केशव ग्रन्थावली, पृ 310

"सोदर मंत्रिन के जु चरित्र । इनके हमपै सुनि मखमित्र ।

इनहीँ लगे राज को काज । इनही तेँ सब होत अकाज ।"[9]

यहाँ प्रथम दो चरण चौबोला के हैं ।

इस प्रकार छंदों के बहुमुखी प्रयोग से 'रामचन्द्रिका' भरा हुआ है और 'रामचन्द्रिका' को आस्वाद्य बनाने में छंदों का महत्वपूर्ण स्थान है ।

शब्द

केशव संस्कृत के पंडित होने के कारण उनकी रचनाओं में संस्कृत तत्सम शब्दों का बहुल प्रयोग हुआ हैं । क्योंकि इस ग्रंथ की रचना पाण्डित्य-प्रदर्शन की प्रेरणा से हुई

थी । 'रामचन्द्रिका' के दो-एक छंद की भाषा तो अधिकांश संस्कृत ही हैं, यथा –

"रामचन्द्रपदपद्यं वृन्दारकवृन्दाभिवंदनीयम् ।

केशवमतिभूतनयालोचनं चंचरिकायते ।।"[10]

यहाँ संस्कृत शब्दों का बहुल प्रयोग हम देख सकते हैं ।

संस्कृत के अलावा बुन्देलखंडी शब्दों का प्रयोग भी उनके ग्रन्थों में मिलते है । उन्होंने मुख्य रूप से स्यों, समदो, बोक, गौरमदाइन, आनिबी, जानिबी, कोद आदि बुन्देलखंडी शब्दों का प्रयोग किया है । उनकी भाषा में

[9] श्री विश्वनाथ प्रसाद मिश्र (सं) – केशव ग्रन्थावली, पृ 351

[10] श्री विश्वनाथ प्रसाद मिश्र (सं) – केशव ग्रन्थावली, पृ 230

बुन्देलखंडी का बहुल प्रयोग होने के कारण 'बुन्देलखंडी मिश्रित ब्रजभाषा' कहना अधिक उपयुक्त होगा ।

सूर, तुलसी जैसे कवियों की तरह अन्त्यानुप्रास अथवा मात्रा-पूर्ति के लिए कभी-कभी शब्दों को परिवर्तित करने का कार्य केशवजी ने किया हैं । लेकिन उन्होंने इस अधिकार का उपयोग करते हुए कुछ स्थलों पर शब्दों का इस प्रकार रूपांतर किया है कि वह दूसरा शब्द ही प्रतीत होता है । यह दोष बहुत ही कम स्थलों पर हैं । उन्होंने 'साधु' के स्थान पर 'साध', 'लांजक' के स्थान पर 'लायक', 'परवाह' के लिए 'प्रवाह', 'समय' के बदले 'माइ', 'वेश्या' के स्थान पर 'विश्धा' शब्दों का प्रयोग किया है ।

शब्दशक्ति

केशवजी ने अभिधा, व्यंजना एवं लक्षणा शब्द शक्ति के द्वारा अपने काव्य को समर्थ बनाया है । उनके द्वारा अपने काव्य को समर्थ बनाया है । उनके द्वारा प्रयुक्त अभिधा के लिए उदाहरण –

"राजपुत्रिकनि स्यों छबि छाए । राजराज सब डेरहि आए ।
हीर चीर गज बाजि लुटाए । सुंदरनि बहु मंगल गाए ।"[11]

यहाँ राम और सीता के विवाह को वर्णित किया गया है ।

लक्षणा शब्दशक्ति के लिए उदाहरण –

[11] श्री विश्वनाथ प्रसाद मिश्र (सं) – केशव ग्रन्थावली, पृ 254

"ज्यौं मनि मैं अति जोति हुती रबि तें कछु और महाछबि छाई ।

चंदहि बंदत हैं सब 'केसव' ईस तें बंदनता अति पाई ।"[12]

यहाँ सूर्य किरणों से प्रज्वलित मणि और शिव के मस्तक पर विराजने से पूज्य बने चन्द्रमा के द्वारा सीता की कुल महिमा को द्योतित किया गया है ।

व्यंजना शब्दशक्ति के लिए उदाहरण –

"अति बदन सोभ सरसी सुरंग । तहँ कमल नयन नासा तरंग ।

जग जुवति-चित्त बिभ्रम-बिलास । तेइ भँवर भँवत रस-रूप-आस ।।"[13]

यहाँ राम के मुख की शोभा को व्यंजित किया गया है ।

इस प्रकार उनके काव्यों में तीनों शब्द शक्तियों का समुचित प्रयोग देख सकते हैं ।

काव्यगुण

'रामचन्द्रिका' में माधुर्य, प्रसाद और ओज गुण का प्रसंगानुकूल प्रयोग हुआ है । इसमें प्रमुख रूप से ओज गुण देख सकते हैं । अन्य स्थलों पर प्रसाद गुण की प्रमुखता है । माधुर्य गुण के लिए उदाहरण है –

"जाके भरोसें बिराम करैं ससि सूरज से पुन देखियै तैसौ ।

जानि यहै हरपुत्रनि 'केसव' ब्याहै तजे सहि काम-कलैसौ ।।

सुपूत के होत सुपूत बिरच्यौ इमि होइ सुपूत सपूत के ऐसौ ।

[12] श्री विश्वनाथ प्रसाद मिश्र (सं) – केशव ग्रन्थावली, पृ 256

[13] श्री विश्वनाथ प्रसाद मिश्र (सं) – केशव ग्रन्थावली, पृ 259

बैरमखान के खानखानाजू हैँ खानखानाजू के एलाच जैसो ।। "[14]

यहाँ भावों की सुंदर अभिव्यक्ति के लिए माधुर्य गुण का प्रयोग किया गया है ।

प्रसाद गुण के लिए उदाहरण –

"को है दमयंती इंदुमती रति रातिदिन,

होहिँ न छबीली छिनछबि जौ सिँगारिये ।

'केसव' लजात जलजात जातबेद ओप,

जातरूप बापुरो बिरूप सो निहारिये ।।"[15]

यहाँ सीताजी के सौंदर्य को वर्णित किया गया हैं ।

ओज गुण के लिए उदाहरण –

"भौरव से भट भूरि भिरे बल खेत खरे करतार करे कै ।

भारे भिरे रन-भूधर भूप न टारे टरे इभ-कोट अरे कै ।"[16]

यहाँ कर्णकटु अक्षरों के द्वारा उन्होंने युद्ध की उग्रता को चित्रित किया है ।

इस प्रकार 'रामचन्द्रिका' ओज गुण प्रधान काव्य होने पर भी माधुर्य एवं प्रसाद गुण का भी प्रयोग इसमें सफल ढंग से किया गया है ।

---

[14] श्री विश्वनाथ प्रसाद मिश्र (सं) – केशव ग्रन्थावली, पृ 617

[15] श्री विश्वनाथ प्रसाद मिश्र (सं) – केशव ग्रन्थावली, पृ 260

[16] श्री विश्वनाथ प्रसाद मिश्र (सं) – केशव ग्रन्थावली, पृ 412

प्रतीक योजना

केशवजी ने प्रतीकों का कम प्रयोग किया हैं । 'रामचन्द्रिका' में कहीं – कहीं प्रतीकों का प्रयोग देख सकते हैं । जैसे –

"कालसर्प के कवल तेँ, छोरत जिनको नाम ।

बँधे ते ब्राह्मन – बचनबस, माया-सर्पहि राम ।।"[17]

यहाँ 'कालसर्प' मृत्यु का प्रतीक है ।

काव्यदोष

केशवजी के काव्य पाण्डित्य प्रदर्शन के उद्देश्य से रचा गया काव्य है । अत: इसमें दोषों का आना स्वाभाविक है । 'रामचन्द्रिका' में प्रमुख रूप से च्युत संस्कृत दोष, अश्लीलत्व जैसे पददोषों (शब्द दोष) को देख सकते हैं तो कहीं वाक्य दोष भी हैं जैसे न्यूनपदत्व, अक्रमत्व आदि । संदिग्धत्व जैसे अर्थ दोष भी हम देख सकते हैं ।

लोकोक्तियाँ और मुहावरे

उनके काव्य में मुहावरों का सुंदर प्रयोग देखने को मिलते हैं । मुहावरे के लिए उदाहरण है –

"बासर चौथे जाम, सतानंद आगेँ दए ।

दसरथ नृप के धाम, आए सकल बिदेह बनि ।"[18]

---

[17] श्री विश्वनाथ प्रसाद मिश्र (सं) – केशव ग्रन्थावली, पृ 320

[18] श्री विश्वनाथ प्रसाद मिश्र (सं) – केशव ग्रन्थावली, पृ 254

यहाँ 'बिदेह बनि' का अर्थ 'सजधज कर आना' हैं जिसके द्वारा अयोध्यावासियों के आह्लाद को व्यंजित किया गया है ।

"बीसबिसे ब्रतभंग भयो सु कहौ अब 'केसव' को धनु ताने ।"[19]

यहाँ 'बीसबिसे' का अर्थ 'निश्चय ही' है ।

संवाद योजना

केशवजी की सबसे प्रसिद्ध पुस्तक 'रामचन्द्रिका' में राम कथा का विस्तृत वर्णन हैं । इसका स्वरूप प्रबन्ध काव्य - सा होने पर भी कथा का प्रवाह प्रबन्ध काव्य के अनुरूप नहीं हैं । केशवजी दरबारी कवि होने के कारण इसमें राजसी ठाटबाट, राजनीतिक कूटनीति का सुंदर वर्णन हैं ।

केशवजी की 'रामचन्द्रिका' में संवादों का आधिक्य हैं । अत: शिल्प की दृष्टि से देखें तो कहा जा सकता है कि यह काव्य नाटकीय तत्वों से अनुप्राणित है । संस्कृत आचार्यों द्वारा रचित महाकाव्यों में भी संवाद को महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त हैं । केशव कृत 'रामचन्द्रिका' भी इसी परंपरा में आती हैं । चरित्र-चित्रण की दृष्टि से संवादों की योजना का महत्व हैं । चरित्र -चित्रण की दो प्रणालियाँ हैं – 1) स्वयं कवि द्वारा चरित्र – विवरण या परिचय 2) कवि द्वारा स्वयं मौन रहकर चरित्रों को पाठकों के समक्ष लाना । इसे संवाद-पद्धति कहते हैं । चरित्रों के संवादों द्वारा पाठक उनकी विशेषताओं, शील-व्यवहार आदि से अवगत हो जाते हैं ।

[19] श्री विश्वनाथ प्रसाद मिश्र (सं) – केशव ग्रन्थावली, पृ 249

सजीव और फडकते हुए संवादों से 'रामचन्द्रिका' अधिक सुंदर बन गयी हैं । 'रामचन्द्रिका' के प्रमुख संवाद ये हैं – 1) रावण – बाणासुर संवाद 2) राम – परशुराम संवाद 3) परशुराम – वामदेव संवाद 4) कैकेयी – भरत संवाद 5) रावण – हनुमान संवाद 6) रावण – अंगद संवाद 7) सीता – रावण संवाद 8) लव – कुश – विभीषण संवाद ।

उदाहरण के लिए –

"राम – सो अपराध परो हमसौं अब क्यौं सुधरै तुम ही धौं कहौ ।

परशुराम – बाहु दै दोऊ कुठारहि 'केसव' आपने धाम को पंथ गहौ ।"[20]

यहाँ परशुराम – राम संवाद को सुंदर ढंग से प्रस्तुत किया गया हैं ।

4.2 रीतिबद्ध कवि मतिराम की काव्यभाषा

रीतिकालीन कवियों में मतिराम का स्थान उल्लेखनीय है । मतिराम द्वारा रचित प्रमुख ग्रंथ है – 'रसराज', 'ललित ललाम', 'अलंकार पंचशिका', 'फूलमंजरी', 'छंदसार', 'मतिराम सत्सई', 'साहित्यसार', 'लक्षणश्रृंगार' आदि । बादशाँह जहाँगीर की प्रेरणा एवं आज्ञा से लिखा गया एक छोटा ग्रंथ है – 'फूलमंजरी', जिसमें साठ दोहे हैं । यह उनकी प्रारंभिक रचना होने के कारण इसमें भावों की तीव्रता तथा कसावट का अभाव है । 'फूलमंजरी' में देश-विदेश

[20] श्री विश्वनाथ प्रसाद मिश्र (सं) – केशव ग्रन्थावली, पृ 265

के फूलों का वर्णन हुआ है । पुष्पों की वर्णना होने के कारण इसका नाम 'फूलमंजरी' पडा । इसमें पुष्पों का वर्णन प्रणय प्रसंगों को लेकर आया है । बूँदी नरेश राव भाऊसिंह के लिए लिखी गयी 'ललित ललाम' अलंकार शास्त्र पर लिखी उनकी एक प्रौढ़ रचना है । 'अलंकार पंचशिका' में अलंकारों का वर्णन मिलता है । 'छंद संग्रह' का दूसरा नाम है 'वृत्त कौमुदी' । 'रसराज' नायिका भेद तथा श्रृंगार रस निरूपण के लिए प्रसिद्ध है । केशव और बिहारी की रचनाओं के बाद मतिराम कृत 'रसराज' को ही सर्वाधिक ख्याति और लोकप्रियता प्राप्त हुई है ।

हिन्दी साहित्य में ब्रजभाषा की धाक जमा कराने में मतिराम का बडा हाथ हैं । उनकी भाषा साहित्यिक ब्रजभाषा है । सीधे-सादे शब्दों में कूट-कूटकर रस भर देने की क्षमता उनमें है । उनकी रचना में प्रवाह के साथ – साथ ओज भी उपलब्ध है । इनके कबित्त व सवैये बहुत ही सुंदर है तो उनके दोहों में बिहारी की सी मधुरता प्राप्त है । आचार्य शुक्लजी ने उनकी भाषा के संबंध में यों कहा है – "मतिराम की रचना की सबसे बडी विशेषता यह है कि उसकी सरलता अत्यंत स्वाभाविक है, न तो उसमें भावों की कृत्रिमता है, न भाषा की । भाषा शब्दाडंबर से सर्वथा मुक्त है । - - - रीतिग्रंथवाले कवियों में इस प्रकार की स्वच्छ, चलती और स्वाभाविक भाषा कम कवियों में मिलती है ।"[21] इससे

[21] आचार्य रामचन्द्र शुक्ल – हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ 243 - 244

यह बात सिद्ध होती है कि सरलता तथा स्वाभाविकता उनकी काव्य-विशेषताएँ ही है ।

रस

मतिराम की रचनाओं में वीर रस तथा श्रृंगार रस का सुंदर रूप हम देख सकते है । रस का सुंदर परिपाक उनके काव्यों में हुआ है । श्रृंगार रस के लिए उदाहरण –

"मान कियो सपने में सुहागिनि भौहैं चढ़ी 'मतिराम' रिसौहैं ।
बातैं बनाय मनाय लई मनभावन कंठ लगाय हसौहैं ।।
एते अचानक जागि परी सुख ते अँगिरत उठी अलसौहैं ।
लालन के लखि लोचन लाज ते होत न बाल के लोचन सौहैं ।।"[22]

यहाँ नायक-नायिका की श्रृंगार–चेष्टाओं को वर्णित किया गया है जहाँ श्रृंगार रस सर्वत्र व्याप्त हैं ।

वीर रस के लिए उदाहरण –

"मंदर बिलंद मंद गति के चलैया एक
पल में दलैया पर दल बलखनि के ।
मदजल झरत झुकत जरकस झूल
झालरिनि झलकत झुंड मुकतानि के ।"[23]

[22] स्व.कृष्णबिहारी मिश्र और स्व.ब्रजकिशोर मिश्र – मतिराम ग्रंथावली, पृ 313
[23] स्व.कृष्णबिहारी मिश्र और स्व.ब्रजकिशोर मिश्र – मतिराम ग्रंथावली, पृ 325

यहाँ युद्धरत हाथियों का चित्रण किया गया है ।

अलंकार

मतिराम की रचनाओं में अलंकारों की कमी नहीं है । उन्होंने शब्दालंकारों का सुंदर प्रयोग किया है । जैसे –

"बाल रही झकटक निरखि ललित लालमुखइंदु ।

रीझ भार अखियाँ थकीं झलके श्रमजलबिंदु ।।"[24]

'लाल के ललित मुखचंद्र' को अनुरागासक्ति के कारण बेसुध होकर देखने की वजह से नायिका की आँखें थक गई और स्वेद कण प्रकट होने लगे । यहाँ कवि गुप्तोत्प्रेक्षा अलंकार द्वारा नायिका का भावभास्वर रूप प्रस्तुत किया गया है । रूपक अलंकार के लिए उदाहरण –

"बिप्रनि के मंदिरन तजि करत ताप सब ठौर ।

भावसिंह भूपाल को तेज तरनि यह और ।।"[25]

यहाँ 'भावसिंह' शब्द द्वारा रूपकालंकार की सृष्टि की है ।

इसके अलावा उन्होंने उपमा, उल्लेख आदि अलंकारों का प्रयोग भी किया है ।

[24] स्व.कृष्णबिहारी मिश्र और स्व.ब्रजकिशोर मिश्र – मतिराम ग्रंथावली, पृ 318

[25] स्व.कृष्णबिहारी मिश्र और स्व.ब्रजकिशोर मिश्र – मतिराम ग्रंथावली, पृ 311

छंद

मतिराम ने प्रमुख रूप से दोहा, सवैया और कवित्त छंदों का प्रयोग किया है ।

जैसे –

"ज्यों ज्यों परसत लाल तन त्यों त्यों राखै गोय ।

नवल बधू डर लाज तें इंद्रबधू सी होय ।।"[26]

यहाँ उन्होंने दोहा छंद द्वारा भावाभिव्यक्ति की हैं ।

सवैया के लिए उदाहरण –

"राति कहूँ रमिकै मनभावन आवन प्राप्त प्रियाघर कीनो ।

देखत ही मुसकाय उठी चली आगे ह्वै आदर कै पुनि लीनो ।।"[27]

यहाँ प्रिय मिलन को व्यंजित करने के लिए उन्होंने सवैये का प्रयोग किया है ।

"तुम कहा करो कान काम तें अटकि रहे

तुमकों न दोस सो तो आपनोई भाग है ।।"[28]

यहाँ उन्होंने भाव को अभिव्यक्त करने के लिए कवित्त का प्रयोग किया हैं ।

मतिराम ने अपने काव्यों में छंदों का अत्यंत परिमित प्रयोग किया हैं । उनके काव्यों में सवैया, कवित्त और दोहा प्रमुख रूप में देखने को मिलते है तो छप्पय तथा सोरठे का प्रयोग कहीं – कहीं देख सकते हैं । उन्होंने श्रृंगारपरक,

---

[26] स्व.कृष्णबिहारी मिश्र और स्व.ब्रजकिशोर मिश्र – मतिराम ग्रंथावली, पृ 206

[27] स्व.कृष्णबिहारी मिश्र और स्व.ब्रजकिशोर मिश्र – मतिराम ग्रंथावली, पृ 243

[28] स्व.कृष्णबिहारी मिश्र और स्व.ब्रजकिशोर मिश्र – मतिराम ग्रंथावली, पृ 208

मधुर, कोमल, सुकुमार भावों एवं चित्रों के अंकन के लिए सवैया का प्रयोग किया है तो कवित्त का प्रयोग उग्र, दीप्त एवं ओजपूर्ण भावाभिव्यंजन के लिए किया है ।

शब्दशक्ति

मतिराम के काव्य अभिधा प्रधान हैं । अत: भाव संप्रेषण में कोई कठिनाई नहीं दिखता । जैसे –

"जा दिन तें चलिबे की चरचा चलाई तुम
ता दिन तें वाके पियराई तन छाई है ।
कहै मतिराम छोडे भूषन बसन पान
सखिन सों खेलनि हँसनि बिसराई है ।।"[29]

यहाँ पति के परदेश जाने पर नायिका की दशा को चित्रित किया गया है ।

काव्यगुण

मतिराम के काव्यों में काव्य गुण – प्रसाद, माधुर्य और ओज – की कमी नहीं हैं ।

प्रसाद गुण –

"केलि कै राति अघाने नहीं दिन ही में लला पुनि घात लगाई ।
प्यास लगी कोठ पानी दै जाइयो भीतर बैठिकै बात सुनाई ।
जेठी पठाई गई दुलही हँसि हेरि हरे मतिराम बुलाई ।

[29] स्व.कृष्णबिहारी मिश्र और स्व.ब्रजकिशोर मिश्र – मतिराम ग्रंथावली, पृ 248

कान्ह के बोल में कान न दीनो सु गेह की दोहरी पै घरि आई ।।"[30]

यहाँ नायक-नायिका के प्रेम के प्रस्फुटन को प्रसाद गुण के माध्यम से अभिव्यक्त किया है ।

माधुर्य गुण–

"दूसरे की बात सुनि परत न ऐसी जहाँ
कोकिल कपोतन की घुनि सरसति है ।
छाई रहे जहाँ द्रुम बेलिन सों मिलि
मतिराम अलिकुलन अँध्यारी अधिकाति है ।।"[31]

यहाँ नायक की वचन चतुरता के द्वारा निर्जन स्थान पर नायिका के मिलने की इच्छा व्यंजित है ।

ओज गुण –

"मंदर बिलंद मंद गति के चलैया एक
पल में दलैया पर दल बलखानि के ।
मदजल झरत झुकत जरकस झूल
झालरिनि झलकत झुंड मुकतानि के ।।"[32]

यहां युद्धरत वीरों का ओजमय चित्रण किया गया है ।

---

[30] स्व.कृष्णबिहारी मिश्र और स्व.ब्रजकिशोर मिश्र – मतिराम ग्रंथावली, पृ 206
[31] स्व.कृष्णबिहारी मिश्र और स्व.ब्रजकिशोर मिश्र – मतिराम ग्रंथावली, पृ 262
[32] स्व.कृष्णबिहारी मिश्र और स्व.ब्रजकिशोर मिश्र – मतिराम ग्रंथावली, पृ 323

इस प्रकार मतिराम ने माधुर्य, प्रसाद एवं ओज गुणों का प्रयोग किया है फिर भी उनमें प्रसाद गुण की प्रमुखता देख सकते हैं ।

लोकोक्तियाँ और मुहावरे

मतिराम ने लोकोक्तियों का प्रयोग कहीं – कहीं किया है । जैसे –

"यों मतिराम बढ्यो हिय में सुख बाल के बालम सों दृग जोरैं ।

जैसे मिहीं पट में चटकीलो चढै रंग तीसरी बार के बोरै ।।"[33]

यहाँ प्रयुक्त 'चढै रंग तीसरी बार के बोरै' से तात्पर्य यह है कि तीन बार डुबोने से रंग अच्छा चढता है । यह लोकोक्ति का ही रूप है ।

4.3 रीतिमुक्त कवि बिहारी की काव्यभाषा

रीतिकाल के सर्वाधिक ख्याति प्राप्त प्रतिनिधि कवि हैं – बिहारी । उनकी इस लोकप्रियता का कारण उनके द्वारा रचित 'बिहारी सतसई' है । रीतिकालीन काव्य अपनी श्रृंगारपरक प्रवृत्ति के कारण प्रसिद्ध है । लेकिन बिहारी के दोहे में शब्द चमत्कार एवं भाव वैचित्र्य समाहित है इसी कारण उनकी प्रसिद्धि हुई है ।

बिहारी के संबंध में आचार्य रामचन्द्र शुक्लजी ने कहा है कि – "जिस कवि में कल्पना की समाहारशक्ति के साथ भाषा की समासशक्ति जितनी ही अधिक होगी उतना ही वह मुक्तक की रचना में सफल होगा । यह क्षमता बिहारी में पूर्णरूप से वर्तमान थी ।"[34] हिन्दी साहित्य में बिहारी के काव्य जिस

[33] स्व.कृष्णबिहारी मिश्र और स्व.ब्रजकिशोर मिश्र – मतिराम ग्रंथावली, पृ 251

[34] आचार्य रामचन्द्र शुक्ल – हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ 239

उच्चतम स्थान को प्राप्त कर चुका है उसका स्पष्ट उल्लेख आचार्य शुक्लजी के इस कथन से प्राप्त है । बिहारी ने जिस तगह के काव्य प्रयोग अपनाए हैं वह उनके परवर्ती और पूर्ववर्ती काव्यों में उपलब्ध नहीं है ।

बिहारी द्वारा प्रयुक्त भाषा शुद्ध ब्रज नहीं हैं । उसमें पूर्वी, बुन्देलखंडी, खडीबोली और फारसी – अरबी शब्दों का प्रचुर प्रयोग हैं । भाव और विषय के अनुरूप भाषा को गढकर उन्होंने काव्य में स्वाभाविकता लाया है । ब्रजभाषा संस्कृत की भाँति समास बहुला भाषा नहीं है । कुछ कवियों द्वारा ब्रजभाषा में समासों का बहुल प्रयोग करने के कारण उनकी भाषा में स्वाभाविक सौंदर्य न आ पाया । लेकिन बिहारी ने सामासिक पदावली द्वारा दोहे जैसे लघु छंद में भावाधिक्य लाया हैं ।

बिहारी की भाषा शुद्ध साहित्यिक ब्रज है । उनकी भाषा व्याकरण से गढी हुई है साथ ही मुहावरों के प्रयोग, सांकेतिक शब्दावली तथा सुष्ठु पदावली से संयुक्त है । विषयानुकूल बदलनेवाली उनकी भाषा प्रौढ़ तथा प्रांजल हैं । बिहारी की सुगठित एवं परिनिष्ठित भाषा के संबंध में डॉ. रामसागर त्रिपाठी ने यों कहा हैं – "बिहारी ने भी प्रथम बार भाषा में एकरूपता लाने की चेष्टा की और इसका प्रभाव परवर्ती काव्य जगत पर पड़ा, जिससे बाद के कवि घनानंद इत्यादि अधिक परिष्कृत भाषा लिखने में समर्थ हो सके । यही बिहारी की भाषा

विषयक सफलता है ।"[35] बिहारी की भाषा सशक्त, प्रांजल तथा अर्थगर्भ होने के कारण दोहे में दोष ढूँढना व्यर्थ है । उनके दोहे छंदशास्त्रों से कसे हुए हैं ।

बिहारी की भाषा की मुख्य विशेषता है – भाषा की समस्तता एवं कल्पना की समाहारपूर्णता । उन्होंने कम शब्दों में अधिक तथ्य को प्रस्तुत किया हैं । जैसे –

"समरस समर सकोच बस बिबस न ठिक ठहराइ ।
फिरि फिरि उझकति, फिरि दुरति, दुरि दुरि उझकति आइ ।।"[36]

यहाँ काम भावना और लज्जा के कारण नायिका अधिक विवश है, उसका चित्रण किया गया है ।

बिहारी की भाषा की दूसरी विशेषता है – चित्रोपमा । इसके द्वारा पाठकों के सम्मुख सुंदर चित्र उपस्थित किया गया हैं । जैसे –

"कहलाने एकत बसत, अहि मयूर मृग बाघ ।
जगत तपोबन सौ कियौ, दीरघ दाघ निदाघ ।।"[37]

ग्रीष्म ऋतु की प्रचंड गर्मी से साँप, मोर, हिरन और बाघ स्वाभाविक वैर को भूलकर एकसाथ इकट्ठे रहते है, उसका सुंदर चित्रण किया गया हैं ।

---

[35] डॉ.रामसागर त्रिपाठी – मुक्तक काव्य परंपरा और बिहारी, पृ 507
[36] डॉ.देशराजसिंह भाटी – बिहारी भाष्य, पृ 337
[37] डॉ.देशराजसिंह भाटी – बिहारी भाष्य, पृ 315

नाद – सौंदर्य उनके काव्य की तीसरी विशेषता है जिसके द्वारा उन्होंने उच्च कोटि की ध्वनिशीलता उत्पन्न की है । यथा –

"रनित-भृंग-घंटावली, झरत दान मधु-नीरु ।
मंद मंद आवतु चल्यौ, कुंजरु-कुंज-समीरु ।।"[38]

यहाँ मंद-मंद, कुंजरु, कुंज जैसे शब्दों के द्वारा ध्वनिशीलता उत्पन्न की गई हैं ।

इन्हीं विशेषताओं के अलावा सामासिकता, प्रसंगानुकूलता, नाट्यात्मकता, चित्रात्मकता, सजीवता, संगीतात्मकता आदि भी उनके काव्य में विद्यमान हैं । सामासिकता के लिए उदाहरण –

"मेरी भव-बाधा हरौ, राधा नागरी सोइ ।
जा तन की झाँईं परैं, स्यामु हरित-दुति होइ ।।"[39]

यहाँ कवि ने राधा की स्तुति की है ।

नाट्यात्मकता के लिए उदाहरण –

"कहत, नटत, रीझत, खिजत, मिलत, खिलत, लजियात ।
भरे भौन मैं करत हैं, नैननु हीं सौं बात ।।"[40]

यहाँ नायक-नायिका की चतुरता नाट्यात्मकता ढंग से प्रस्तुत है ।

---

[38] डॉ.देशराजसिंह भाटी – बिहारी भाष्य, पृ 388
[39] डॉ.देशराजसिंह भाटी – बिहारी भाष्य, पृ 17
[40] डॉ.देशराजसिंह भाटी – बिहारी भाष्य, पृ 40

सांकेतिकता के लिए उदाहरण –

"लखि गुरुजन – बिच कमल सौं सीसु छुबायौ स्याम ।

हरि – सनमुख करि आरसी हियैं लगाई बाम ।।"[41]

कृष्ण और राधा की चतुरता पूर्ण क्रिया – कलापों का वर्णन हैं ।

चित्रात्मकता के लिए उदाहरण –

"झीनैं पट मैं झलमली, झलकति ओप अपार ।

सुरतरु की मनु सिंधु मैं, लसति सपल्लव डार ।।"[42]

यहाँ नायिका के अपार सौंदर्य को इस प्रकार चित्रित किया है जैसे कल्पवृक्ष की पत्तों सहित कोई डाली समुद्र में सुशोभित हो रही हो ।

सजीवता के लिए उदाहरण –

"सोहत ओढ़ैं पीतु पटु, स्याम सलौनैं गात ।

मनौ नीलमति – सैल पर, आतपु पर्यौं प्रभात ।।"[43]

यहाँ नायक का वर्णन अत्यंत सजीवता से किया है ।

रस

रीतिकालीन कवियों में श्रृंगार रस की कमी नहीं हैं । बिहारी भी इससे भिन्न नहीं हैं । उनके काव्य में श्रृंगार रस प्रमुख रूप में और बाकी रस अंगीरस के रूप में हैं ।

---

[41] डॉ.देशराजसिंह भाटी – बिहारी भाष्य, पृ 41

[42] डॉ.देशराजसिंह भाटी – बिहारी भाष्य, पृ 30

[43] डॉ.देशराजसिंह भाटी – बिहारी भाष्य, पृ 434

श्रृंगार रस के लिए उदाहरण –

"भौंहनि त्रासति, मुख नटति, आँखनि सों लपटाति ।

ऐंचि छुडावति कर, इंची, आगे आवति जाति ।।"[44]

यहाँ नायक-नायिका की प्रेमपूर्ण चेष्टाओं को सुंदर रूप में वर्णित किया गया है ।

वियोग श्रृंगार –

"होमति सुख करि कामना, तुमहिं मिलन की लाल ।

ज्वालामुखी सी जरतिं लखि, लगनि अगनि की ज्वाल ।।"[45]

नायिका विरह की पीडा से ज्वालामुखी की भाँति जल रही है, उसको चित्रित किया गया है ।

शांत रस के लिए उदाहरण –

"या अनुरागी चित्त की, गति समुझे नहिं कोय ।

ज्यों ज्यों बूडै श्याम रंग, त्यों त्यों उज्ज्वल होय ।।"[46]

यहाँ भगवान के प्रेम में निमग्न निर्मल चित्त को चित्रित किया गया है ।

इस प्रकार बिहारी के काव्य में रस के, विशेषकर श्रृंगार परक सुंदर दोहे उपलब्ध हैं ।

---

[44] प्रो. विराज एम.ए - बिहारी सतसई, पृ 136

[45] प्रो. विराज एम.ए - बिहारी सतसई, पृ 230

[46] प्रो. विराज एम.ए - बिहारी सतसई, पृ 296

अलंकार

बिहारी ने काव्य में अलंकारों का प्रयोग दो रूपों में – स्वतंत्र रूप में और भाव-विशेष दिखाने के लिए – किया है । बिहारी ने अपने काव्यों में शब्दालंकार और अर्थालंकार दोनों का प्रयोग किया हैं । लेकिन उनके द्वारा प्रयुक्त अर्थालंकार अधिक सौंदर्यशाली हैं । उन्होंने अर्थालंकारों में उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा आदि साम्यमूलक अलंकारों का प्रयोग किया है ।

उपमा के लिए उदाहण –

"सालति है नटसाल सी, क्यों हूँ निकसति नाँहि ।
मनमथ-नेजा-नोक सी, खुभी-खुभी हिय माँहि ।।"[47]

नायिका की खुभी कामदेव के भाल की नोंक के समान कहने पर उपमालंकार है ।

यमक के लिए उदाहरण –

"कनक कनक तैं सौगुतौ, मादकता अधिकाइ ।
उहिं खायें बौराउ है, इहिं पाऐं हों बौराइ ।।"[48]

यहाँ 'कनक' शब्द सोना और धतूरा के लिए प्रयुक्त है । कनक शब्द की आवृत्ति के कारण यहाँ यमकालंकार है ।

[47] प्रो. विराज एम.ए - बिहारी सतसई, पृ 23
[48] प्रो. विराज एम.ए - बिहारी सतसई, पृ 138

श्लेष के लिए उदाहरण –

"अज्यौ तरौंना ही रह्यौ, श्रुति सेवत इक-रंग ।
नाक-बास बेसरि लह्यौ, बसि मुकुतनु कैं संग ।।"[49]

यहाँ तरौंना, श्रुति, नाक, बेसरि और मुकुतनु शब्दों से प्राकृत विषय के कारण श्लेषालंकार है ।

छंद

बिहारी ने दोहे जैसे छोटे छंद के द्वारा विशाल भावों की सृष्टि की है । उनके द्वारा प्रयुक्त दोहों में मात्राओं की न्यूनता तथा अधिकता नहीं है । बिहारी ने त्रिकल, द्विकल और यति का बराबर ध्यान रखा है । उन्होंने मुख्य रूप में दोहा छंद का प्रयोग किया है । दोहा से मिलते-जुलते सोरठा का भी प्रयोग कहीं मिलते है ।

दोहा छंद के लिए उदाहरण –

"ज्यौं ज्यौं आवति निकट निसि त्यौं त्यौं खरी उताल ।
झमकि झमकि टहलै करें लगी रहँचटे बाल ।।"[50]

यहाँ नायिका को प्रियतम से मिलने की अभिलाषा वर्णित किया गया है ।

[49] प्रो. विराज एम.ए - बिहारी सतसई, पृ 32
[50] प्रो. विराज एम.ए - बिहारी सतसई, पृ 135

शब्द

बिहारी द्वारा प्रयुक्त तत्सम शब्द है – अंग, नृपति, सुरतरु, सिंधु, रूप, मन आदि । जोह, अजौं, छिन, नैन, जम, मैन, आन्यौ, जीय आदि उनके द्वारा प्रयुक्त तद्भव शब्द है । इसके अलावा उनके काव्य में फौज, मौज निसान, रोहाल, हरौल, गोल, जैसे अरबी-फारसी शब्दों का भी प्रयोग मिलते हैं ।

शब्दशक्ति

बिहारी ने अपने काव्य में शब्दशक्तियों का समुचित प्रयोग किया है । वक्तव्य को सीधे रुप में न प्रस्तुत करके चमत्कार शैली में नवीन ढंग से कहने को लाक्षणिकता कहते है । यह भाषा का श्रेष्ठ गुण है । बिहारी के काव्य लाक्षणिक प्रयोगों से भरा पडा है । जैसे –

"दृग उरझत, टूटत कुटुम, जुरति चतुर चित प्रीति ।
परति गाँठि दुरजन – हियै, दई नई यह रीति ।।"[51]

यहाँ कुटुम टूटने से तात्पर्य प्रेमियों का घर छोडकर भाग जाना है । यहाँ साधारण वाच्यार्थ लेने से अर्थ ग्रहण नहीं होता ।

अभिधा के लिए उदाहरण –

"जो न जुगुति पिय मिलन की, धूरि मुकुति मुख दीन ।
जो लहिये संग सजन तौ, धरक नरक हू की न ।।"[52]

---

[51] प्रो. विराज एम.ए - बिहारी सतसई, पृ 243
[52] प्रो. विराज एम.ए - बिहारी सतसई, पृ 239

यहाँ गोपियों के प्रिय-मिलन की तीव्र इच्छा को द्योतित किया गया है ।

काव्यगुण

'सतसई' श्रृंगार प्रधान रचना होने के कारण माधुर्य और प्रसाद गुण की प्रधानता है ।

माधुर्य गुण के लिए उदाहरण –

"स्वेद-सलिलु, रोमांच-कुसु, गहि दुलही अरु नाथ ।
दियौ हियौ संग हाथ कै, अथलेमैं ही हाथ ।।"[53]

पाणिग्रह के समय वधु और वर दोनों में अनुराग के कारण स्वेद और रोमांच भावों का उदय हुआ है ।

ओज गुण –

"अनी बडी उमडी लखौं असि-बाहक, भट भूत ।
मंगलु करि मान्यौ हियौं, भो मुहुँ मंगलु रूप ।।"[54]

यहाँ कवि ने अपने आश्रयदाता राजा जयसिंह की युद्ध प्रियता को चित्रित किया है ।

प्रसाद गुण –

"नर की अरु नल-नीर की, गति एकै करि जोइ ।
जेतौ नाचौ ह्वै चलै, तेतौ ऊँचौ होइ ।।"[55]

---

[53] डॉ.देशराजसिंह भाटी – बिहारी भाष्य, पृ 178

[54] डॉ.देशराजसिंह भाटी – बिहारी भाष्य, पृ 159

नम्रता के कारण ही मनुष्य की महत्ता में वृद्धि होती है इसे यहाँ चित्रित किया है ।

इस प्रकार बिहारी के काव्य में प्रसाद गुण प्रमुख रूप में और माधुर्य और ओजगुण गौण रूप में उपलब्ध है ।

लोकोक्तियाँ और मुहावरे

बिहारी ने अपनी रचनाओं में 'उपजी बडी बलाइ', 'प्यास बुझाइ', 'लगी बिरह की लाइ', 'आँखें लागति नाँहि', 'लागी जगबाह', 'बिच बीच हीं बिकान', 'छवै चिगुनी पहूँचौ गिलत' आदि मुहावरों के अतिरिक्त 'जीभ निबोरी क्यों नगै', 'बोरी चाखि अंगूर', 'किते न औगुन जग करै बै नै चढती बार' आदि कहावतों का भी प्रयोग किया है । जैसे –

"तोरस – रॉच्यौ आन-बस, कहौ कुटिल मति कूर ।
जीभ निबौरी क्यों लगै, बौरी चाखि अंगूर ।।"[56]

यानि जिस जीभ ने अंगूर का रस चख लिया है, वह भला किस प्रकार नीम की कडवी निबौरी की ओर प्रवृत्त हो सकती है ? इसके द्वारा नायक की प्रेम की तीव्रता को द्योतित किया है ।

"बहकि न इहिं बहिनापुली, जब बीर बिनासु ।
बचै न बडी सबील हूँ, चील घोंसुला मांस ।।"[57]

---

[55] डॉ.देशराजसिंह भाटी – बिहारी भाष्य, पृ 219
[56] डॉ.देशराजसिंह भाटी – बिहारी भाष्य, पृ 141
[57] डॉ.देशराजसिंह भाटी – बिहारी भाष्य, पृ 141

इससे यह व्यक्त है कि जिस प्रकार चील के घोंसले में मांस सुरक्षित नहीं होता उसी प्रकार कोई भी युवक किसी युवती के जाल में फँसे बिना नहीं रह सकता ।

इसके अलावा उनके द्वारा प्रयुक्त अन्य अनेक लोकोक्ति और मुहावरे उपलब्ध हैं ।

काव्यदोष

बिहारी के काव्य अनेक विशेषताओं से संपन्न होने पर भी दोषों से मुक्त नहीं है । उनके काव्य के प्रमुख दोष इस प्रकार हैं –

"इहिं बसंत न खरी, अरी, गरमु न सीतल बात ।
कहि, क्यौं झलके देखियत पुलकि, पसीजे गात ।।"[58]

यहाँ प्रथम पंक्ति में 'गरम' और दूसरे में 'शीतल' का प्रयोग किया गया है । इस क्रम में पसीना और पुलक आना था । लेकिन इसके क्रम में भिन्नता है । अत: यहाँ क्रमभंग दोष या अक्रम है ।

संस्कृत में पुल्लिंग में प्रयुक्त 'वायु' शब्द हिन्दी में स्त्री लिंग है । लेकिन बिहारी इस शब्द का प्रयोग कहीं पुल्लिंग के रूप में करता तो कहीं स्त्रीलिंग के रूप में । जैसे –

"चुवतु स्वेद मकरन्द कन, तरु-तरु-तर बिरमाइ ।
आवतु दच्छिन देश तैं, थक्यौं बटोही बाइ ।।"[59]

---

[58] डॉ.देशराजसिंह भाटी – बिहारी भाष्य, पृ 366
[59] डॉ.देशराजसिंह भाटी – बिहारी भाष्य, पृ 259

यहाँ 'वायु' पुल्लिंग रूप में प्रयुक्त किया गया है ।

"लपटी पुहुप-पराग-पट, सनी स्वेद-मकरन्द ।

आवति नारि नवौढ लौं, सुखद वायु गति नद ।।"[60]

यहाँ 'वायु' स्त्रीलिंग में प्रयुक्त है ।

बिहारी के काव्य में अश्लीलत्व दोष भी दृष्टिगत है । शब्दों के प्रयोग से जुगुप्सा तथा अमंगल व्यंजित हो तो उसे अश्लीलत्व दोष कहते है । जैसे –

"बहकि न इहिं बहिनापुली, जब तब बीर बिनासु ।

बचै न बडी सबीलहुँ, चील-घोसुवा मांसु ।।" [61]

यहाँ पूर्वार्ध और उत्तरार्ध में क्रमश: विनाश और मांस शब्दों द्वारा जुगुप्सा उत्पन्न किया है । अत: यहाँ अश्लीलत्व दोष है ।

4.4 रीतिमुक्त कवि भूषण की काव्यभाषा

रीतिकाल के ओजस्वी कवि हैं भूषण । तत्कालीन सामाजिक नैतिक दशा के प्रति वे जागरूक थे और इसी जागरूकता के कारण ही उन्होंने विलासिता एवं स्वार्थपूर्ण राजप्रशंसा का स्पष्ट विरोध किया है । उनके आश्रयदाता राजा शिवाजी में अपनी नैतिक तथा राजनीतिक चेतना का आदर्श रूप पाया और इसे उन्होंने अपने काव्य का विषय भी बनाया । उनके द्वारा रचित 'शिवराजभूषण' रीतिकालीन काव्य परिपाटी और व्यक्तिगत आदर्श के बीच समन्वय स्थापित

[60] डॉ.देशराजसिंह भाटी – बिहारी भाष्य, पृ 260

[61] डॉ.देशराजसिंह भाटी – बिहारी भाष्य, पृ 141

करनेवाली रचना है । 'शिवराजभूषण' उनके द्वारा रचित अलंकार ग्रंथ है । संस्कृत के रीति ग्रंथों के आधार पर लिखे गए इस ग्रंथ में अलंकार के लक्षण दोहे में दिए गए है और कवित्त, सवैयों के द्वारा उदाहरण भी । उन्होंने नखशिख, नायिकाभेद को काव्य का विषय नहीं बनाया है यही तत्व रीतिकालीन कवियों से उन्हें अलग कराते है । यानी उनकी शैली रीतिकालीन थी पर नवीन मान्यताओं की थी ।

भूषण ने अपनी काव्य रचना के लिए ब्रजभाषा को चुना है । कोमल तथा मधुर ब्रजभाषा को उन्होंने ओजस्विता तथा पौरुष प्रदान किया । उनके काव्यों में व्याकरण की अव्वस्था, शब्दों की तोड-मरोड, वाक्य-विन्यास की गडबडी होने के कारण साहित्यकता एवं विशुद्धता की दृष्टि से महत्व नहीं रहा ।

उनकी भाषा एक तरह से खिचडी भाषा है । क्योंकि इसमें मांची, चिंजी, भटी, बहुन्ने, बरगी आदि मराठी शब्दों, अरबी – फारसी शब्द, प्राकृत – अपभ्रंश शब्दों का प्रयोग हुआ है । भाषा परिष्कृत और प्रांजल न होने पर भी भाषा का प्रवाह और गति बडी सशक्त है ।

रस

हिन्दी साहित्य में भूषण का नाम वीर काव्य परंपरा में आते है । क्योंकि उनके काव्य वीर रस प्रधान है । इसकी व्यंजना के लिए द्वित्त व्यंजन, मूर्धन्य ध्वनियों एवं संयुक्त ध्वनियों का प्रयोग किया गया है । उन्होंने अपने काव्य में

प्रमुख रूप से वीर रस और गौण रूप में श्रृंगार रस का प्रयोग किया है । अन्य रस वीर रस के पोषक के रूप में आते है । वीर रस के लिए उदाहरण –

"उमड़ी कुडाल मैं खवासखान आए ह्वाँ तें सिवराज धाए जे भूषन पूरे मन के ।
सुनि मरदाने बाजे हय हिह्नाने, घोर मूछैं तरराने मुख बीर धीर जन के ।
एकै कहैं मारु मारु सम्हारु सम्हारु एकैं म्लेच्छ गिरे मार बीच बेसुमार तन के ।
कुंडन के ऊपर कराके उठैं ठौर ठौर जिरह के ऊपर खराके खरगन के ।।"[62]

यहाँ युद्धरत वीर का वर्णन वीर रस में किया गया है ।

भूषण ने वीर रस प्रधान काव्य रचे है इससे यह आशय नहीं है कि उन्हें श्रृंगार वर्णन में सफलता नहीं मिली है । वे अन्य रीतिकालीन कवियों की तरह श्रृंगार वर्णन में भी सिद्धहस्त है । पर उनकी रुचि श्रृंगार से ज्यादा वीर रस की ओर थी । श्रृंगार रस के लिए उदाहरण –

"कोकनदनैनी केलि करी प्रानपति संग उठी परजंक तें अनंग जोति सोकी सी ।
भूषन सकल दलमलि हलचल भए बिंदु लाल भाल फैल्यौ कांति रबि रोकी सी ।
छटी रही गोरे गाल पै अलक आछी कुसुम गुलाब के ज्यों लीक अलि दो की सी ।
मोती सीसफूल तें बिथुरि फैलि रह्यो मानो चंद्रमा तें छूटी है नक्षत्रन की चोकी सी ।।"[63]

---

[62] विश्वनाथ प्रसाद मिश्र – भूषण ग्रंथावली, पृ 185

[63] विश्वनाथ प्रसाद मिश्र – भूषण ग्रंथावली, पृ 240

यहाँ नायिका वर्णन द्वारा श्रृंगार वर्णन की सृष्टि की है ।

अलंकार

उन्होंने प्रमुख रूप से यमकालंकार का प्रयोग किया है । जैसे –

"ऊँचे घोर मंदर के अंदर रहनवारी ऊँचे घोर मंदर के अंदर रहाती हैं ।

कंद मूल भोग करैं कंद मूल भोग करैं तीन बेर खातीं ते वै तीनबेर खाती हैं ।

भूषन सिथिल अंग भषन सिथिल अंग बिजनडुलाती ते वै बिजन डुलाती हैं ।

भूषन भनत सिवराज बीर तेरे आस नगन जडाती ते वै नगन जडाती हैं ।।"[64]

यहाँ उन्होंने यमकालंकार के द्वारा भावाभिव्यक्ति की है ।

छंद

भूषण ने मनहरण कबित्त, छप्पय, दोहा, हरिगीतिका, लीलावती, अमृतध्वनि, गीतिका आदि छंदों का प्रयोग किया है । दोहा के लिए उदाहरण –

"तरनि तचत जयनिधि तरनि जय जय आनँद-ओक ।

कोक-कमलकुल-सोकहर लोक-लोक आलोक ।।"[65]

यहाँ सफल भावाभिव्यक्ति के लिए दोहे का प्रयोग किया है ।

अमृतध्वनि के लिए उदाहरण –

"लिय जिति एदिल को मुलक सिव सरजा जुरि जंग ।

भनि भूषन भूपति भजे भंगग्गरब तिलंग ।

---

[64] विश्वनाथ प्रसाद मिश्र – भूषण ग्रंथावली, पृ 211

[65] विश्वनाथ प्रसाद मिश्र – भूषण ग्रंथावली, पृ 129

भंगग्गरब तिलंगग्गठ कलिंगग्गलि अति ।

दुंदद्दबि दुहु दंदद्दिलनि बिलंदद्दसति ।

लच्छच्छिन करि म्लेच्छच्छय किय स्वच्छच्छबि छिति ।

हालल्लगि नरपालल्लरि परनालल्लिय जिति ।।"[66]

यहाँ एक दोहा और उसके बाद एक रोला होने से अमृतध्वनि है । इसमें दोहे का अंतिम चरण रोले का प्रथम चरण और रोले के अंतिम चरण के कुछ अंतिम अक्षर या शब्द दोहे के आदि में होते है ।

शब्द

भूषण ने सभी भाषाओं के ओज और अर्थ संपन्न शब्दों का प्रयोग किया है । उन्होंने संस्कृत, अरबी-फारसी, मराठी, बुन्देली, बैसवाडी, अपभ्रंश और खडीबोली शब्दों का सफल प्रयोग किया है ।

उनके द्वारा प्रयुक्त संस्कृत शब्द है –चंपा, चारु, चंदन, पीयूष, रसाल, कोकिल, कीर, कपोत, मयूर, चातक, चकोर, आयुष्मान, मृगराज आदि । अदब, इलाज, करामात, तमाम, अमीर, मुहीम, सलाम, हरम, सूबा, कसम, गनीं, फतह आदि उनके द्वारा प्रयुक्त अरबी शब्द है । आसमान, आब, दरगाह, पनाह, प्यादे, बदनाम, बहार, बंदगी, स्याह, मीर, नेकी आदि उनके द्वारा प्रयुक्त फारसी शब्दों के लिए उदाहरण है ।

[66] विश्वनाथ प्रसाद मिश्र – भूषण ग्रंथावली, पृ 169

शब्दशक्ति

उन्होंने प्रमुख रूप से अभिधा शब्दशक्ति का प्रयोग किया है । जैसे –

"दै दस-पाँच रुपैयन कों जग कोउ नरेस उदार कहायौ ।
कोटिन दान सिवा सरजा के सिपाहन साहन कों बिचलायौ ।
भूषन कोउ गरीबनि सों भिरि भीमहु तें बलवंत जनायौ ।
दौलत इंदु-समान बढी पै खुमान के तोऊ गुमान न आयौ ।।"[67]

यहाँ दान की महत्ता को अभिधा द्वारा व्यक्त किया गया है ।

इस प्रकार अभिधा प्रधान पद उनके काव्यों में सर्वत्र देख सकते है ।

काव्यगुण

रीतिकालीन कवियों में भूषण ओज कवि के रूप में ख्यति प्राप्त है । उनकी रचनाओं में ओज गुण की जितनी प्रमुखता है उतना अन्य गुणों को नहीं है । वीर रस प्रधान रचना होने के कारण इसमें ओज गुण की प्रमुखता है । उदाहरण के लिए –

"सिवाजी खुमान तेरो खग्गु बढे मानस लौं रूप बदलत उछ्छाह तें ।
भूषन भनत क्यौं न जाहिर जहान होत प्यार पाइ तो से हिंदुपति नरनाह तें ।
परताप फेट्यौ रहै सुजस लपेट्यौ रहै बरन पखारे नरपानिप अथाह तें
रनरंग रिपुन के रकत के रंग रहै रातोदिन रातो पै न रातो होत स्याह तें ।।"[68]

---

[67] विश्वनाथ प्रसाद मिश्र – भूषण ग्रंथावली, पृ 162

[68] विश्वनाथ प्रसाद मिश्र – भूषण ग्रंथावली, पृ 180

यहाँ राजा शिवाजी की युद्ध वीरता को प्रस्तुत किया गया है ।

भूषण ने प्रसाद तथा माधुर्य गुण का प्रयोग प्रशक्ति काव्य, श्रृंगार काव्य और नीति काव्य में किया है ।

बिम्ब योजना

उन्होंने अपने काव्य में कहीं-कहीं बिम्ब का प्रयोग किया है । जैसे –

"कोकनद नैनन तें कज्जलकलित छूटे आँसुन की धार तें कलिंदी सरसाति है ।
मोतिन की लरैं गरैं छूटि परै गंगछवि सेंदुर सुरंग सरसुती दरसाति है ।
भूषन भनत महाराज सिवराज बीर रावरे सुजस ये उकति ठहराति है ।
जहाँ जहाँ भागति हैं बैरिबधू तेरे त्रास तहाँ तहाँ मग में त्रिबेनी होति जाति है ।।"[69]

यहाँ उन्होंने गंगा, त्रिवेणी द्वारा प्राकृतिक बिम्ब की सृष्टि की है ।

काव्यदोष

भूषण के काव्य में विरतिभंग, प्रवाह दोष, न्यूनपदत्व दोष, पुनरुक्ति दोष, कष्टार्थत्व दोष, अनावश्यक शब्द प्रयोग आदि दोष मिलते हैं ।

न्यूनपदत्व दोष के लिए उदाहरण –

"लवली लविंग इलानि के रोला कहाँ लगि लेखियै ।"[70]

यहाँ 'इलानि'के पश्चात 'तरु' शब्द छूट गया है । अत: यहाँ न्यूनपदत्व दोष है ।

---

[69] विश्वनाथ प्रसाद मिश्र – भूषण ग्रंथावली, पृ 227

[70] विश्वनाथ प्रसाद मिश्र – भूषण ग्रंथावली, पृ 132

पुनरुक्ति दोष के लिए उदाहरण -

"बैरिनारि दृगजलन सों बूडि जात अरिगाँवँ ।"[71]

यहाँ प्रयुक्त 'बैरि' और 'अरि' समानार्थी शब्द है । अत: यहाँ पुनरुक्ति दोष है ।

लोकोक्तियाँ और मुहावरे

उनके द्वारा प्रयुक्त लोकोक्ति व मुहावरे के लिए उदाहरण है –

"पायतर आए तिन्हें निडर बसायबे कौं, कोट बाँधियतु मानौं पाग बाँधियतु है ।"[72]

"जासों जोराकरि बाचै भूपतदिगंत तासों तोरा करि तखत तरें तें आयौ सरजा ।"[73]

इसके अलावा 'तारे सम तारे गए मूँदि तुरकन के, नाह दिवाल की राह न धावै, धरे जात कित जीउ, तिन ओठ-गहे, दंत गहौ तिन, स्याही जाइ सबपातसाही – मुख झलकी, कटि नाक सिगरेई दिल्ली – दल की, भाग फिरैं' जैसे लोकोक्तियाँ और मुहावरों का प्रयोग उन्होंने किया है ।

4.5 रीतिमुक्त कवि घनानंद की काव्यभाषा

स्वच्छंद काव्यधारा के प्रमुख कवि हैं – घनानंद । उन्होंने अपने काव्य में विषाद, उलझन, अभिलाषा जैसे भावों का सीधा वर्णन अधिक किया है । घनानंद के काव्य की विशेषताएँ है – ब्रजभाषा की लाक्षणिकता, वक्रता विधान,

---

[71] विश्वनाथ प्रसाद मिश्र – भूषण ग्रंथावली, पृ 196

[72] विश्वनाथ प्रसाद मिश्र – भूषण ग्रंथावली, पृ 146

[73] विश्वनाथ प्रसाद मिश्र – भूषण ग्रंथावली, पृ 162

ध्वन्यात्मकता शब्द योजना, रस व्यंजना, प्रेम की स्वच्छंदता, रहस्य रहित प्रणयानुभूति, फारसी काव्य पद्धति की छाप, सूक्ति विधान, सुजान विरह तथा कृष्ण विरह की द्वयर्थकता, मुहावरेदारी तथा श्रृंगार के भेदों में आलंबन आदि का सजीव वर्णन आदि ।

रस

घनानंद ने अपना काव्य श्रृंगार रस से भर दिया हैं और उसमें भी विप्रलंभ श्रृंगार को । अपनी प्रेयसी सुजान से बिछुडने के कारण ही उन्होंने वियोग श्रृंगार प्रधान काव्य रचा हैं । उदाहरण के लिए –

"भोर तें साँझ लौं कानन-ओर निहारति बावरी नेकु न हारति ।
साँझ तें भोर लौं तारनि ताकिबो तारनि सों इकतार न टारति ।
जौ कहूँ भावतो दीठि परै घनआनँद आँसुनि औसर गारति ।
मोहन-सोंहन जोहन की लगियै रहै आँखिन कें उर आरति ।।"[74]

यहाँ नायिका की विरह पीडा को मार्मिक ढंग से प्रस्तुत किया गया है ।

"पाप के पुंज सकेलि सु कौन धौआन धरी मैं बिरंचि बनाई ।
रूप की लोभनि रीझि भिजायकै हाय इते पै सुजान मिलाई ।
क्यौं धनआनँद धीर घरैं बिन पाँख निगोडी मरैं अकुलाई ।
प्यास-भरी बरसैं तरसैं मुख देकन कौं आँखियाँ दुखहाई ।।"[75]

---

[74] साहित्याचार्य चन्द्रशेखर मिश्र शास्त्री – घनानंद कबित्त, पृ 68

[75] साहित्याचार्य चन्द्रशेखर मिश्र शास्त्री – घनानंद कबित्त, पृ 194

यहाँ विरह से आहत प्रेमिका की आँखें प्रिय-दर्शन के लिए जिस तरह तडप रही है उसीको चित्रित किया गया है ।

घनानंद की रचनाओं में श्रृंगार रस – वियोग श्रृंगार – के अलावा बाकी रसों का प्रयोग बहुत कम ही मिलते हैं ।

अलंकार

उन्होंने श्लेष, यमक, विरोधाभास, अनुप्रास जैसे कतिपय अलंकारों का प्रयोग किया है । अनुप्रास के लिए उदाहरण –

"प्रीतम सुजान मेरे हित के निधान कहौ
कैसे रहैं प्रान जौ अनखि अरसायहौ ।।"[76]

यहाँ कहौ, अरसायहौ शब्दों द्वारा अन्त्यानुप्रास की सृष्टि की है ।

यमक के लिए उदाहरण –

"तब तौ छबि पीवत जीवत हे, अब सोचन लोचन जात भरे ।
हित पोष के तोष सु प्रान पले, बिललात महा दुख दोष भरे ।
घनआनँद मीत सुजान बिना सब ही सुख-साज-समाज टरे ।
तब हार पहार से लागत हे अब आनि कै बीच पहार परे ।।"[77]

[76] साहित्याचार्य चन्द्रशेखर मिश्र शास्त्री – घनानंद कबित्त, पृ 85
[77] साहित्याचार्य चन्द्रशेखर मिश्र शास्त्री – घनानंद कबित्त, पृ 88

यहाँ विरही संयोग और वियोग का अंतर तथा तुलना कर रहा है । 'हार पहार' शब्द से यहाँ यमक की सृष्टि होती है । यानी प्रेमियों के आलिंगन में हार पहाड की भाँति बाधक होते है और वियोग में पहाडों का अंतर भी है ।

इन प्रमुख अलंकारों के अलावा उन्होंने मानवीकरण अलंकार का भी प्रयोग यत्र-तत्र किया है । जैसे –

"रावरे रूप की रीति अनूप, नयो नयो लागत ज्यौं ज्यौं निहारियै ।
त्यौं इन आँखिन बानि अनोखी, अघानि कहूँ नहिं आनि तिहारियै ।
एक ही जीव हुतौ सुतौ वार्यौ, सुजान, सकोच औ सोच सहारियै ।
रोकी रहै न, दहै घनआनँद बावरी रीझि के हाथन हारियै ।।"[78]

यहाँ प्रिय के रूप पर रीझने में मन की जो दशा है उसीका मानवीकरण किया गया है ।

छंद

उन्होंने मुख्यतया सवैया, कबित्त, दोहा आदि छंदों का प्रयोग किया है । सवैया के लिए उदाहरण –

"अंतर आँच उसास तचै अति अंग उसीजै उदेग की आवस ।
ज्यौ कहलाय मसोसनि ऊमस क्यौं हूँ कहूँ सु धरै नहिं थ्यावह ।
ननउ धारि दियें बरसैं घनआनँद छाई अनोखिय पावस ।
जीवनि मूरति जान को आनन है बिन हेरें सदाई अमावस ।।"[79]

---

[78] साहित्याचार्य चन्द्रशेखर मिश्र शास्त्री – घनानंद कबित्त, पृ 94

यहाँ सवैया द्वारा प्रिय के वियोग को चित्रित किया गया है ।

सोरठा छंद के लिए उदाहरण –

"घनआनँद रसऐन, कहौ कृपानिधि कौन हित ।

मरत पपीहा नैन, बरसौ पै दरसौ नहीं ।।"[80]

यहाँ प्रिय के दर्शन के अभाव में दुखी प्रेमी एकांत भाषण कर रहे है उसीको चित्रित किया है ।

शब्दशक्ति

उन्होंने अपनी वियोग पीडा के द्वारा लौकिक सत्य को उभारने और समाज के सामने उपस्थित करने की कोशि की हैं । इसके लिए उन्होंने लक्षणा एवं अभिधा शब्द शक्तियों का प्रयोग किया है । लक्षणा के लिए उदाहरण –

"अंतर आँच उसास तचे अति अंग उसीजै उदेग की आवस ।

ज्यौ कहलाय मसोसनि ऊमस क्यौं हूँ सु धरै नहिं थ्यावस

ननउ धारि दियें बरसैं घनआनँद छाई अनोखिय पावस ।

जीवनि मूरति जान को आनन है बिन हेरें सदाई अमावस ।।"[81]

यहाँ पावस ऋतु के अप्रस्तुत व्यापार द्वारा प्रिय के वियोग में जो कष्ट हो रहा है उसीको चित्रित किया गया है ।

---

[79] साहित्याचार्य चन्द्रशेखर मिश्र शास्त्री – घनानंद कबित्त, पृ 125

[80] साहित्याचार्य चन्द्रशेखर मिश्र शास्त्री – घनानंद कबित्त, पृ 116

[81] साहित्याचार्य चन्द्रशेखर मिश्र शास्त्री – घनानंद कबित्त, पृ 125

अभिधा के लिए उदाहरण –

"प्रीतम सुजान मेरे हित के निधान कहौ

कैसे रहै प्रान जौ अनखि अरसायहौ ।

तुम तौ उदार दीन हीन आनि पर्यौ द्वार

सुनियै पुकार याहि कौ लौं तरसायहौ ।।"[82]

यहाँ विरहिणी अपने विरह का निवेदन प्रिय से करती है ।

काव्यगुण

घनानंद ने प्रमुख रूप से श्रृंगार रस का प्रयोग किया है । अत: उनके काव्य में माधुर्य गुण एवं प्रसाद गुण का आना स्वाभाविक ही हैं । माधुर्य गुण के लिए उदाहरण –

"अकुलानि के पानि पर्यौ दिनराति सु ज्यौ छिनकौ न कहूँ बहरै ।

फिरिबोई करै चित चेटक चाक लौं धीरज को ठिकु क्यौं ठहरै ।

भए कागद-नाव उपाव सबै घनआनँद नेह-नदी गहरे ।

बिन जान सजीवन कौन हरै सजनी बिरहा-बिष की लहरै ।।"[83]

यहाँ विप्रलंभ श्रृगार द्वारा विरह की उद्वेगपूर्ण दशा को अंकित करने के कारण माधुर्य गुण ही है । प्रसाद गुण के लिए उदाहरण –

---

[82] साहित्याचार्य चन्द्रशेखर मिश्र शास्त्री – घनानंद कबित्त, पृ 82

[83] साहित्याचार्य चन्द्रशेखर मिश्र शास्त्री – घनानंद कबित्त, पृ 209

"घेर घबरानी उबरानी ही रहति घन –

आनँद आरति-राती साधन मरति हैं ।

जीवन आधार जान-रूप के आधार बिन

ब्याकुल बिकारभरी खरी सु जरति हैं ।।"[84]

यहाँ विरहिणी प्रिय के प्रति आँखों की वेदना का निवेदन सखी के माध्यम से करती है । यहाँ प्रसाद गुण का आभास मिलते है ।

लोकोक्तियाँ और मुहावरे

उन्होंने सफल काव्याभिव्यक्ति के लिए लोकोक्तियों और मुहावरों का प्रयोग किया है । जैसे –

"बिरह समीर की झकोरनि अधीर नेह –

नीर भीज्यौ जीव तऊ गुडी लौं उड्यौ रहै ।"[85]

यहाँ 'गुडी लौ उड्यौ' का प्रयोग 'जी उडना' लोकोक्ति के आधार पर हुआ है ।

"कंत रमैं उर अंतर में सु लहै नहीं क्यौं सुखरासि निरंतर ।

दंत रहैं गहैं आँगुरी ते जु बियोग के तेह तचे परतंतर ।

जो दुख देखति हौं घनआनँद रैन-दिना बिन जान सुतंतर ।

जानै बेई दिन-राति, बखाने तें जाय परै दिन-राति को अंतर ।।"[86]

---

[84] साहित्याचार्य चन्द्रशेखर मिश्र शास्त्री – घनानंद कबित्त, पृ 139

[85] साहित्याचार्य चन्द्रशेखर मिश्र शास्त्री – घनानंद कबित्त, पृ 97

[86] साहित्याचार्य चन्द्रशेखर मिश्र शास्त्री – घनानंद कबित्त, पृ 182

यहाँ 'हृदय में रमना, सुखराशि लहना, दाँतों आँगुली पकडे रहना, वियोग के तेह में तचना, दुख देखना, दिन-रात का अंतर पडना' आदि मुहावरों का प्रयोग देख सकते है ।

4.6 निष्कर्ष :-उत्तर मध्यकालीन काव्यभाषा के मूल्यांकन का मानदंड

रीतिकाल की तीनों काव्यधाराओं – रीतिबद्ध, रीतिसिद्ध और रीतिमुक्त – के काव्यों के विश्लेषण से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि इस युग में काव्यधारा एक नई मोड़ की ओर अग्रसर हुई है । प्रारंभिक रीतिकालीन साहित्य में संस्कृत के तत्सम और तद्भव शब्दों की बहुलता थी तो युग के अंत तक आते-आते देशी या देशज शब्दों का प्रभाव हम देख सकते हैं । यानी काव्य साधारण की ओर जाने का या उसे साधारण की ओर लाने का प्रयास देख सकते है । श्रृंगार रस के विविध प्रयोग, काव्य गुणों का प्रभावी प्रयोग, अलंकारों की बहुलता आदि इस युग की काव्यभाषा की विशेषताएँ मान सकते हैं ।

.....ଓ୦.....

अध्याय पाँच

आधुनिक युगीन काव्यभाषा का स्वरूप

5.1 हिन्दी काव्य में पाश्चात्य तत्वों का प्रभाव

आधुनिक युग में अंग्रेज़ी भाषा का प्रभाव हर कहीं देख सकते हैं । हिन्दी काव्य में भी इसका प्रभाव पडा है । काव्य में इसका प्रभाव वर्ण्यविषय, शब्द एवं अलंकार के प्रयोग में दृष्टिगत है ।

पाश्चात्य प्रभाव के कारण हिन्दी काव्य के विषय में बडा परिवर्तन आया है । पाश्चात्य रोमाण्डिसिसम से प्रभावित छायावादी कवियों ने हिन्दी काव्य में प्रकृति को आधार बनाकर काल्पनिक रचनाओं की सृष्टि की है । छायावादी कवियों से प्रेरणा पाकर आगे जिन-जिन कवियों ने काव्य जगत में प्रवेश किए उन सब में पाश्चात्य प्रभाव प्रकट रूप में उनके शब्द प्रयोग में दृष्टिगत होने लगे । आँचलिक, देशी, तत्सम एवं तद्भव शब्दों से ज़्यादा अंग्रेज़ी शब्दों का प्रयोग होने लगा । यानी काव्य में (छायावादोत्तर युग में) अंग्रेज़ी शब्दों की भरमार होने लगी हैं ।

हिन्दी काव्य में पाश्चात्य अलंकारों का प्रयोग होने लगा है । जैसे – मानवीकरण, विशेषण विपर्यय, सिनकड्क आदि ।

मानवीकरण में भावनाओं तथा प्रस्तुत अमूर्त विषयों को मूर्त मानकर उन पर मानवीय गुणों का आरोप किया जाता है । मूर्तिमत्ता की इस प्रणाली से कथन में वक्रता एवं चमत्कार उत्पन्न होता है । विशेषण-विपर्यय में उपमेय का विशेषण उपमान से जोडकर किसी कथन को अर्थ-गर्भित एवं गंभीर बनाते हैं ।

किसी वस्तु को अर्थ से कुछ अधिक या कम व्यक्त करनेवाले संज्ञा शब्द देने का व्यापार सिनकड्क कहते है । इस प्रकार के अलंकारों का प्रयोग आधुनिक कवियों के काव्यों में विशेष रूप से उपलब्ध है ।

इस प्रकार पाश्चात्य तत्वों का प्रभाव हिन्दी काव्य जगत में पडा है, जो विशेष उल्लेखनीय भी है ।

5.2 भारतेंदु-द्विवेदी युगीन काव्यभाषा

उन्नीसवीं शती के उत्तरार्ध में भारत की राजनीतिक, धार्मिक एवं सामाजिक अवस्था में समूल परिवर्तन आया । देश में मुसलमान शासन का अंत हो चुका था और ब्रिटीश राज्य का प्रभाव बढ़ता जा रहा था । इसके परिणाम स्वरूप देश में अंग्रेज़ी शिक्षा एवं भाषा का प्रचार-प्रसार होने लगा ।

भारतेंदु हरिश्चन्द्र इस काल के प्रमुख गद्य साहित्यकार एवं कवि हैं । वे महाप्रभु वल्लभाचार्य के संप्रदाय के होने के कारण भगवान श्रीकृष्ण एवं राधिका जी से विशेष प्रेम रखते थे । अत: उन्होंने ब्रजभाषा की प्राचीन शैली में रचनाएँ की है । उनके द्वारा रचित गद्य ग्रंथों में भी उन्होंने ब्रजभाषा में पद्य रचे है । उनके द्वारा रचित काव्यों में हिन्दी के साथ-साथ उर्दू शब्दों की भी भरमार दृष्टिगत है । इस समय के अन्य प्रसिद्ध साहित्यकार थे- बदरीनारायण चौधरी प्रेमघन, पं.अंबिकादत्त व्यास, पं.प्रतापनारायण मिश्र आदि । इन्होंने खडीबोली भाषा में साहित्य रचने का प्रयास किया है ।

भारतेन्दु युग में गद्य की भाषा खडीबोली और पद्य की भाषा ब्रज थी । भारतेंदुजी की मृत्यु के उपरांत पद्य की भाषा के संबंध में आँदोलन उत्पन्न हुआ ।

खडीबोली के विरुद्ध ब्रजभाषा, अवधी एवं उर्दू थी । फिर भी सामयिक परिस्थिति और हिन्दी साहित्यकारों की कटिबद्ध एकता के कारण ब्रज के स्थान पर खडीबोली की विजय हुई । इसमें पं.महावीरप्रसाद द्विवेदीजी और उनके द्वारा संपादित 'सरस्वती' पत्रिका का महत्वपूर्ण स्थान है । उन्होंने 'सरस्वती' पत्रिका द्वारा खडीबोली में रचनाएँ करने के लिए बहुतों को प्रोत्साहित किए । इससे प्रेरणा पाकर पं.श्रीधर पाठक ने 'हरमिट' का अनुवाद 'एकांतवासी योगी' नाम से खडीबोली में किया । अयोध्यासिंह उपाध्याय हरिऔध जैसे विद्वान इस ग्रंथ को ही खडीबोली में रचित सर्वप्रथम रचना मानते हैं । फिर भी अमीर खुसरो ने जैसा सुंदर आदर्श खडीबोली कविता को उपस्थित किया है वैसा आदर्श रूप उन्नीसवीं शती के अंत तक नहीं उपस्थित किया गया । वे मुख्य रूप से फारसी कवि थे । फारसी भाषा पर उनका अप्रतिम अधिकार था । उनके काव्य के लालित्य और मार्दव के कारण ही उन्हें 'हिन्दी की तोती' कहते हैं । अमीर खुसरो ने अपने पूर्ववर्ती काव्य परंपरा से भिन्न रहकर खडीबोली में काव्य रचने का प्रथम प्रयास किया है । साहित्य क्षेत्र में खडीबोली को प्रतिष्ठित करने के कारण उन्हें 'खडीबोली का प्रथम कवि' माना जाता है ।

बीसवीं शती में हिन्दी भाषा की विस्तृति हुई है । राष्ट्रीय आँदोलन ने हिन्दी भाषा को उच्च स्तर पर बिठाया, जिसमें महात्मा गाँधी एवं पं.मदनमोहन मालवीयजी का महत्वपूर्ण हाथ रहा है । इस समय के प्रमुख कवि हैं – अयोध्यासिंह उपाध्याय हरिऔध और मैथिलीशरण गुप्त ।

5.2.1 श्री अयोध्यासिंह उपाध्याय हरिऔध की काव्यभाषा

हरिऔधजी बहुभाषा पंडित थे । उन्हें संस्कृत, फारसी, उर्दू, बंगला आदि भाषाओं का ज्ञान था । उन्होंने अपनी आरंभिक रचनाएँ ब्रजभाषा में लिखी थी । खडीबोली में रचित 'प्रियप्रवास' उनकी प्रमुख रचना है जिसमें राधा-कृष्ण के प्रेम को अनूठे ढंग से प्रस्तुत किया गया है । उनके द्वारा रचित 'वैदेही वनवास' प्रबंध काव्य में सीता-राम के वियोग को अत्यंत मार्मिकता के साथ चित्रित किया गया है । उनकी अन्य रचाएँ इस प्रकार हैं - 'रस कलस', 'बोलचाल', 'चोखे चौपदे', 'चुभते चौपदे', 'पद्य प्रसून', 'पारिजात', 'प्रेमांबू वारिधि', 'प्रेमांबू प्रस्रवण', 'प्रेमांबू प्रवाह' और 'प्रेम प्रपंच' ।

रस

'प्रियप्रवास' में मुख्य रूप से विप्रलंभ श्रृंगार की प्रधानता है फिर भी बीच-बीच में वीर, रौद्र, भयानक, अद्भुत और शांत रस का प्रासंगिक प्रयोग भी देखा जा सकता है ।

विप्रलंभ श्रृंगार के लिए उदाहरण –

"रो रो चिन्ता-सहित दिन को राधिका थीं बिताती ।
आँखों को थीं सजल रखतीं उन्मना थीं दिखाती ।
शोभा वाले जलद-वपु की हो रही चातकी थी ।

उत्कण्ठा थी परम प्रबला वेदना वर्द्धिता थी ।"[1]

यहाँ राधिका की व्यथा को मार्मिक ढंग से प्रस्तुत किया गया है ।

वीर रस के लिए उदाहरण –

"मारा मल्लों-सहित गज को कंस से पातकी को ।

मेटीं सारी नगर-वर की दानवी-आपदायें ।

छाया सच्चा-सुयश जग में पुण्य की वेलि बोई ।

जो प्यारे ने स-पति दुखिया-देवकी को छुडाया ।"[2]

यहाँ कृष्ण की वीरताओं का वर्णन किया गया है ।

इसी प्रकार अन्य रसों का भी प्रयोग उपलब्ध है ।

अलंकार

हरिऔधजी ने यमक, उत्प्रेक्षा, अपह्नुति, विरोधाभास, रूपक आदि अलंकारों का प्रयोग किया है । उत्प्रेक्षा के लिए उदाहरण –

"यह अभावुकता तम-पुंज की ।

सह सकी न नभस्तल तारका ।

वह विकाश-विवर्द्धन के लिये ।

निकालने नभ-मण्डल की लगी ।"[3]

यहाँ उत्प्रेक्षा द्वारा भावाभिव्यक्ति की गई है ।

---

[1] अयोध्यासिंह उपाध्याय हरिऔध – प्रियप्रवास, पृ 63

[2] अयोध्यासिंह उपाध्याय हरिऔध – प्रियप्रवास, पृ 126

[3] अयोध्यासिंह उपाध्याय हरिऔध – प्रियप्रवास, पृ 7

यमक के लिए उदाहरण –

"वर-वदन विलोके फुल्ल अंभोज ऐसा ।

करतल-गत होता व्योम का चन्द्रमा था ।

मृदु-रव जिसका है रक्त सूखी नसों का ।

वह मधु-मय-कारी मानसों का कहाँ है ।"[4]

यहाँ 'नस' तथा 'मानस' शब्दों द्वारा यमक की सृष्टि की गई है ।

छंद

हरिऔधजी ने चार प्रकार के छंदों का प्रयोग किया है - क) दोहा, सवैया, कवित्त, छप्पय, कुण्डलिया जैसे भक्ति एवं रीति परिपाटी का छंद । ख) शार्दूल विक्रीडित, द्रुतविलंबित, वंशस्थ, मालिनी, मन्दाक्रान्ता, वसंततिलका, शिखरिणी आदि संस्कृत के अतुकांत वर्णवृत्त । ग) तिलोकी, ताटंक, रोला, पादाकुलक, सखी, हरिगीतिका आदि खडीबोली में प्रचलित मात्रिक छंद । घ) द्विपद, चौपदे, छपदे आदि उर्दू शैली के छंद । लेकिन 'प्रियप्रवास' में उन्होंने द्रुतविलंबित, वंशस्थ, वसंततिलका, शार्दूलविक्रीडित, मन्दाक्रान्ता, मालिनी, शिखरिणी जैसे सात वर्णवृत्तों का प्रयोग किया है ।

मन्दाक्रान्ता के लिए उदाहरण –

"ताराओं से खचित नभ को देखती जो कभी हूँ ।

या मेघों में मुदित-वक की पंक्तियाँ दीखती हैं ।

[4] अयोध्यासिंह उपाध्याय हरिऔध – प्रियप्रवास, पृ 75

तो जाती हूँ उमग बँधता ध्यान ऐसा मुझे है ।

मानों मुक्ता-लसित उर है श्याम का दृष्टि आता ।"[5]

यहाँ भावों की अभिव्यक्ति के लिए इस छंद का प्रयोग किया गया है ।

मालिनी के लिए उदाहरण –

"अहह दिवस ऐसा हाय ! क्यों आज आया ।

निज प्रिय सुत से जो मैं जुदा हो रही हूँ ।

अगणित गुणवाली प्राण से नाथ प्यारी ।

यह अनुपम थाती मैं तुम्हें सौंपती हूँ ।"[6]

यहाँ मालिनी छंद का सुंदर प्रयोग से अभिव्यक्ति किया गया है ।

शब्द

हरिऔधजी के 'प्रियप्रवास' संस्कृत गर्भित है । इसमें संस्कृत तत्सम और तद्भव शब्दों का बाहुल्य है । जैसे – भ्रूभंगिमा, कटाक्ष आदि ।

शब्द शक्ति

हरिऔधजी ने द्विवेदी युगीन इतिवृत्तात्मक शैली के कवि होने के कारण अभिधा शक्ति का प्रयोग किया है । उनके काव्य संस्कृत शब्द बहुल है तो भी अभिधा शक्ति के द्वारा इसे समझा जा सकता है । जैसे –

---

[5] अयोध्यासिंह उपाध्याय हरिऔध – प्रियप्रवास, पृ 250

[6] अयोध्यासिंह उपाध्याय हरिऔध – प्रियप्रवास, पृ 53

"दिवस का अवसान समीप था ।

गगन था कुछ लोहित हो चला ।

तरु-शिखा पर थी अब राजती ।

कमलिनी-कुल-वल्लभ की प्रभा ।"[7]

यहाँ सन्ध्या समय को चित्रित किया गया है ।

लक्षणा के लिए उदाहरण –

"क्या देखूँगी न अब कढ़ता इन्दु को आलयों में ।

क्या फूलेगा न अब गृह में पद्म सौंदर्यशाली ।"[8]

यहाँ प्रयुक्त 'इन्दु' और 'पद्म' लाक्षणिक है ।

व्यंजना के लिए उदाहरण –

"प्रशस्त-शाखा तरु-वृन्द की उन्हें ।

प्रतीत होती उस हस्त तुल्य थी ।

स-कामना जो नभ ओर हो उठा ।

विपन्न-पाता-परमेश के लिए ।"[9]

इसका आशय यह है कि उद्धव के हृदय को ब्रज की रमणीक वनस्थली भी मोहित नहीं कर सकती थीं । इसका व्यंग्यार्थ यह है कि श्री कृष्ण के विरह

[7] अयोध्यासिंह उपाध्याय हरिऔध – प्रियप्रवास, पृ 1

[8] अयोध्यासिंह उपाध्याय हरिऔध – प्रियप्रवास, पृ 94

[9] अयोध्यासिंह उपाध्याय हरिऔध – प्रियप्रवास, पृ 114

से जब ब्रज भूमि की प्रकृति श्री विहीन हो गई है तो राधा और अन्य ब्रज वासियों की दशा तो और अधिक शोचनीय होगी ।

काव्य गुण

हरिऔधजी के काव्यों में प्रसाद, ओज और माधुर्य तीनों गुणों का प्रयोग हम देख सकते हैं । प्रसाद गुण के लिए उदाहरण –

"दिवस का अवसान समीप था ।
गगन था कुछ लोहित हो चला ।
तरु-शिखा पर थी अब राजती ।
कमलिनी-कुल-वल्लभ की प्रभा ।"[10]

यहाँ प्रसाद गुण द्वारा भाव की सुंदर अभिव्यक्ति की गई है ।

माधुर्य गुण के लिए –

"विपुल-ललित-लीला-धाम आमोद प्याले ।
सकल-कलित-क्रीडा कौशलों में निराले ।
अनुपम-वनमाला को गले बीच डाले ।
कब उमग मिलेंगे लोक-लावण्य-वाले ।"[11]

यहाँ माधुर्य की उत्पत्ति श्रृंगार के माध्यम से की गई है ।

[10] अयोध्यासिंह उपाध्याय हरिऔध – प्रियप्रवास, पृ 1
[11] अयोध्यासिंह उपाध्याय हरिऔध – प्रियप्रवास, पृ 185

ओज गुण के लिए उदाहरण –

"बढों करो वीर स्व-जाति का भला ।

अपार दोनों विध लाभ है हमें ।

किया स्व-कर्तव्य उबार जो लिया ।

सु-कीर्ति पाई यदि भस्म हो गये ।"[12]

यहाँ वीरों को प्रेरणा देते दिखाई पडते है ।

लोकोक्तियाँ और मुहावरे

उन्होंने 'तृण तोडना, लाल आँखें होना, कलेजा थामना, कलेजा मुँह में आना, कलेजे पर शिला रखना, हाथों में बिकना, रंग में रंगना, हृदय पर साँप लोटना' आदि मुहावरों का प्रयोग किया है ।

5.2.2 मैथिलीशरण गुप्त की काव्यभाषा

हिन्दी साहित्य जगत में श्री मैथिलीशरण गुप्त जी का स्थान सर्वतोन्मुखी है । उन्होंने अनेक मौलिक एवं अनूदित रचनाओं के द्वारा हिन्दी साहित्य भंडार को भरा है । उनके संबंध में आचार्य शुक्लजी ने यों कहा है – "गुप्तजी की प्रतिभा की बडी विशेषता है कालानुसरण की क्षमता अर्थात् उत्तरोत्तर बदलती हुई भावनाओं और काव्य प्रणालियों को ग्रहण करते चलने की शक्ति । इस दृष्टि से उच्च कोटि का न होने पर भी उपयोगिता की दृष्टि से हिन्दी भाषी जनता के

[12] अयोध्यासिंह उपाध्याय हरिऔध – प्रियप्रवास, पृ 150

प्रतिनिधि कवि ये निस्संदेह कहे जा सकते हैं ।"[13] उनके द्वारा रचित देश-प्रेम से ओतप्रोत रचना 'भारत-भारती' काव्य की दृष्टि से महत्वपूर्ण कृति है । उनके द्वारा रचित 'झंकार' और 'साकेत' भाषा की कोमलता, मधुरता तथा सरसता के कारण भी उल्लेखनीय बन पडे हैं ।

भाषा के विकास की दृष्टि से गुप्तजी के काव्यों को तीन कालों में विभक्त कर सकते हैं – आरंभिक काल, माध्यमिक काल और आधुनिक काल । आरंभिक काल के अंतर्गत 'रंग में भंग' से लेकर 'पंचवटी' तक की रचनाएँ आती हैं । 'पंचवटी' से लेकर 'यशोधरा' तक की रचनाएँ मध्यकाल में और बाद की रचनाएँ आधुनिक काल में आती हैं । उनके आरंभिक काल की रचनाओं में खडीबोली, संस्कृत और बोलचाल की भाषाओं का मिश्रण है । भाषा का पूर्ण परिष्कृत रूप 'साकेत' और 'यशोधरा' में देख सकते हैं ।

रस

गुप्तजी के काव्यों में करुण रस की प्रधानता है । जैसे –

"छिन्न भी है, भिन्न भी है, हाय !
क्यों न रोवे लेखनी निरुपाय ?
क्यों न भर आँसू बहावे नित्य ?
सींच करुणे, सरस रख साहित्य !"[14]

[13] आचार्य रामचन्द्र शुक्ल – हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ 588
[14] मैथिलीशरण गुप्त – साकेत, पृ 182

यहाँ करुण रस के द्वारा भावों की अभिव्यक्ति की गई है ।

वियोग श्रृंगार के लिए उदाहरण –

"लाई सखि, मालिने थीं डाली उस वार जब,

- - - -

मैंने कहा - 'रसिक, तुम्हारी रुचि काहे पर ?

बोले - 'देवी, दोनों ओर मेरा रस-वाद है ।

दोनों का प्रसाद-भागी हूँ मैं' हाय आली ! आज

विधि के प्रसाद से विनोद भी विषाद है ! "[15]

इन पंक्तियों में विप्रलंभ श्रृंगार की अभिव्यक्ति की गई है ।

अलंकार

गुप्तजी के काव्य में प्रमुख रूप से मानवीकरण अलंकार का प्रयोग देख सकते हैं । जैसे –

"मेरा रोदन मचल रहा है, कहता है, कुछ गाऊँ,

उधर गान कहता है, रोना आवे तो मैं आऊँ !"[16]

यहाँ रोदन का मानवीकृत रूप हम देख सकते हैं ।

"कहीं सहज तरुतले कुसुम-शय्या बनी,

ऊँघ रही है पडी जहाँ छाया घनी !

[15] मैथिलीशरण गुप्त – साकेत, पृ 297

[16] मैथिलीशरण गुप्त – साकेत, पृ 324

घुस धीरे से किरण लोल दलपुञ्ज में ।"[17]

यहाँ छाया जैसी निर्जीव वस्तु का रमणी के समान क्रिया चेष्टाएँ करना मानवीकरण का सुंदर व्यापार ही है ।

काव्य गुण

गुप्तजी के काव्यों में प्रसाद एवं माधुर्य गुण की अधिकता है । माधुर्य गुण के लिए उदाहरण –

"निरख सखी, ये खंजन आये

फेरे उन मेरे रंजन ने नयन इधर मन भाये !"[18]

यहाँ कवि ने श्रृंगार के माध्यम से माधुर्य गुण की सृष्टि की है ।

शैली

उन्होंने 'पंचवटी', 'साकेत', 'यशोधरा' जैसे प्रबंध काव्यों में पात्रों के चरित्र विकास के लिए कथोपकथन शैली को अपनाया है । जैसे –

"ऊर्मिला यह कह तनिक चुप हो रही,

तब कहा सौमित्र ने कि "यहि सही,

तुम रहो मेरी हृदय-देवी सदा,

मैं तुम्हारा हूँ प्रणय-सेवी सदा ।

फिर कहा – "वरदान भी दोगी मुझे ?

---

[17] मैथिलीशरण गुप्त – साकेत, पृ 153

[18] मैथिलीशरण गुप्त – साकेत, पृ 299

मानिनी, कुछ मान भी दोगी मुझे ?

ऊर्मिला बोली कि "यह क्या धर्म है ?

कामना को छोडकर ही कर्म है !"[19]

यहाँ संवादों के माध्यम से भावों की सफल अभिव्यक्ति हुई है ।

5.3 छायावाद युगीन कवियों की काव्यभाषा

भारतेंदु युगीन कवियों ने रीतिकालीन परंपरा से भिन्न होकर साहित्य में देश-प्रेम की भावना का समावेश किया है । इसके परिणाम स्वरूप भाव और भाषा में परिवर्तन आया । फिर भी भारतेंदु युगीन रचनाओं में रीतिकालीन परंपरा की झलक कहीं-कहीं मिलते हैं । द्विवेदी युग में कविता की भाषा खडीबोली तो बनी लेकिन इसमें मधुरता, मृदुलता एवं स्निग्धता का अभाव रहा है । यह इसलिए है कि इस समय की कविता में इतिवृत्तात्मकता तथा उपदेशात्मकता की प्रमुखता थी । इन अभावों की पूर्ति छायावादी कवियों के आगमन से हुई । उनके द्वारा रचित रचनाओं में अनुभूति एवं अभिव्यक्ति का संयोग देख सकते है । दो महायुद्धों के बीच पोषित हुई छायावादी कविता के अंतर्गत आर्थिक विपन्नता, घुटन, निराशा, पलायन इत्यादि सभी प्रवृत्तियाँ भी सम्मिलित हैं ।

[19] मैथिलीशरण गुप्त – साकेत, पृ 30-31

श्री जयशंकर प्रसाद, सुमित्रानंदन पंत, सूर्यकांत त्रिपाठी निराला और महादेवी वर्मा छायावाद के चार स्तंभ माने जाते हैं । इनके अलावा हरिवंशराय बच्चन, इलाचंद्र जोशी, भगवतीचरण वर्मा आदि भी इसके अंतर्गत आते हैं ।

5.3.1 जयशंकर प्रसाद की काव्यभाषा

छायावाद के युग प्रवर्तक कवि हैं श्री जयशंकर प्रसाद । प्रेम और सौंदर्य के कवि प्रसाद के काव्यों का मूलभूत या केंद्रीय तत्व अनुभूति ही है । प्रकृति और नारी के प्रति उनकी जो अनुभूति पूर्ण संवेदना है 'चित्राधार' में है । मधुर प्राकृतिक परिवेश में मनुष्य की प्रेम भावना के विकास का चित्रण 'प्रेम-पथिक' में है । 'झरना' में उनकी वैयक्तिक अनुभूतियों का चित्रण हुआ है । प्रसादजी का विरह काव्य 'आँसू' भावाभिव्यक्ति की ज्वलंत कृति है । 'कामायनी' उनके वैयक्तिक तथा आनंदवादी जीवन-दर्शन का प्रतीक है ।

खडीबोली भाषा मधुर, कोमल एवं परिमार्जित रूप प्राप्त करने में छायावादी कवियों की महत्वपूर्ण देन हैं । जयशंकर प्रसादजी ने अत्यंत परिष्कृत और परिमार्जित खडीबोली का प्रयोग किया है । उन्होंने आरंभिक रचनाएँ ब्रजभाषा में लिखा हैं और बाद में युगानुकूल खडीबोली में लिखने लगे । लाक्षणिकता प्रसादजी के काव्य की एक प्रमुख विशेषता है ।

प्रसादजी के काव्य-जीवन को भाषा प्रयोग की दृष्टि से तीन भागों में विभक्त कर सकते हैं – आरंभिक (ब्रजभाषा) काल, माध्यमिक (खडीबोली का आरंभिक) काल और अंतिम (प्रौढ) काल । प्रसादजी ने 'चित्राधार' जैसी

आरंभिक रचनाएँ ब्रजभाषा में लिखा है बाद में उन्होंने खडीबोली को अपना लिया । माध्यमिक या खडीबोली के आरंभिक काल में रचित काव्य है 'कानन कुसुम' । इस काल के दूसरे चरण में आकर भाषा में गति और प्रौढता आ गयी और इस भाषा में उन्होंने 'प्रेम-पथिक', 'करुणालय', 'महाराणा का महत्व' तथा 'झरना' की रचना की है । अंतिम या प्रौढ काल में आने पर उनकी भाषा में प्रौढता, मसृणता, चित्रात्मकता, लाक्षणिक प्रयोगों का आधिक्य, भावानुकूल प्रभविष्णुता आदि गुण आ गए हैं जो उनको अन्य कवियों से अलग कर देते है । इस समय की भाषा में विदेशी भाषा शब्दों की कमी और संस्कृत-तत्सम शब्दों की अधिकता भी देख सकते है । 'आँसू', 'लहर' और 'कामायनी' इसका उदाहरण हैं ।

अलंकार

प्रसादजी के काव्यों में अर्थालंकार की प्रमुखता है । उन्होंने इसका प्रयोग सर्वत्र रस या भाव का बिंब ग्राही चित्र अंकित करने के लिए अथवा पाठकों के सम्मुख वस्तु का यथोचित स्वरूप उपस्थित करने के लिए किया है ।

'कामायनी' में अनुप्रास के विविध रूप उपलब्ध हैं । जैसे –

"कोकिल की काकली वृथा ही अब कलियों पर मँडराती ।"[20]

[20] जयशंकर प्रसाद – कामायनी, पृ 287

"सुरा सुरभिमय वदन अरुण वे
नयन भरे आलस-अनुराग;
कल कपोल था जहाँ बिछलता
कल्पवृक्ष का पीत पराग ।"[21]

"बाहर-भीतर उन्मुक्त सघन,
था अचल महा नीला अंजन;
भूमिका बनी वह स्निग्ध मलिन,
थे निर्निमेष मनु के लोचन;"[22]

यहाँ वृत्यनुप्रास, छंदानुप्रास तथा श्रुत्यनुप्रास का प्रयोग क्रमश: देख सकते है । अनुप्रास के अलावा उन्होंने यमक, श्लेष, उपमा, रूपक आदि अलंकारों का भी प्रयोग किया है ।

छायावादी कविताओं में पाश्चात्य अलंकारों का भी विशेष प्रयोग मिलते हैं । उसमें प्रमुख अलंकार इस प्रकार है –

क) मानवीकरण का विशेष महत्व है जिसके द्वारा कविता में मूर्तिमत्ता, वक्रता एवं गहनता आती है । प्रसादजी की कविताओं में इसका प्रयोग देख सकते है । जैसे –

[21] जयशंकर प्रसाद – कामायनी, पृ 21
[22] जयशंकर प्रसाद – कामायनी, पृ 263

"धीरे-धीरे हिम-आच्छादन
हटने लगा धरातल से;
जगीं वनस्पतियाँ अलसाई
मुख धोती शीतल जल से ।"[23]

यहाँ वनस्पतियों का मानवीकरण किया गया है ।

ख) विशेषण-विपर्यय – यहाँ लक्षणा द्वारा कथन को विशेष अर्थगर्भित और गंभीर बनाते है । जैसे –

"जलधि-लहरियों की अँगडाई
बार-बार जाती सोने ।"[24]

"खुली उसी रमणीय हृदय में
अलस चेतना की आँखें ।"[25]

"एक करुणामय सुंदर मौन
और चंचल मन का आलस्य ।"[26]

यहाँ अर्थ की सुंदर अभिव्यक्ति विशेषण-विपर्यय अलंकार द्वारा व्यक्त किया गया है ।

[23] जयशंकर प्रसाद – कामायनी, पृ 33
[24] जयशंकर प्रसाद – कामायनी, पृ 33
[25] जयशंकर प्रसाद – कामायनी, पृ 45
[26] जयशंकर प्रसाद – कामायनी, पृ 55

ग) तीसरा अलंकार है 'ध्वन्यर्थ व्यंजना' जिसे अंग्रेज़ी में 'ओनोमेटोपोइपा' कहते है। इसमें ध्वनियों के द्वारा प्रसंग एवं अर्थ का उद्बोधनात्मक चित्र उपस्थित करता है । इसमें यमक और अनुप्रास का आभास होने पर भी पाठकों का ध्यान सामूहिक ध्वन्यात्मकता की ओर बढ़ता है जिसके द्वारा ध्वनि-चित्र उत्पन्न होता है । इस प्रकार ध्वनि प्रधानता के कारण इसे एक पृथक अलंकार माना जाता है । इसका व्यापक प्रयोग छायावादी कवियों ने किया है । जैसे –

"धीरे-धीरे लहरों का दल,
तट से टकरा होता ओझल;
छप-छप का होता शब्द विरल,
थर-थर काँप रहती दीप्ति तरल ।"[27]

यहाँ ध्वनि की प्रमुखता या ध्वन्यात्मकता की प्रमुखता से अर्थ की अभिव्यक्ति हुई है ।

छंद

कामायनी में सर्वप्रमुख रूप में 'ताटंक' छंद का प्रयोग किया है जिसका प्रयोग चिंता, आशा, स्वप्न और निर्वेद सर्गों में हुआ है । कवि ने इसके प्रयोग में एकरूपता का ध्यान न रखा है । कामायनी का पहला छंद वीर छंद है जो इसका परिवर्तित रूप है । उसी प्रकार श्रद्धा में श्रृंगार छंद, काम और लज्जा में

[27] जयशंकर प्रसाद – कामायनी, पृ 258

पादाकुलक छंद, वासना सर्ग में मदन या रूपमाला, संघर्ष सर्ग में रोला और कर्म सर्ग में सार या ललित पद का प्रयोग हुआ है । ईर्ष्या और दर्शन सर्ग में पादाकुलक और पद्धति के योग से एक नूतन छंद का प्रयोग किया है । आनंद सर्ग में आनंद छंद का प्रयोग किया गया है और यह 'आँसू' छंद के नाम से प्रसिद्ध है । उनके द्वारा प्रयुक्त ताटंक छंद के लिए उदाहरण –

"निकल रही थी मर्म-वेदना,
करुणा विकल कहानी-सी ।"[28]

यहाँ भाव की सुंदर अभिव्यक्ति के लिए ताटंक का प्रयोग किया है ।

"हिमगिरि के उत्तुंग शिखर पर,
बैठ शिला की शीतल छाँह ।"[29]

यहाँ ताटंक के परिवर्तित रूप 'वीर' छंद का प्रयोग उन्होंने किया है ।

शब्द

प्रसाद की अपनी रचनाओं में चित्रोपम शब्दों का प्रयोग किया है । जैसे –

"हाहाकार हुआ क्रंदनमय
कठिन कुलिश होते थे चूर;
हुए दिगंत बधिर, भीषण रव
बार-बार होता था क्रूर ।

[28] जयशंकर प्रसाद – कामायनी, पृ 14
[29] जयशंकर प्रसाद – कामायनी, पृ 13

दिग्दाहों से धूम उठे, या

जलधर उठे क्षितिज-तट के !"[30]

यहाँ कवि ने प्रलय की भयंकरता, बिजली की कडाहट, मेघों का गर्जन-तर्जन, हाहाकार एवं करुण क्रंदन का अत्यंत सजीव वर्णन शब्दों के द्वारा ही किया है ।

द्विवेदी युगीन खडीबोली में अभिधा प्रधान विचारों को ही व्यक्त किया जाता था । लेकिन सूक्ष्म भावों को व्यक्त करने के लिए छायावादी कवियों ने लाक्षणिक एवं प्रतीकात्मक शब्दों को प्रयुक्त किया । कामायनी में भी अनेक ऐसे शब्द मिलते है । जैसे –

"कुसुमित कुंजों में वे पुलकित

प्रेमालिंगन हुए विलीन,

मौन हुई हैं मूर्च्छित तानें

और न सुन पडती अब बीन ।"[31]

यहाँ प्रयुक्त 'प्रेमालिंगन का विलीन' होने से तात्पर्य कुंजों का प्रेमियों से शून्य हो जाना है और उसी प्रकार 'तानों का मौन होना' मतलब गाने-बजाने वालों के साथ-साथ संगीत ध्वनि का समाप्त हो जाना है । इसके अलावा 'अनंत नीलिमा, आँख की भूख, तरल आकाक्षा, शिथिल सुरभि, एकांत कोलाहल, दीपक का स्वर, उज्ज्वल वरदान, मतवाली सुन्दरता' आदि उनके द्वारा प्रयुक्त लाक्षणिक पद हैं ।

[30] जयशंकर प्रसाद – कामायनी, पृ 23

[31] जयशंकर प्रसाद – कामायनी, पृ 20

शब्द-शक्ति

छायावादी कवियों ने सूक्ष्म भावों और विचारों को प्रस्तुत करने के लिए अभिधा से ज़्यादा लक्षणा एवं व्यंजना का प्रयोग किया है । कामायनी में भी लक्षणा – व्यंजना की प्रमुखता है फिर भी उसमें अभिधा भी दृष्टिगत है । अभिधा के लिए उदाहरण –

"और सोचकर अपने मन में,
जैसे हम हैं बचे हुए –
क्या आश्चर्य और कोई हो
जीवन-लीला रचे हुए ।"[32]

यहाँ अभिधा द्वारा भावाभिव्यक्ति हुई है

लक्षणा शब्दशक्ति के लिए उदाहरण –

"नारी का वह हृदय ! हृदय में
सुधा सिंधु लहरें लेता,
बाड़व-ज्वलन उसी में जल कर
कंचन-सा जल रँग देता ।"[33]

[32] जयशंकर प्रसाद – कामायनी, पृ 43
[33] जयशंकर प्रसाद – कामायनी, पृ 219

यहाँ कवि नारी के हृदय में जो मधुरिमा, गंभीरता और शांति है उसको चित्रित करने के लिए 'सुधासिंधु' का प्रयोग किया है और प्रेम की विरहावस्था के लिए 'काँचन-वर्ण' का प्रयोग किया है ।

व्यंजना के लिए उदाहरण –

"अरुण जलज के शोण कण से नव तुषार के विन्दु-भरे,

मुकुर चूर्ण बन रहे प्रतिच्छवि कितनी साथ लिए बिखरे ! "[34]

यहाँ विरहिणी श्रद्धा की रुदन करती हुई लाल-लाल आँखों के लिए 'अरुण जलज' का प्रयोग किया गया है और उसके आँसुओं के लिए 'नव तुषार बिन्दु' कहा गया है ।

काव्य गुण

कामायनी में माधुर्य गुण की प्रधानता है और ओज से ज़्यादा प्रसाद गुण विद्यमान है ।

"मधु बरसती विधु-किरन हैं काँपती सुकुमार;

पवन में है पुलक, मन्थर चल रहा मधु-भार ।"[35]

यहाँ माधुर्य गुण की प्रधानता है ।

[34] जयशंकर प्रसाद – कामायनी, पृ 191

[35] जयशंकर प्रसाद – कामायनी, पृ 99

ओज गुण के लिए उदाहरण –

"उठा तुमुल रणनाद, भयानक हुई अवस्था,

बढ़ा विपक्ष-समूह, मौन पददलित व्यवस्था ।

आहत पीछे हटे, स्तम्भ से टिक कर मनु ने

श्वास लिया, टंकार किया दुर्लक्ष्यी धनु ने ।"[36]

यहाँ मनु की संघर्षभरी मानसिकता को व्यक्त किया गया है ।

प्रसाद गुण के लिए उदाहरण –

"जल पीकर कुछ स्वस्थ हुए से

लगे बहुत धीरे कहने ।

-- - -

मुक्त नील नभ के नीचे या

कहीं गुहा में रह लेंगे,

अरे झेलता ही आया हूँ,

जो आवेगा सह लेंगे ।"[37]

यहाँ भावों की सुंदर अभिव्यक्ति प्रसाद गुण द्वारा संपन्न हुई है ।

[36] जयशंकर प्रसाद – कामायनी, पृ 212

[37] जयशंकर प्रसाद – कामायनी, पृ 231

काव्यदोष

प्रसादजी के काव्यों में कहीं-कहीं दोष भी आ गए है ।

"काँटों ने भी पहना मोती"[38]

यहाँ 'पहना' के बदले 'पहने' का प्रयोग होना चाहिए । 'पहना' शब्द के प्रयोग से यहाँ वचन दोष है ।

"क्यों व्यथित व्योम-गंगा-सी
छिटका कर दोनों छोरें ।"[39]

यहाँ 'दाह' का स्त्री लिंग प्रयोग होने से लिंग दोष है ।

"तुम्हें तृप्ति-कर सुख के साधन सकल बताया ।"[40]

यहाँ 'बताया' शब्द के बदले 'बताये' होना चाहिए । यहाँ वचन दोष है ।

5.3.2 सुमित्रानंदन पंत की काव्यभाषा

सुमित्रानंदन पंतजी हिन्दी साहित्य में 'प्रकृति के सुकुमार कवि' नाम से जाने जाते हैं । उनकी रचनाओं में प्रकृति-प्रेम, बाल-जीवन की सुकुमार आकांक्षाओं के उद्गार एवं प्रकृति के प्रति जिज्ञासा तथा रहस्यभावना के दर्शन होते हैं । 'वीणा' से लेकर 'गुंजन' तक की रचनाओं में कल्पना का सूक्ष्म प्रसार है तो बाद की रचनाओं में मार्क्स के भौतिकवादी जीवन दर्शन है । 'ग्राम्या' मं

[38] जयशंकर प्रसाद – कामायनी, पृ 18
[39] जयशंकर प्रसाद – कामायनी, पृ 8
[40] जयशंकर प्रसाद – कामायनी, पृ 211

उनके गाँधीवादी दृष्टिकोण परिलक्षित है । अरविन्द दर्शन की झलक 'स्वर्ण किरण', 'उत्तरा', 'अतिमा', 'वाणी' जैसी कृतियों में है । 'लोकायतन' में उन्होंने युगीन लोक-चेतना को वाणी दी है । उनकी रचनाओं में कल्पना एवं दार्शनिक अभिव्यंजना की प्रधानता है ।

अलंकार

पंतजी ने अपनी काव्य-कृतियों में अनेक अलंकारों का प्रयोग किया है । प्रदीप के लिए उदाहरण –

"पुष्पों से भी श्री कोमल तुम,
पुष्प करूँ क्या अर्पित ? "[41]

यहाँ सीताजी के शरीर की छवि को पुष्पों से ज़्यादा कोमल और सुंदर बताया गया है ।

मानवीकरण के लिए उदाहरण –

"क्या समीर ने लिपटच, विटप को
किया पल्लवों में रोमांचित ?
आँगडाई ले बाँह खोलना
सिखलाया, डालों को कंपित !
क्या किरणों ने चूम, खिलाए
रंग भरे फूलों के आनन ?"[42]

[41] सुमित्रानंदन पंत – स्वर्ण किरण, पृ 160

इसमें 'समीर' तथा 'किरणों' को नायक के रूप में चित्रित कर मानवीय क्रिया-कलापों एवं मानव-हृदय के स्पन्दन का अनुभव प्रस्तुत किया गया हैं ।

सीनिक्डॉच के लिए उदाहरण –

"मध्ययुगी भारत का कुंठित उपचेतन मन

उमड़ रहा अब बाहर, जर्जर गो पंजर-सा ।"[43]

यहाँ 'भारतवासियों' के अर्थ में 'भारत' शब्द का प्रयोग किया है । यानी अंग का प्रयोग अंगी के लिए होने के कारण सीनिक्डॉच अलंकार है ।

पर्यायोक्ति के लिए उदाहरण –

"मैं जिस वट की आशी: छाया में रहता, वह

सहसा अन्तर्धान हो गया-मेरे जीवन के,

किशोर मन के स्वप्नों को झूलिसात कर !"[44]

यहाँ उन्होंने अपने पिता की मृत्यु पर दु:ख व्यक्त किया है ।

उपर्युक्त अलंकारों के अलावा पंतजी ने अपह्नुति, परिसंख्या, विशेषोक्ति, यथासंख्यक आदि अलंकारों का भी प्रयोग किया है ।

---

[42] सुमित्रानंदन पंत – उत्तरा, पृ 105

[43] सुमित्रानंदन पंत – किरण-वीणा, पृ 216

[44] सुमित्रानंदन पंत – किरण-वीणा, पृ 197

छंद

पंतजी का छंद शास्त्रज्ञान बहुत ही व्यापक और विस्तृत है । अत: कहा जा सकता है कि पंतजी ने रीतिकालीन कवि आचार्य केशव से ज़्यादा छंदों पर काम किया है । उन्होंने अनेक छंदों को गढ़कर नामकरण भी किया है जैसे – अखंडक, अतिमा, अमंद, अर्द्धमात्र, उत्कंठक, किरण, त्रिवेणी, नवक, पंचानन, महान, महाराय, महाराधिका, मातृ, यमुना, विपद्धरि, शृंग, सुमन, स्वाधीन, सुलक्षणक और पंत ।

उनके द्वारा प्रयुक्त रोला छंद के लिए उदाहरण –

"मैं पूषण हूँ धरती का ज्योतिर्मय ईश्वर
स्वर्ण रजत का चिर प्रकाश बरसाता भू पर !
जब धरती सोती तमिस का दे अवगुंठन,
मैं सुधांशु बन भरता दिव स्वप्नों से जन मन !"[45]

यहाँ भावाभिव्यक्ति के लिए रोला छंद का प्रयोग किया गया है ।

ताटंक छंद के लिए उदाहरण –

"धरती के पुलिनों में उसकी आकांक्षाएँ उद्वेलित
फिर फिर उठतीं गिरतीं ऊपर के प्रकाश से आंदोलित ।
अच्छा हो, भू पर ही विचरे यह भू का प्रेमी मानव,
मधुर स्वर्ग आकर्षण से नित होता रहे तरंगित भव !"[46]

[45] सुमित्रानंदन पंत – स्वर्ण किरम, पृ 47

यहाँ ताटंक छंद द्वारा अर्थ व्यक्त किया गया है ।

शब्दशक्ति

अभिधा के लिए उदाहरण –

"बालकों-सा ही तो में हाय !

याद कर रोता हूँ अनजान;

न जाने होकर भी असहाय

पुन: किससे करता हूँ मान ?"[47]

यहाँ अर्थ की सफल अभिव्यक्ति अभिधा द्वारा संपन्न हुआ है ।

लक्षणा के लिए उदाहरण –

"दीनता के ही विकम्पित पात्र में

दान बढ़कर छलकता है प्रीति से ।"[48]

यहाँ लक्षणा का सशक्त प्रयोग हुआ है ।

व्यंजना के लिए उदाहरण –

"कमल पर जो चारु दो खंजन, प्रथम

पंख फडकाना नहीं थे जानते,

चपल चोखी चोट कर अब पंख की

वे विकल करने लगे हैं भ्रमर को ।"[49]

---

[46] सुमित्रानंदन पंत – स्वर्ण किरण, पृ 46

[47] सुमित्रानंदन पंत – स्वर्ण किरण, पृ 21

[48] सुमित्रानंदन पंत – वीणा-ग्रंथि, पृ 102

इसका अर्थ यह है कि जो किशोर प्रेमिका पहले अपने प्रेमी को देखकर तनिक संकेतों से भी बातचीत करना नहीं जानती थी, वही अब इतनी चंचल, चपल एवं यौवनोन्माद से परिपूर्ण हो गई है कि अपने खंजन रूपी नेत्रों से ऐसे मादक-मधुर संकेत अपने प्रियतम से करती है कि आज उसका प्रियतम भी उसके लिए विकल हो उठा है ।

काव्यगुण

पंतजी की रचनाओं में ओज एवं प्रसाद गुण की कमी है । पद लालित्य पर विशेष ध्यान देकर उन्होंने माधुर्य गुण संपन्न काव्य रचे हैं । इसके लिए उन्होंने रसों और वर्णों के शास्त्रीय नियमों का खंडन भी किया है ।

"बदल रहा अब मानव ईश्वर-बदल रहा अब
मानव तर मानवता का रूपांतर कर !"[50]

यहाँ उन्होंने शब्दावृत्ति द्वारा माधुर्य का समावेश किया है ।

प्रतीक योजना

छायावादी कवियों ने प्रकृति से गृहीत प्रतीकों का प्रयोग किया है जैसे कुसुम, किरण, आकाश, छाया, ज्योति, ज्योत्सना, तार, तारा, दर्पण, नभ, नक्षत्र, सुरा, मुरली, बादल, वसंत आदि ।

[49] सुमित्रानंदन पंत – वीणा-ग्रंथि, पृ 108
[50] सुमित्रानंदन पंत – अतिमा, पृ 58

"सच है, प्रिये, शून्य था शशि बिन

तारा भरा अनंत दिक् गगन !"[51]

"लहरा उठा हृदय में सागर,

वाष्प घनों से गये नयन भर !"[52]

इन पंक्तियों में प्रिया के मुख के लिए 'शशि' तथा अक्षुओं के लिए 'वाष्प घन' जैसे अप्रस्तुत प्रतीकों का प्रयोग किया गया है । लेकिन ये दोनों सादृश्य-विधान तक सीमित नहीं है बल्कि राम के मन की उदासीनता एवं सीता के हृदय-सागर के दु:ख से परिपूर्ण होकर उद्वेलित होने को भी सूचित करते हैं ।

"स्वर्ण बालुका किसने बरसादी रे जगती के मरुस्थल में,

सिकता पर स्वर्णांकित कर स्वर्गिक आभा जीवन मृग जल में ।

स्वर्ण रेणु मिल गई न जाने कब धरती की मर्त्य धूलि से,

चित्रित कर, भर दी रज में नव जीवन ज्वाला अमर तूलि से !"[53]

यहाँ 'स्वर्ण बालुका' दिव्य चेतना का, 'मरुस्थल' भाव-दाहों से दग्ध भौतिक मन का और 'ज्वाला' भौतिक मन से वासना को दग्ध करनेवाले महाचेतन का प्रतीक है ।

---

[51] सुमित्रानंदन पंत – स्वर्ण किरण, पृ 173

[52] सुमित्रानंदन पंत – स्वर्ण किरण, पृ 166

[53] सुमित्रानंदन पंत – स्वर्ण किरण, पृ 1

5.3.3 सूर्यकांत त्रिपाठी निराला की काव्यभाषा

हिन्दी साहित्य में निरालाजी का आगमन क्रान्तिकारी कवि के रूप में हुआ था । क्रान्तिकारी, स्वच्छन्दतावादी, छायावादी, रहस्यवादी जैसे रूपों में वे साहित्य में निखरे हैं । प्राचीन परंपरागत रूढ़ियों का विरोध उन्होंने किया है साथ ही साथ नवीन प्रयोगों द्वारा काव्य-कला को संपन्न भी किया है । ये नवीनता उपमा, कल्पना, विचार, भाव, विषय एवं अभिव्यंजना शैली में देख सकते है । छंद के बंधन को तोड़कर मुक्त छंद का जो प्रयोग उन्होंने किया है वह हिन्दी साहित्य के लिए सर्वथा नवीन है । सहृदयता तथा बौद्धिकता का समावेश उनकी रचनाओं में है । 'जुही की कली', 'शेफालिका', 'तुम और मैं', 'वनवेला', 'नर्गिस', 'यमुना के प्रति' आदि रचनाओं में छायावादी कल्पना तथा स्वच्छंद वृत्ति का स्पष्ट रूप मिलते है । उनकी अंतिम रचनाओं में प्रगतिवादी विचारधारा की प्रधानता है । छायावादी कविता में उन्होंने सौंदर्य एवं कल्पना को चित्रित किया है तो प्रगतिवाद में युग के यथार्थ को प्रस्तुत किया है ।

निराला के काव्य में भाषा के विविध रूप मिलते हैं जैसे – जन सुलभ भाषा, महा काव्योचित पांडित्यमयी (विशिष्ट) भाषा, दुरूह और दीर्घ सामासिक भाषा, नाद प्रधान भाषा, उर्दू-फारसी अथवा अंग्रेज़ी के शब्दों से मिश्रित भाषा ।

जनसुलभ भाषा मुख्य रूप में अभिधात्मक होती है । इसमें व्याकरणिक नियमों का पालन न होकर मुख-सुख के आधार पर प्रचलन और व्यवहार होता है । लेकिन इसमें बनावट, बन्धन तथा चमत्कार-प्रदर्शन का अभाव नहीं होता

है । साधारण की भाषा को कलात्मक रूप – प्रतीक, व्यंग्य, नाटकीयता, बिम्ब, छंद – देने पर वह जनभाषा का सर्जनात्मक प्रयोग माना जाएगा । भाषा का यह प्रयोग 'कुक्कुरमुत्ता' में देख सकते है ।

"अबे, सुन बे, गुलाब,
भूल मत जो पाई खुशबू, रंगोआब,
खून चूसा खाद का तूने अशिष्ट,
डाल पर इतराता है केपिटलिस्ट !"[54]

यहाँ भाषा को अनपढ़ जनता की बोली के निकट रखने की कोशिश की गई है ।

भावावेग और भाव गरिमा की प्रमुखतावाले महाकाव्योचित साहित्य भाषा में कहीं-कहीं गहरे प्रभाव की जटिलता भी मिलते है । उनके द्वारा प्रयुक्त अलंकृत तथा कोमल भाषा के लिए उदाहरण है –

"सोती शांत सरोवर पर उस अमल-कमलिनी-दल में –
सौंदर्य-गर्विता-सरिता के अतिविस्तृत वक्ष: स्थल में –
धीर वीर गंभीर शिखर पर हिमगिरि-अटल-अचल में –
उत्ताल-तरंगाघात-प्रलय-घन-गर्जन-जलधि प्रबल में ।"[55]

यहाँ भाषा की कोमलता स्पष्ट द्योतित है ।

[54] निराला – कुक्कुरमुत्ता, पृ 49
[55] निराला – अपरा, पृ 23

निरालाजी ने सामासिक शैली का प्रयोग शाब्दिक मितव्ययता तथा अर्थ-गौरव की दृष्टि से किया है । उनकी भाषा में इसका प्रयोग ज़्यादा मिलते हैं । नाद सौंदर्यपूर्ण संगीत की छटा समास बहुला पदावली में अत्यंत महत्वपूर्ण है पर संस्कृत निष्ठ समास शैली में क्लिष्टता का दोष आना स्वाभाविक है । लंबे-लंबे समासों के प्रयोग से दुरूहता के दोष भी आ जाते है जैसे –

"अनिमेष-राम-विश्वजिद्दिव्य-शर-भंग-भाव,

विद्धांग-बद्ध-कोदण्ड-मुष्टि-खर-रुधिर-स्राव ।"[56]

यहाँ अर्थ की अभिव्यक्ति लंबे लंबे समासों से किया गया है अत: पाठक सीधे अर्थ ग्रहण नहीं कर सकते ।

रस

उनकी कविताओं में रस का सुंदर परिपाक हुआ है । जैसे –

"बह चली एक अज्ञात वात

चूमती केश-मृदु नवल गात,

देखती सकल निष्कलक-नयन

तू, समझा मैं तेरा जीवन ।"[57]

यहाँ श्रृंगार रस का मनोरम चित्र मिलते हैं ।

[56] निराला – राम की शक्तिपूजा, पृ 92

[57] निराला – राग-विराग, पृ 87

"धन्ये, मैं पिता निरर्थक था,

कुछ भी तेरे हित न कर सका!

जाना तो अर्थागमोपाय,

पर रहा सदा संकुचित-काव्य ।"[58]

यहाँ करुण रस का आभास मिलता है ।

इसी प्रकार निरालाजी ने अन्य रसों का भी सुंदर प्रयोग किया है ।

अलंकार

उन्होंने अपने काव्यों में वैविध्यपूर्ण अलंकारों का प्रयोग किया है । उदाहरण के लिए –

"प्राण, तुम पावन सावन-गात;

जलज-जीवन-यौवन अवदात

मृदु बूँदों चितवन की लड़ियाँ,

केश मेघ, मुख, पलक अंखडियाँ

प्रमन चारु चिंतन की घडियाँ

जल भर भूमि सुजात, प्राण, तुम ।"[59]

यहाँ मानवीकरण अलंकार का प्रयोग दृष्टव्य है ।

---

[58] निराला – राग-विराग, पृ 80

[59] निराला – सांध्यकाकली, पृ 17

"कलियों की मुद्रित पलकों में
सिसक रही जो गंध अधीर
जिसकी आतुर दुख-गाथा पर
दुलकाते दृग-पल्लव नीर ।"[60]

यहाँ हम विशेषण-विपर्यय अलंकार का प्रयोग देख सकते है ।

उसी प्रकार निरालाजी ने अनुप्रास, उपमा, रूपक आदि अलंकारों का भी समुचित प्रयोग किया है ।

छंद

छंद के संबंध में निरालाजी का अपना प्रयोग विधि या रीति है । उन्होंने मुक्त छंद का व्यापक प्रयोग करके हिन्दी साहित्य में उनका अलग स्थान प्राप्त किया है । उदाहरण के लिए –

"विजन-वन-वल्लरी पर
सोती थी सुहाग-भरी-स्नेह-स्वप्न-मग्न
अमल-कोमल-तनु तरुणी-जुही की कली,
दृग बन्द किये, शिथिल-पत्रांक मं ।"[61]

यहाँ उन्होंने स्वच्छंद छंद का प्रयोग किया है ।

[60] निराला – अपरा, पृ 95
[61] निराला – राग-विराग, पृ 48

"कहाँ ?

मेरा अधिवास कहाँ ?

क्या कहा ? रुकती है गति जहाँ ?

भला इस गति का शेष

संभव है क्या,

करुण स्वर का जब मुझ में

रहता है आवेश ?"[62]

यहाँ प्रत्येक चरण में मात्राएँ विषम होती है परन्तु तुक मिलते-जुलते हैं । यानी यहाँ विषम मात्रिक सान्यानुप्रास का प्रयोग किया गया है ।

प्रतीक योजना

"टूटे सकल बन्ध

कलि के, दिशा-ज्ञान-गत हो बहे गन्ध ।"[63]

यहाँ कलि के खिलने को क्रान्तिकारी परिवर्तनों का प्रतीक मान लिया गया है ।

"अभी न होगा मेरा अन्त

अभी-अभी ही तो आया है

मेरे वन में मृदुल वसन्त –

अभी न होगा मेरा अन्त ।"[64]

---

[62] निराला – परिमल, पृ 62

[63] निराला – राग-विराग, पृ 77

यहाँ 'वन' जीवन का और 'वसंत' उल्लासपूर्ण यौवन का प्रतीक है ।

इस प्रकार प्रतीकों का सुंदर प्रसंगानुकूल प्रयोग उन्होंने किया है ।

बिम्ब योजना

"चमका हीरक-हार हृदय का,

पाया अमर प्रसार प्रणय का,

मिला तत्व निर्मल परिणय का,

छोटी स्नेह-भरी ।"[65]

यहाँ कुन्दकली के माध्यम से प्रतीक्षारत विरहिणी के बिम्ब की योजना की है ।

इस प्रकार बिम्बों का प्रयोग उनके काव्यों में दृष्टिगत है ।

लोकोक्तियाँ और मुहावरे

निरालाजी ने मुहावरों के प्रयोग द्वारा भाषा को अधिक प्रौढ़ और हास्य विनोद प्रिय बनाया है । जैसे –

"गली-गली हाथ पसारे, फिरते हैं मारे-मारे ।"[66]

"रहे चुपचाप मन मारकर हाथ पर रखकर;

गई अपनी सही नाप ।"[67]

---

[64] निराला – राग-विराग, पृ 63

[65] निराला – गीतिका, पृ 19

[66] निराला – बेला, पृ 135

[67] निराला – बेला, पृ 137

यहाँ 'हाथ-पसारना', 'मन मारकर हाथ पर रखना' जैसे मुहावरों के प्रयोग द्वारा अर्थ की अभिव्यक्ति की है । इसके अलावा उन्होंने 'ठगी सी, दो टूक कलेजे', 'रोम-रोम में समाई', 'हृदय की आँखें', 'अन्धे की दिवस', 'दाह है गली नहीं', 'सोहरा समर का बांध', 'दुख के पीर टूटे' आदि अनेक मुहावरों का प्रयोग किया है ।

5.3.4 महादेवी वर्मा की काव्यभाषा

श्री जयशंकर प्रसाद, पंत और निराला के बाद आनेवाली छायावादी कवयित्री है महादेवी वर्मा । वे छायावादी विचारधारा के रहस्यवादी कवयित्री है । पीडा उनके लिए प्रिय विषय रहा है । अत: वे वेदना की गायिका हैं । बौद्ध दर्शन की करुणा और वेदांत के मायावाद से संपृक्त होकर उनकी वेदना प्रकट हुई है । उन्होंने प्रकृति के द्वारा प्रेमी-प्रेमिका के रूप में रहस्य भावना को व्यक्त किया है । इसलिए उनके गीतों में प्रकृति का भव्य रूप मिलते है । अनुभूति की गहराई और हृदय पक्ष की प्रधानता से उनके संगीत और कल्पना प्रधान गीत पूर्ण तथा संश्लिष्ट बने है और भाषा में वक्रता भी आयी है । डॉ.शिवकुमार मिश्रजी के अनुसार - "प्रसार तथा वैविध्य की अपेक्षा महादेवी के काव्य ने वस्तुत: गहराई अधिक सूचित की है और यह गहराई ही छायावाद के अन्य

कवियों की अपेक्षा उन्हें और उनके काव्य को एक विशिष्टता प्रदान करती है ।"[68] इससे उनके काव्य की विशेषता स्पष्ट होती हैं ।

महादेवीजी की भाषा न तो निराला की तरह संधि समासयुक्त तथा अनुप्रासमय व्यंजन-संगीत उत्पन्न करनेवाली औदात्यमयी भाषा है न ही पंतजी की तरह राशि राशि में चयन और परिष्कार से निर्मित सौंदर्यमयी भाषा है बल्कि सहज भाषा है । महादेवी ने जिस खडीबोली भाषा को चुना है वह प्रांजल, संगीतात्मक, मधुर, कोमल तथा संवेदनशील भी है ।

रस

महादेवीजी के काव्य में रहस्यानुभूति (अलौकिक प्रणय), करुणा, दु:खवाद, निर्वेद आदि भावात्मक प्रवृत्तियों की प्रमुखता है । उनके द्वारा प्रयुक्त प्रणय विरह की अभिव्यक्ति का स्थायी भाव रति न होकर अद्वैत की भावना होने के कारण उसे श्रृंगार की संज्ञा नहीं दे सकते । अत: उनके काव्य में शांत रस की प्रमुखता है । जैसे –

"मैं तुमसे हूँ एक, एक, एक हैं
जैसे रश्मि प्रकाश,
मैं तुमसे हूँ भिन्न, भिन्न ज्यों
घन से तड़ित्-विलास ।"[69]

[68] डॉ.शिवकुमार मिश्र – नया हिन्दी काव्य, पृ 88
[69] महादेवी वर्मा – संधिनी, पृ 39

"क्या पूजन क्या अर्चन रे ?

उस असीम का सुंदर मंदिर मेरा लघुतम जीवन रे !"[70]

यहाँ उन्होंने अपनी रहस्यवादी अनुभूतियों को शान्त रस में स्थान दिया है ।

अलंकार

महादेवी ने प्रमुख रूप में सांग रूपक अलंकार का प्रयोग किया है । जैसे –

"किरण-नाल पर घन के शतदल,

कलरव-लहर विहग बुद्-बुद् चल,

क्षितिज-सिंधु को चली चपल

आभा-सरि अपना उर उमगा, ले !"[71]

सांग रूपक अलंकार का प्रयोग इसमें देख सकते है ।

मानवीकरण अलंकार के लिए उदाहरण –

"नव कुन्द-कुसुम से मेघ-पुँज,

बन गये इन्द्रधनुषी वितान,

दो मृदु कलियों की चटक, ताल,

हिम-बिन्दु नचाती तरलप्राण

धो स्वर्ण गात में तिमिर गात,

दुहराते अलि निशि-मूक तान !"[72]

---

[70] महादेवी वर्मा – यामा, पृ 197

[71] महादेवी वर्मा – दीपशिखा, पृ 100

यहाँ मानवीकरण अलंकार का सुंदर प्रयोग हुआ है ।

इसके अलावा उन्होंने समासोक्ति, विशेषोक्ति, उत्प्रेक्षा, अनुप्रास आदि अलंकारों का भी प्रयोग किया है ।

छंद

महादेवीजी के काव्यों में छंद-विविधता का अभाव है । उन्होंने मुख्य रूप से आँसू छंद प्रयोग किया है । इसके अलावा सोलह मात्रा के मात्रिक छंद और दुर्मित सवैया भी मिलते है ।

"दूर है अपना लक्ष्य महान,
एक जीवन पग एक समान;
अलक्षित परिवर्तन की डोर,
खींचती हमें इष्ट की ओर ।"[73]

इसमें आँसू छंद का प्रयोग मिलते हैं ।

"जिसको मरुभूमि समुद्र हुआ,
उस मेघव्रती की प्रतीति नहीं,
-- - -
तू अकिंचन भिक्षुक है मधु का,
अलि तृप्ति कहाँ जब प्रीति नहीं !"[74]

[72] महादेवी वर्मा – संधिनी, पृ 16
[73] महादेवी वर्मा – रश्मि, पृ 29

यहाँ दुर्मिल सवैया के द्वारा भावाभिव्यक्ति हुई है ।

शब्द शक्ति

महादेवीजी की रचनाओं में व्यंजना शब्दशक्ति का प्रयोग अधिक मिलते हैं । जैसे –

"मधुर मधुर मेरे दीपक जल !

युग युग प्रतिदिन प्रतिक्षण प्रतिपल,

प्रियतम का पथ आलोकित कर !"[75]

अपने जीवन को व्यंजित करने के लिए यहाँ 'दीपक' शब्द का प्रयोग किया गया है ।

काव्यगुण

महादेवीजी विरह की गायिका होने के कारण उनकी रचनाओं में ओज गुण का सर्वथा अभाव है । इसके बदले माधुर्य एवं प्रसाद गुण की अधिकता है । जैसे –

"रश्मि बन तुम आये चुपचाप,

सिखाने अपने मधुमय गान;

अचानक दीं वे पलकें खोल,

हृदय में वेध व्यथा का बान –

हुए फिर पल में अन्तर्धान !"[76]

---

[74] महादेवी वर्मा – रश्मि, पृ 45

[75] महादेवी वर्मा – यामा, पृ 141

यहाँ माधुर्य गुण का सुंदर प्रयोग लक्षित है ।

"जो तुम आ जाते एक बार !

कितनी करुणा कितने सँदेश ।

पथ में बिछ जाते बन पराग,

गाता प्राणों का तार तार

अनुराग भरा उन्माद राग;

आँसू लेते वे पद पखार !"[77]

यहाँ प्रसाद गुण द्वारा भावाभिव्यंजना की गई है ।

प्रतीक योजना

महादेवीजी का काव्य प्रतीक प्रधान काव्य है । यहाँ तक कि कृतियों का नामकरण भी प्रतीकात्मक है जैसे 'नीहार' में एक स्वप्नमय विश्व की कल्पना विद्यमान है जो मधुमय होता हुआ भी धुँधला है । 'रश्मि' में स्पष्टता है, 'नीरजा' जीवन का प्रतीक है ।

महादेवीजी ने 'दीप' को विभिन्न संदर्भों में आत्म तत्व के प्रतीक के रूप में प्रयुक्त किया है । उदाहरण के लिए –

"यह मंदिर का दीप इसे नीरव जलने दो !

रजत शंख-घड़ियाल स्वर्ग वंशी-वीणा-स्वर ।"[78]

[76] महादेवी वर्मा – यामा, पृ 107

[77] महादेवी वर्मा – यामा, पृ 65

यहाँ मंदिर की देहली पर प्रकाशित दीप आत्मा की एकांत साधना का प्रतीक है ।

दीपक के अलावा पुष्प को उन्होंने करुणा या सहानुभूति का प्रतीक माना है । जैसे –

"था कली के रूप शैशव –

में अहो सूखे सुमन !

-- - -

किन्तु रोता कौन है

तेरे लिए दानी सुमन ?"[79]

यहाँ पुष्प एक अत्यंत सुकुमार एवं कोमल व्यक्तित्व का प्रतीक है ।

बिम्ब योजना

महादेवीजी ने अपनी रचनाओं में अनेक बिम्बों का प्रयोग किया है ।

"शशि को छूने मचली सी

लहरों का कर कर चुम्बन,

बेसुध तम की छाया का

तटनी करती आलिंगन ।"[80]

यहाँ कवयित्री ने स्पर्श बिम्ब का प्रयोग किया है ।

---

[78] महादेवी वर्मा – दीपशिखा, पृ 91

[79] महादेवी वर्मा – नीहार, पृ 50-51

[80] महादेवी वर्मा – यामा, पृ 9

मिश्रित बिम्ब के लिए उदाहरण –

"सजनि नीलमरज भरे

रँग चूतरी के अरुण पीले !

रागभीनी तू सजनि निश्वास भी तेरे रँगीले !"[81]

यहाँ नीलम रज भरें, रँग चूनरी के अरुण पीले में चाक्षुष बिम्ब और राग भीनी में घ्राण बिम्ब का प्रयोग हुआ है ।

इसके अलावा महादेवीजी ने श्रोत बिम्ब, प्राण बिम्ब आदि का भी प्रयोग किया है ।

5.3.5 हरिवंशराय बच्चन की काव्यभाषा

हिन्दी साहित्य में श्री बच्चन मधु और उन्माद के कवि के रूप में अधिक प्रसिद्ध है । बच्चनजी के काव्यों में छायावादी प्रवृत्तियों के विविध रूप देख सकते है । 'मधुशाला', 'निशा-निमंत्रण', 'एकांत संगीत' आदि में छायावादी प्रवृत्तियों का खुलकर प्रयोग हुआ है । उन्होंने अपने आह्लाद को व्यक्त करने के लिए मधुरा, सुराही, प्याला, हाला, मधुशाला आदि का सहारा लिया है और इसमें कवि ने दार्शनिकता का भी समावेश किया है । मानव जीवन की उमंग व्यक्त करनेवाला हाला, मधुशाला, प्याला जैसे शब्दों में प्रकृति के अद्वितीय एवं दिव्य स्वरूप को व्यक्त करने का प्रयास किया है ।

[81] महादेवी वर्मा – यामा, पृ 213

छंद

बच्चनजी ने अपने काव्यों में माधव-मालती छंद, रोला, चामरी, हरिगीतिका, सरसी आदि छंदों का प्रमुख प्रयोग किया है । जैसे –

"मयंक-रश्मि पूर्व से लहक रही,
असृप्त नीड़-वासिनी चहक रही,
शरद प्रफुल्ल मल्लिका महक रही,
दहक रहा
बुझा हुआ
अँगार फिर !"[82]

यहाँ उन्होंने चामरी छंद का प्रयोग किया है ।

हरिगीतिका के लिए उदाहरण –

"जो तुमने गिरि-वन में जप-तप-
कर उसको मनुहारा,
देवपुरी के झूलों पर से
भू की सेज उतारा ।"[83]

यहाँ हरिगीतिका छंद द्वारा भावाभिव्यंजना की गई है ।

[82] बच्चन – मिलन यामिनी, पृ 198
[83] बच्चन – आरती और अंगारे, पृ 29

शब्द

उनके द्वारा प्रयुक्त तत्सम शब्द है – वितृष्णा, मरकत, मर्त्य, मृत्तिका, तर्जन, देदीप्यमान, प्रत्याशित, कलुष, भर्त्सना, दुर्घष, क्षुर-सुतीक्ष, दारुण, रुण्ड पीत, नैवेद्य, अर्पण, दासत्व, करुण-उच्छ्वास, जागृत, ज्योतित, रक्षक आदि । उन्होंने लफंगे गुण्डागर्दी, मुहफिल, किस्मत, जाहिर, अरमान, एहसान, काक, जिन्दाबाद, उफ, नाज, नफीरी, शौक, अन्दाज़, मुआज्जिन, मुबारक, कयामत, खजाना, गर्दिश, अजूबा, सलीका, मुलाहिजा, लाइलाज, तसफिया आदि उर्दू-फारसी शब्दों का प्रयोग किया है । उनके द्वारा नवनिर्मित शब्द है पिछआता, मनुआं, गुस्साता, कुहरिल, दोषने, निंदियारा, नारियाते आदि । कीमयागर, क्रांतिकारी, दिवाला आदि बोलचाल के शब्दों का भी प्रयोग उन्होंने किया हैं ।

शब्दशक्ति

बच्चनजी का काव्य अभिधा प्रधान है । उनके काव्यों में व्यंजना एवं लक्षणा का अभाव है । जैसे –

"जीवन के संताप, शोक सब
इसको पीकर मिट जाते;
सुरा-सुप्त होते मद-लोभी,
जाग्रत रहती मधुशाला ।"[84]

यहाँ उन्होंने मदिरा की मादक शक्ति का वर्णना किया है ।

[84] बच्चन – मधुशाला, पृ 47

शैली

जीवन के कठोर से कठोर सत्यों को और उलझे विचारों को साफ, सीधे ढंग से व्यक्त कर देने के लिए उन्होंने विविध प्रकार की शैलियों का प्रयोग किया है । जैसे –

"साथी घर-घर आज दिवाली !

फैल गई दीपों की माला ।"[85]

यहाँ भावों को मुख्यत: चित्रों के माध्यम से स्पष्ट किया गया है ।

"साथी, नया वर्ष आया है !"[86]

"प्राण, मेरी ओर पल भर तुम ढ़रो तो ।"[87]

इन पंक्तियों में संबोधनात्मक शैली का प्रयोग किया गया है ।

इसके अलावा अभिधेयात्मक शैली, व्याख्यात्मक शैली, निषेधात्मक शैली, सूत्र शैली, प्रश्नोत्तर शैली, वर्णनात्मक शैली, संलापात्मक शैली, निष्कर्ष शैली आदि शैलियों का प्रयोग किया गया है ।

[85] बच्चन – निशा-निमंत्रण, पृ 51

[86] बच्चन – निशा-निमंत्रण, पृ 70

[87] बच्चन – निशा-निमंत्रण, पृ 23

खण्ड दो

5.4 प्रगतिवादी कवियों की काव्यभाषा

छायावाद युग के समाप्त हो जाने पर जो नयी काव्य-धारा का उदय हुआ उसे प्रगतिवादी काव्य कहे जाते है । समाजवादी प्रभाव एवं दूसरे महाविश्व युद्ध के परिणाम स्वरूप जनता के सामने आर्थिक-राजनीतिक संकट, महंगाई, बेकारी आदि की समस्याएं उपस्थित हुई । ये समस्याएं राजनीति तथा साहित्य के क्षेत्र में व्यापक प्रभाव डाला । इसी कारण प्रगतिवादी कवियों की काव्य-रचनाओं में आशा, उत्साह, स्वस्थ प्रेम की स्फूर्ति मिलते हैं । राष्ट्रीयता एवं देश-प्रेम का विविध रूप प्रगतिवादी काव्यों में उपलब्ध है । इस युग के प्रतिनिधि कवि हैं – रामधारीसिंह दिनकर, नागार्जुन, त्रिलोचन शास्त्री, शिवमंगल सिंह सुमन, आदि ।

5.4.1 रामधारीसिंह दिनकर की काव्यभाषा

श्री रामधारीसिंह दिनकरजी अपने युग की विचारधारा और भाषा का प्रतिनिधित्व करनेवाले साहित्य-स्रष्टा हैं । दिनकरजी ने पद्य और गद्य में साहित्य रचना की हैं । उनका गद्य साहित्य उत्कृष्ट होने पर भी कवि के रूप में ख्याति प्राप्त हैं । युगीन प्रवृत्तियों के अनुसार युग-मानव को वाणी देनेवाले कवि दिनकरजी ने 'रेणुका', 'हुंकार', 'रसवंती', 'द्वन्द्वगीत', 'परशुराम की प्रतीक्षा' आदि उन्नीस मुक्तक काव्यों तथा 'कुरुक्षेत्र', 'रश्मिरथी', 'उर्वशी' जैसे तीन प्रबंध काव्यों की रचना की है ।

प्राचीन काल से लेकर आज तक अभिव्यक्ति का सशक्त माध्यम भाषा ही है । दिनकरजी के अनुसार प्रत्येक भाव को अनुरूप शब्दों में बाँधने के लिए कवि को भाषा पर पूरा अधिकार होना ज़रूरी है । कवि की सफलता भाषा की प्रेषणीयता, सन्दर्भानुकूल शब्द-चयन, सशक्त विशेषणों का प्रयोग, सुस्पष्टता, वैज्ञानिकता, आडम्बरहीनता, सरलता, सांकेतिकता, संक्षिसता, सूक्ष्मता आदि पर निर्भर होती है ।

दिनकरजी के अनुसार आदर्श काव्यभाषा में भाव और भाषा दोनों उत्कृष्ट होगी । इसमें एक के या दोनों के निकृष्ट होने से काव्यभाषा दूषित हो जाती है । चमत्कार, संगीत, झंकार संकेत, सुस्पष्टता, कल्पना, अनुभूति और चित्रात्मकता आदर्श काव्यभाषा के गुण हैं । बोलचाल की भाषाई प्रयोगों से काव्य का प्रचार-प्रसार बढ़ते हैं । इसी कारण उन्होंने अपने मन की भावनाओं को साधारण जनता तक पहूँचाने के लिए जनसाधारण की लोकप्रचलित भाषा को साहित्यिक भाषा के रूप में स्वाकारा है । उनका मानना है कि विचारों को स्पष्ट करना ही भाषा का प्रयोजन है ।

दिनकरजी ने अपनी भाषा को दो युगों – द्विवेदी युग और छायावादी युग – की मिली-जुली भाषा कहा है । भाषा में प्रौढ़ता और कथन में चातुर्य दिनकरजी की काव्यभाषा की विशेषताएँ है । इसके अलावा दिनकरजी की भाषा में अभिव्यक्ति की स्वच्छता, भावानुरूपता, प्रसाद गुण, सफल शब्द-चयन, विशेषणों का उपयुक्त प्रयोग, प्रतीकात्मकता, बिम्ब धर्मिता, चित्रात्मकता,

गीतात्मकता, सांकेतिकता, संक्षिप्तता और मूर्तता को देखा जा सकता है । दिनकरजी ने अपने काव्य में सर्वत्र ऋजु, सहज, सार्थक और भावानुकूल व्यंजना करनेवाले शब्दों के समुचित प्रयोग के द्वारा अभिव्यक्ति की स्वच्छता और विचार-स्पष्टता जैसे भाषा की सबसे बड़ी विशेषताओं को हासिल किया है । दिनकरजी के काव्य की यह विशेषता है कि जिस प्रकार वे युग के प्रथम चरण में लिखते थे उसी प्रकार की सुकुमारता, यौवन की अल्हड़ता तथा वार्धक्य का अनुभव अन्तिम चरण तक विद्यमान है । शब्दों का सार्थक प्रयोग करने के कारण उन्हें 'छायावादोत्तर भाषा-सम्राट' माना जाता है ।

सन् 1946 ई. में रचित 'कुरुक्षेत्र' में दिनकरजी की रचनाओं में परिलक्षित विचारगत प्रौढ़ता और शिल्पगत विकास को देखा जा सकता है । लोग इसे मुक्तक रचना, विचार प्रधान लंबी कविता, महाकाव्य, गीतिकाव्य, सर्गबद्ध काव्य मानते हैं । लेकिन इस धारणा को स्पष्ट करते हुए दिनकरजी कहते है – " 'कुरुक्षेत्र' की रचना भगवान व्यास के अनुकरण पर नहीं हुई है और न महाभारत को दुहराना मेरा उद्देश्य था । मुझे जो कुछ कहना था, वह युधिष्ठिर और भीष्म का प्रसंग उठाए बिना भी कहा जा सकता था किन्तु तब रचना शायद प्रबन्ध के रूप में नहीं उतरकर मुक्तक बनकर रह गई होती । तो भी, यह सच है कि इसे प्रबन्ध के रूप में लाना मेरी कोई निश्चित योजना नहीं

थी ।"[88] इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि दिनकरजी 'कुरुक्षेत्र' को मुक्तक काव्य नहीं मानते हैं और न ही मुक्त काव्य लिखने के उद्देश्य से इसकी रचना की है ।

सात सर्गों में विभक्त 'कुरुक्षेत्र' एक प्रबंध काव्य होने के साथ-साथ विख्यात युद्ध काव्य भी है । इसमें मनोरंजन और कौतूहल वर्द्धन के अलावा उदात्तता, बौद्धिकता तथा पर्याप्त प्रवाहमयता भी है । पात्रों एवं घटनाओं में एकसूत्रता है । इसकी संक्षिप्त कथावस्तु इस प्रकार है कि जब महाभारत का भयानक युद्ध समाप्त हो जाता है और विजय श्री युधिष्ठिर को मिल जाती है तो युधिष्ठिर वीर जनों की मृत्यु को लेकर खिन्न हो जाता है । वे अपने मन के द्वन्द्व भाव से बाणों की शय्या पर लेटे हुए, मृत्यु की प्रतीक्षा करनेवाले भीष्म पितामह के पास पहूँचते हैं और पितामह उनके मन की पीडा को दूर कर देते हैं ।

रस

दिनकरजी के काव्यों में रस के विविध रूप उपलब्ध है । जैसे –

"रोम-रोम में वृक्ष, तरंगित, फेनिल हरियाली पर,
चढ़ी हुई आकाश-ओर मैं कहाँ उड़ी जाती हूँ?"[89]

यहाँ श्रृंगार रस की सुंदर अभिव्यक्ति हुई है ।

[88] दिनकर – कुरुक्षेत्र 'निवेदन' से, पृ 5
[89] दिनकर – उर्वशी, पृ 69

"क्रान्ति धात्रि कविते ! जाग उठ, आडम्बर में आग लगा दे ।

पतन पाप पाखण्ड जले, जग में ऐसी ज्वाला सुलगा दे ।"[90]

यहाँ उन्होंने वीर रस का सफल प्रयोग किया है ।

अलंकार

दिनकरजी ने विभिन्न दृष्टियों से काव्यालंकारों पर विचार करके अपना मत प्रस्तुत किया है । उनके अनुसार अलंकार काव्य के अविश्लिष्ट स्थलों का उद्घाटन विश्लेषण करते हैं । उन्होंने अलंकार के संबंध में यह मत प्रकट किया है - "अतएव मैं अलंकारों के महत्व को भूलकर नहीं सकता क्योंकि अलंकारों ने काव्य-कौशल के ऐसे अनेक भेद खोले हैं, अन्यथा अविश्लिष्ट रह जाते हैं ।"[91] काव्य में संक्षिप्तता, चित्रात्मकता, विस्मयकारी सौंदर्य और मानव ज्ञान में वृद्धि लाने के लिए अलंकारों की आवश्यकता है । उनके अनुसार अलंकार काव्य के वस्तुवर्णन में सुस्पष्टता लाती है ।

दिनकरजी ने अपने काव्य में सुनिश्चित वर्णन के लिए उपमा, रूपक, अतिशयोक्ति, दृष्टांत, विशेषोक्ति आदि अलंकारों का प्रयोग किया है । इससे काव्य में प्रभावोत्पादक भाव, अन्विति, स्पष्टता आदि आ गई है । उदाहरण के लिए –

[90] दिनकर – रेणुका, पृ 31

[91] दिनकर – मिट्टी की ओर, पृ 114

"शरों की नोंक पर लेटे हुए गजराज – जैसे

थके, टूटे गरुड़-स्रस्त पन्नगराज – जैसे ।"[92]

यहाँ उन्होंने उपमालंकार का प्रयोग सफल ढंग से किया है ।

छंद

दिनकरजी के अनुसार काव्य तभी सार्थक बनता है जब उसमें छंद भावानुकूल रूप धारण करते हैं । दिनकरजी ने काव्य में परंपरागत और नवीन छंदों का प्रयोग किया है । 'कुरुक्षेत्र' में उन्होंने बहुत प्रचलित वर्णवृत्तों का जैसे घनाक्षरी, कवित्त, सवैया आदि का प्रयोग किया है और सार छंद के द्वारा करुण, श्रृंगार आदि कोमल रसों को भी उत्पन्न किया है ।

'कुरुक्षेत्र' के प्रथम सर्ग में प्रयुक्त मुक्त छंद दूसरे सर्ग में आकर तुकांत बन जाता है । बीच में एकाध पंक्ति मात्रिक-सा है और अन्य पंक्ति इससे मेल नहीं खाते । फिर भी वे मात्रिक पंक्तियों के साथ तुक साम्य रखती है । जैसे –

"घुट रही नर-बुद्धि की है साँस,

चाहती कुछ बड़ा जग, कुछ बड़ा आकाश ।

यह मनुज, जिसके लिए लघु हो रहा भूगोल,

अपर-ग्रह-जय की तृषा जिसमें उठी है बोल ।"[93]

यहाँ उपर्युक्त बातों का स्पष्ट रूप मिलते है ।

---

[92] दिनकर – कुरुक्षेत्र, पृ 36

[93] दिनकर – कुरुक्षेत्र, पृ 72

शब्द

दिनकरजी का शब्द-भण्डार प्राचीन, मृत, ग्राम्य शब्दों से समृद्ध है । उन्होंने यत्र-तत्र क्लिष्ट शब्दों का भी प्रयोग किया है । उदाहरण के लिए 'कुरुक्षेत्र' के प्रथम सर्ग के प्रथम छंद में उन्होंने 'वलक्ष' शब्द का प्रयोग किया है जिसका अर्थ है 'श्वेत' । साथ ही साथ दो – तीन बार पढ़ने के बाद ही उन पंक्तियों का अन्वय पाठक की समझ में आती है । जैसे –

"वह कौन रोता है वहाँ –
इतिहास के अध्याय पर,
जिसने लिखा है, नौजवानों के लहू का मोल है,
प्रत्यय किसी बूढे कुटिल नीतिज्ञ के व्यवहार का;
जिसका हृदय उतना मलिन जितना कि शीर्ष वलक्ष है ।"[94]

यहाँ 'वलक्ष' शब्द पाठकों के मन में शंका पैदा कर सकता है ।

काव्य गुण

दिनकरजी राष्ट्रीय विचारधारा के प्रमुख कवि होने के कारण उनके काव्य में क्रांति का स्वर प्रमुख है । 'कुरुक्षेत्र' का वर्ण्य विषय युद्ध और सुद्ध से उत्पन्न मानसिक पीड़ा होने के कारण यह एक राजनीतिक काव्य है । इसलिए इसमें ओजगुण प्रमुख रूप से है । उदाहरण के लिए –

[94] दिनकर – कुरुक्षेत्र, पृ 9

"रक्त से सिंच कर समर की भेदिनी
हो गई है लाल नीचे कोस-भर,
और ऊपर रक्त की खर धार में
तैरते हैं अंग रथ, गज, वाजी के ।"[95]

इन पंक्तियों में युद्ध की भयानकता का वर्णन है ।

"फूलों पर आँसू के मोती,
और अश्रु में आशा,
मिट्टी के जीवन की छोटी,
नपी-तुली परिभाषा ।"[96]

माधुर्य गुण के द्वारा कवि ने यहाँ जीवन की क्षणिकता का चित्रण किया है ।

संवादात्मकता

अन्य काव्यों से भिन्न 'कुरुक्षेत्र' की एक प्रमुख विशेषता है संवादात्मकता । संवादात्मकता काव्य को सशक्त बनाते है । युद्ध के पश्चात् युधिष्ठिर और भीष्म के बीच में होनेवाले संवाद को ही कवि ने काव्य के रूप में चित्रित किया है । जैसे –

"कुरुक्षेत्र-विजेता, बता निज पाँव
सिंहासन पै धरता नहीं क्यों है ?"

---

[95] दिनकर – कुरुक्षेत्र, पृ 12
[96] दिनकर – कुरुक्षेत्र, पृ 110

"अब बाधा कहाँ ? निज भाल पै पाण्डव

राजकिरीड धरें सुख से;"[97]

इस प्रकार एक दूसरे के बीच में होनेवाले प्रश्न और उत्तर के द्वारा पूरी कथा कही गई है ।

लोकोक्तियाँ और मुहावरे

दिनकरजी ने भाषा को सशक्त बनाने, प्रसन्न अर्थवत्ता तथा गति प्रदान करने के लिए लोकोक्तियों का बहुविध प्रयोग किया है । जैसे –

"थके सिंह आदर्श ढूँढते

व्यंग्य-बाण सहते हैं ।"[98]

इसके द्वारा कवि मनुष्य की अस्थिरता की ओर इशारा करते है ।

5.4.2 नागार्जुन की काव्यभाषा

प्रगतिवादी कवियों में नागार्जुनजी का विशेष स्थान है । नागार्जुन के काव्यों में व्यंग्य, क्रान्तिकारी आस्था और यथार्थ चित्रण के विविध रूप उपलब्ध हैं । लोक संस्कृति के विकसित रूप उनके काव्य में व्यक्त हुआ है । उन्होंने बोलचालीय भाषा के काव्यमय रूप प्रस्तुत किया है । उनके क्रान्तिकारी व्यक्तित्व साम्राज्यवाद, सामंतवाद तथा पूँजीवाद का प्रखर आलोचना में स्पष्ट हो जाता है । उन्होंने एक तरह साम्राज्यवाद, पूँजीवाद आदि की व्यंग्यपरक

[97] दिनकर – कुरुक्षेत्र, पृ 64

[98] दिनकर – कुरुक्षेत्र, पृ 48

आलोचना की तो दूसरी तरफ श्रमिक वर्गों के बीच एकता बढ़ाने में कार्यरत रहा है । उनकी कविता भोगे हुए यथार्थ की कविता होने के कारण उसमें कल्पना का प्रयोग कम मिलते हैं ।

रस

उनके काव्यों में रसों का समुचित प्रयोग मिलते है । श्रृंगार रस के लिए उदाहरण –

"सांध्य नभ में पश्चिमांत-समान
लालिमा का जब करुण आख्यान
सुना करता हूँ, सुमुखि उस काल
याद आता तुम्हारा सिन्दूर तिलकित भाल ।"[99]

यहाँ सिंदूर तिलकित भाल के चित्रण के द्वारा श्रृंगार रस की सुंदर रूप मिलता है ।

इस प्रकार उनके काव्य में अन्य रसों की भी सुंदर अभिव्यक्ति प्राप्त है ।

छंद

नागार्जुन ने मुक्त छंद का प्रयोग किया है । फिर भी उसमें लय एवं ताल का सुंदर समावेश है । जैसे –

"इन्दुजी, इन्दुजी
क्या हुआ आपको ?
सत्ता की मस्ती में भूल गई बाप को

[99] नागार्जुन – सतरंगे पंखोंवाली, पृ 18

क्या हुआ आपको ।"[100]

यहाँ मुक्त छंद का सुंदर प्रयोग मिलते है ।

"यहाँ नहीं लज्जा का योग

भीख माँगने का है रोग

पेट बचते हैं हम लोग

लोगे मोल?

लोगे मोल?"[101]

यहाँ पन्द्रह – पन्द्रह मात्राओं के चरणवाले छंद का प्रयोग किया गया है ।

शब्द

नागार्जुनजी ने बोलचाल की भाषा और लोक जीवन की शब्दावली का प्रयोग किया है । उनके द्वारा प्रयुक्त लोकप्रिय खडीबोली में अंग्रेज़ी, उर्दू, संस्कृत, बंगला और मैथिली भाषा के ग्रामीण शब्दों को भी देख सकते है । नागार्जुनजी ने अपनी बात जनसाधारण तक पहूँचाने के लिए लोक जीवन की भाषा को अपनाया है । उनके द्वारा प्रयुक्त जनपदीय शब्द हैं – बिजली, छिनाल, फहियाँ, पडिया, तलइया, फाँक, खूसट, झबरा आदि । सोहबत, मुताबिक, अमानत, बेरुखी, लिबास, निगाहों, नदारद आदि उनके द्वारा प्रयुक्त उर्दू शब्द हैं । उन्होंने अंग्रेज़ी शब्दों का भी प्रयोग किया है जैसे – ट्राम, जंक्शन, मेमोरियल, कैरियर,

[100] नागार्जुन – प्रेत का बयान, पृ 26

[101] नागार्जुन – हज़ार हज़ार बाहोंवाली, पृ 144

लिबर्टी, पाऊंड, साऊंड, रेस कोर्स, प्लीज़--- एक्सक्यूस मी, ट्राम – ड्यूटी, गियर, प्लान, केरियर, प्रयवेट, सिक्योर आदि ।

शब्दशक्ति

उन्होंने शब्दशक्तियों का समुचित प्रयोग किया है । उदाहरण के लिए –

"आगे से आया

अलकों से तैलाक्त परिमल का झौका

रग-रग में दौड गई बिजली

तन गई रीढ़ ।"[102]

यहाँ झुकी पीठ को हथेली का स्पर्श और केशों की सुगन्धि नई ताकत देता है ।

इस प्रकार के उदाहरण उनके काव्यों में अनेक हैं ।

बिम्ब योजना

बिम्बों के प्रयोग द्वारा उन्होंने काव्य को प्रभावशाली बनाया है । जैसे –

"भगवती भगीरथी –

ग्रीष्म में यह हो गई थी प्रतनु-सलिला

विरहिणी की पीठ-लुंठित एक वेणी-सदृश ।"[103]

यहाँ ग्रीष्म में गंगा की स्थिति विरहिणी की कृशता से की गई है ।

---

[102] नागार्जुन – सतरंगे पंखोंवाली, पृ 18

[103] नागार्जुन – सतरंगे पंखोंवाली, पृ 52

"फटी दरी पर बैठा है चिर-रोगी बेटा

राशन के चावल के कंकड बीन रही पत्नी बेचारी

गर्भ-भार से अलस शिथिल हैं अंग-अंग,

मुँह पर उसके मटमैली आभा

छप्पर पर बैठी है बिल्ली

किस घर से जाने क्या कुछ खा आई है

चला-चला कर जीभ स्वाद लेतीं होंठों का ।"[104]

यहाँ एक गरीब घर के सदस्यों के मार्मिक वर्णन के द्वारा मानस बिम्ब की सृष्टि की है ।

इस प्रकार उन्होंने दृश्य, श्रव्य, घ्रातव्य, आस्वाद्य आदि बिम्बों का प्रयोग किया है ।

नागार्जुनजी ने अपने काव्य में सपाटबयानी का प्रयोग किया है । जैसे –

"कई दिनों से चूल्हा रोया, चक्की रही उदास,

कई दिनों तक कानी कुतिया सोई उनके पास,

कई दिनों तक लगी भीत पर छिपकलियों की गश्त,

कई दिनों तक चूहों की भी हालत रही शिकस्त ।"[105]

सपाटबयानी के द्वारा उन्होंने सीधे अर्थ की अभिव्यक्ति की है ।

---

[104] नागार्जुन – तालाब की मछिलियाँ, पृ 158

[105] नागार्जुन – सतरंगे पंखोंवाली, पृ 34

नागार्जुनजी ने व्यंग्य का भी चित्रण किया है जो काव्य को अधिक तीव्रता प्रदान करती है । उदाहरण के लिए –

"आ ही गई उझक- उझक कर होंठों के कगारों तक
संजीदगी में डूबी कृतज्ञ मुसकान
तगर की-सी सादगी में
जगमगा उठे धँसे-धँसे गाल ।"[106]

यहाँ भाषा में सादगी और सरलता है साथ ही साथ नई भंगिमा भी है ।

5.4.3 त्रिलोचन शास्त्री की काव्यभाषा

प्रगतिवादी काव्यधारा के समर्थ कवि हैं – त्रिलोचन शास्त्री । 20 अगस्त 1917 में उत्तर प्रदेश के सुलतानपुर में जन्मे त्रिलोचन के बचपन का नाम वासुदेव सिंह था । 'त्रिलोचन' उनका साहित्यिक नाम है और 'शास्त्री' उपाधि । हिन्दी साहित्य जगत में त्रिलोचन को उनके सॉनेटों से पहचाना जाता है । सॉनेट को मराठी में 'सुनीत' कहते हैं । यह छंद का नाम न होकर अनुशासन का नाम है । उनकी काव्य कृतियाँ हैं क्रमश: - 'धरती', 'गुलाब और बुलबुल' (गज़लें और रुबाईयाँ), 'दिगंत', 'ताप के ताए हुए दिन', 'उस जनपद का कवि हूँ', 'फूल नाम है एक' आदि ।

त्रिलोचनजी विचारों से प्रगतिवादी और भाषा शैली की दृष्टि से छायावाद से फ्रभावित हैं । उनके द्वारा रचित 'धरती' तथा 'गुलाब और बुलबुल'

[106] नागार्जुन – सतरंगे पंखोंवाली, पृ 12

प्रगतिवादी भावनाओं से पूर्ण कृतियाँ हैं । उनका प्रथम काव्य-संकलन है - 'धरती' । इस संकलन की 'अब तक जो होता आया है', 'तुम बढ़ो जिस तरह दावानल', 'जब समाज आगे बढ़ता है', 'ओ तू नियति बदलनेवाली', 'एकाधिकार के पंजे में' आदि रचनाएँ प्रौढ़ता, सशक्तता, भाव-प्रवणता तथा आवेग से परिपूर्ण है ।

त्रिलोचनजी की रुबाईयों और गज़लों का संकलन है - 'गुलाब और बुलबुल', जो प्रेमगीतों एवं प्रगतिवादी भावनाओं से परिपूर्ण है । इनमें सामाजिक जीवन की विषमता, शोषक-वर्ग की प्रवृत्तियों एवं नव निर्माण की आकांक्षाएँ चित्रित हैं ।

सन् 1945 में प्रकाशित 'धरती' काव्य संग्रह वैयक्तिक प्रेमभावना, प्राकृत सौंदर्य-आकर्षण और सामाजिक चेतना जैसी कवि की तीन प्रवृत्तियों को स्पष्ट करती है । 'धरती' में उन्होंने दो प्रकार की भाषा का प्रयोग किया है – क) जनभाषा, जिसका प्रयोग सामाजिक विसंगतियों के अंकन के लिए किया है । उदाहरण के लिए धांगर, तिलकुट, पोखट आदि शब्द । ख) अभिधात्मक पदावली ।

उनके द्वारा रचित 'गुलाब और बुलबुल' रुबाईयों के लिए प्रसिद्ध है । रुबाई कविता की एक खास किस्म है । रुबाई चौपाई से मिलती-जुलती है पर दोनों मे अंतर है । रुबाई की यह विशेषता है कि उसमें पहली-दूसरी तथा चौथी

पंक्ति का तुक एक हो जाना ज़रूरी है यदि तीसरी पंक्ति की भी तुक एक हो तो कोई हानि नहीं होती ।

'ताप के ताए हुए दिन' कविता संग्रह में गीत काव्य की विशेषताएँ जैसे- संगीतात्मकता और उसके अनुकूल सरस प्रवाहमयी कोमलकांत पदावली, निजी रागात्मकता, संक्षिप्तता और भाव की एकता आदि पाए जाते हैं ।

शास्त्रीजी के काव्य आकार में छोटी होने पर भी अर्थ गंभीर होती है । इनकी रचनाओं में सामान्य जीवन के दैन्य, अभाव तथा स्वाभाविक शक्ति के सुंदर चित्र मिलते हैं । उनकी रचनाओं में उद्बोधनात्मक स्वर हर कहीं नहीं मिलते हैं । लेकिन शिल्पगत सौष्ठव तथा विचारों की ऊँचाई एक समान मिलते हैं । लेकिन बौद्धिकता के कारण वेगहीनता का आभास कहीं मिलते हैं । त्रिलोचन के काव्य में मार्क्सवादी मान्यताओं की प्रतीती होती है । उनके काव्य में रागात्मक बोधों और जीवन-यथार्थ के चित्रण भी हम देख सकते हैं । स्वाभाविकता, स्वच्छता, स्वस्थता और प्रभावित करने की शक्ति आदि उनके काव्य की विशेषताएँ हैं ।

त्रिलोचनजी के काव्य का एक अन्य विशेष गुण है – आशावादी स्वर । उनके काव्य में घुटन, निराशा, अनास्था आदि का अभाव है । बल्कि उनके काव्य में स्वस्थ स्फूर्ति, ताज़गी, अटूट आत्मविश्वास आदि का समावेश है । उनकी रचनाओं में एक समान, सहज अभिव्यक्ति की प्रवृत्ति दृष्टिगत है, चाहे प्रकृति वर्णन हो, प्रणय-चित्रण हो या जीवन के संघर्षों के आलेखन हो ।

त्रिलोचन के प्रकृति-चित्र बड़े ही सुंदर और आत्मीय हैं साथ ही इसमें यथार्थ की गहराई है । कल्पना अतिरेक इसमें नहीं है । उदाहरण के लिए –

"जगिए हुआ है भोर सूर्य की ध्वजा चढ़ी,
घर-घर पर समाचार सुनाया यहाँ-वहाँ ।"[107]

यहाँ प्रकृति का मनोरम चित्र प्रकट होते हैं ।

त्रिलोचनजी की भाषा सरल, सुबोध तथा अर्थ गरिमा से पूर्ण एवं सुस्पष्ट है । भावों की सहज अभिव्यक्ति तथा जीवन विश्वास रचना को सौंदर्य प्रदान करता है तो जिए हुए सत्य की अभिव्यक्ति उसको सदा नयापन, ताज़गी और शक्ति देती है । लोकगीतों के स्पर्श से उनकी कविता कोमल बन गई है । परम्परागत शैली में लिखी गई रचनाओं में भी लौकिकता का समावेश किया गया है । प्रगतिवादी कविता की प्रौढ़ कलात्मक शक्ति इनकी रचनाओं में दिखाई देती है । भाषा के संबंध में त्रिलोचनजी का अपना मत है । उनके अनुसार "बड़े-बड़े शब्दों में बड़ी-बड़ी बातों को कहने की आदत औरों में पर मेरा ढर्रा अलग गया है ।"[108] इससे यह बात स्पष्ट हो जाती है कि कवि भाषा के बोलचाल रूप के या लोकभाषा के प्रयुक्ता एवं पक्षधर है ।

त्रिलोचनजी की भाषा प्रचलित साहित्यिक हिन्दी से भिन्न है । उन्होंने एक ऐसी काव्यभाषा को विकसित किया है जो अंग्रेज़ी-वाक्य विन्यास तथा

---

[107] त्रिलोचन शास्त्री – गुलाब और बुलबुल, पृ 13

[108] त्रिलोचन शास्त्री – उस जनपद का कवि हूँ, पृ 116

मुहावरों से अधिक प्रभावित है । उनकी हिन्दी के शब्दों में लगभग एक हज़ार वर्षों की गूँजें हैं । उदाहरण के लिए –

"समझ सुगबुगाईं
नहीं तो कहीं से
धुन आई क्या आई
-- -
चादर फिर फैलाई
फिर-फिर तहिआई ।"[109]

यहाँ धुन शब्द के द्वारा उन्होंने वर्षों से चली आ रही संघर्षों को यूचित किया है । यहाँ प्रयुक्त 'तहिआई' शब्द साधारण जनता द्वारा प्रयुक्त शब्द है जो अब प्रचार में नहीं है ।

उनकी वर्णनात्मक कविता है - 'नगई महरा' । इसमें प्रयुक्त भाषा का सारा बाह्य रचाव जैसे शब्दों का मुखर संगीत, आवेग, तनाव आदि अपने आप खत्म हो गई है ।

"नगी खाँची फाँदे बैठा था
हाथों में वही काम
आँखें उन हाथों के
हथवट चिताती हुई

[109] त्रिलोचन शास्त्री – ताप के ताए हुए दिन, पृ 37

खाँची में लगी एक आँख

-- -

जैसे असाठ के मेघ की गरज ।"[110]

यहाँ कवि ने महरा का चित्रण सुंदर शब्दों में किया है । उन्होंने वर्णन के क्रम में आनेवाली वस्तुओं को वस्तु ही रहने दिया है । उनमें प्रतीकों को बदल डालने की जल्दी कहीं नहीं दिखाई पड़ती ।

अलंकार

काव्य में अलंकार का महत्वपूर्ण स्थान है । त्रिलोचनजी ने भी काव्य में अलंकारों को पर्याप्त महत्व दिया है । कविता में चमत्कार लाना ही उनका लक्ष्य नहीं रहा है । इसलिए कुछ लोग उसको 'सपाटबयानी का कवि' मानते हैं । मानवीकरण अलंकार के लिए उदाहरण –

"हवा नए अँखुओं से यों ही बतियाती है

उनका सिर हिलता है

फूल खिलखिलाते हैं ।"[111]

यहाँ हवा को मानव के रूप में चित्रित करके मनुष्य की कोमल, सुंदर भावों को व्यक्त करते हैं ।

[110] त्रिलोचन शास्त्री – नगई महरा, पृ 72

[111] त्रिलोचन शास्त्री – झापस, 37

छंद

'ताप के ताए हुए दिन' में सवैये का प्रयोग अधिक हुआ है । इसका उदाहरण 'मौन भी कैसे रहूँ' और 'रात में' मिलते हैं । पुराने छंदों को नए रूप में विकसित करने की क्षमता उसमें है । उदाहरण के लिए –

"बाढ़ में जो
कही न जा सकी
जलरुद्ध रही वही दूब रहा हूँ ।"[112]

यहाँ प्रयुक्त 'कही न जा सकी' के बदले 'कहीं जा न सकी' का प्रयोग करते तो यह खडीबोली का एक सुंदर सवैया हो जाता ।

त्रिलोचनजी अपनी कविताओं में बातचीत की सी सहजता तथा स्वाभाविकता लाने में सतर्क रहे हैं । 'ताप के ताए हुए दिन' में त्रिलोचनजी ने मुख्यत: वर्णनात्मक शैली का प्रयोग किया है और कहीं-कहीं भावाभिव्यंजन शैली भी दृष्टव्य है । उदाहरण के लिए 'मौन भी कैसे रहूँ', 'रात में', 'मैंने जो सोचा था' आदि कविताएँ ।

बिम्ब योजना

उनकी कविता में दृश्य, श्रव्य, घ्रातव्य, स्पृश्य तथा आस्वाद्य बिम्ब मिलते हैं । दृश्य बिम्ब के लिए उदाहरण है –

---

[112] त्रिलोचन शास्त्री – जलरूद्ध दूब, पृ 25

"आई थी घटाएँ अभी

नाचकर चली गई

बिजली का मशाल जल-जलकर

बुझ जाता था ।"[113]

यहाँ बिजली के मसाल द्वारा कवि ने सारी बात कही है । बिजली दिखाई दोनेवाला है । अत: यहाँ दृश्य बिम्ब है ।

श्रव्य बिम्ब के लिए उदाहरण –

"केवल रिमझिम का संगीत सुन पड़ता था

बूँदों की छनकारें

ओलतियों की टपटप टप कारो

पानी का कल-कल करते

बहते ही जाना ।"[114]

संगीत एवं पानी का स्वर हम केवल सुन ही सकते हैं । उसे हम देख या स्पर्श नहीं कर सकते ।

त्रिलोचनजी मनुष्य को समाज की एक शक्ति, समाज-जीवन का प्रतीक मानते हैं । उदाहरण के लिए –

[113] त्रिलोचन शास्त्री – बरसाती रात, पृ 18

[114] त्रिलोचन शास्त्री – बरसाती रात, पृ 18

"जिस समाज में तुम रहते हो

यदि तुम उसकी एक शक्ति हो

उसकी ललकारों में से ललकार एक हो

-- - - -

आँखों में दो आँख तुम्हारी

तो निश्चय समाज-जीवन के तुम प्रतीक हो ।"[115]

यहाँ संपूर्ण मानव शक्ति एवं विद्रोह का सशक्त प्रतीक है । कवि ने यहाँ प्रतीकों के द्वारा मनुष्य में विरोधी भाव पैदा करने का प्रयास किया है ।

शब्दशक्ति

त्रिलोचनजी ने वर्णनात्मक शैली का प्रयोग ज़्यादा किया है । इसलिए उनके काव्य में अलंकारों के अतिरेक का स्थान नहीं है । यानी वे व्याजोक्ति और अन्योक्ति के कवि न होकर स्वभावोक्ति के कवि है । उसी तरह बाहर से वे अभिधा के कवि दिखते हैं पर उन्होंने व्यंजना तथा लक्षणा का भरपूर प्रयोग भी किया है । जैसे –

"मैं चिता का चाहता हूँ अब उजाला

बूँद जितना तिमिर सागर बन गया है

बस उसी की लहर में जग फँस गया है

देखने को नेत्र कुछ पाते नहीं हैं

[115] त्रिलोचन शास्त्री – धरती, पृ 62

बस तिमिर है-तिमिर इतना बढ़ गया है ।"[116]

संपूर्ण छंद से यह आशय निकलता है कि कवि सामाजिक जीवन में होनेवाले विषमता, प्रवंचना और तज्जन्य नैराश्य तथा दुःख के कारण इय युग को अन्धकारमय मानते हैं । कवि का विश्वास है कि विज्ञान के द्वारा यह अन्धकार दूर हो जाएगा । लेकिन उसके पहले तात्कालिक प्रकाश की आवश्यकता है और यह किसी के बलिदान से ही संभव है । यही बात चिता के उजाले से कवि व्यक्त करते है । ध्वन्यार्थ यह है कि जब तक कुछ लोग इसके हेतु बलिदान नहीं देंगे जनता का उद्धार होनेवाला नहीं है । यहाँ 'चिता' पद से बलिदान का भाव व्यक्त होने के कारण 'पदार्थ' वस्तु से 'व्यापार' वस्तु की ध्वनि है ।

सर्वहारा श्रमिक वर्ग की दीनदशा का वर्णन सीधी, सादी, सरल स्वाभाविक खड़ीबोली भाषा में किया गया है जिसमें कवि की करुण स्वर मुखरित है । उदाहरण के लिए –

"मध्य-युग का साजऔ, सामान सारा,
चाल ढ़ाल सभी पुरानी वही धारा ।
मध्य-युग के भाववाही
यो नए युग से अपरिचित औ सशंकित
ये गए सब दिन सताए-धरती ।"[117]

[116] त्रिलोचन शास्त्री – ताप के ताए हुए दिन, पृ 42

यहाँ सरल, सुबोध तथा सीधी भाषा का प्रयोग किया गया है ।

त्रिलोचन की कविता में संस्कृत शब्दावली का समुचित प्रयोग मिलते है । जैसे –

"नई सृष्टि की झुन लेकर
बढ़ने का साहस लेकर
और विजय की धुति लेकर
अकुतोमय बाधा निधितर ।"[118]

यहाँ प्रयुक्त धुति, अकुतोमय जैसे शब्द संस्कृत शब्दावली के है । यहाँ शब्द प्रयोग का कौशल, भाव भंगिमा आदि छायावादी काव्य के अनुसार है ।

प्रगतिवादी कवियों ने अनेक शब्दों का निर्माण किया है जिन्हें तीन कोटियों में विभाजित किया जा सकता है – क) नवीन संधिज शब्द ख) सरल सामासिक योजना 3) देशज अथवा नवीन गढ़ी हुई विचित्र शब्दावली । त्रिलोचनजी की कविताएँ दूसरी और तीसरी कोटि में आती हैं । जैसे –

"वशीकरण-प्रवीण-मधु-मुस्कान आई ।"[119]

"कपसीले, ऊढ़े, लाल और पीले मटमैले ।"[120]

यहाँ भाषा की सरल एवं नवीन शब्दावली दृष्टिगत है ।

---

[117] त्रिलोचन शास्त्री – धरती, पृ 45
[118] त्रिलोचन शास्त्री – धरती, 12
[119] त्रिलोचन शास्त्री – धरती, पृ 87
[120] त्रिलोचन शास्त्री – धरती, पृ 21

हिन्दी साहित्य जगत में निराला, पंत जैसे कवियों ने सॉनेटों की रचना की है पर उसमें त्रिलोचनजी ने ही सफलता हाज़िल की है । आज त्रिलोचनजी अपने सॉनेट, गज़ल एवं रुबाइयों के द्वारा हिन्दी साहित्य में एक अलग एवं महत्वपूर्ण स्तान प्राप्त किए है । निरालाजी की तरह उन्होंने मुक्त छंद का प्रयोग भी किया है । उन्होंने अपनी कविता में किसी न किसी तरह प्रास लाने की कोशिश की है । जैसे –

"नरम नरम होने पर
यही वहाँ
उनको दुलराती है
धूप से नहलाती है
रिमझिम की लोरियाँ सुनाती है ।"[121]

यहाँ दुलराती, नहलाती, सुनाती शब्दों के द्वारा अन्त्यानुप्रास की योजना की गई है ।

त्रिलोचनजी हिन्दी साहित्य में प्रगतिवादी विचारों पर चलनेवाले एक कवि होने पर भी उन्हें प्रतिष्ठित स्थान न मिला । इसके संबंध में स्वयं त्रिलोचनजी ने अपनी कृति 'उस जनपद का कवि हूँ' में यों कहा हैं –

"प्रगतिशील कवियों की नई लिस्ट निकली है
उसमें कहीं त्रिलोचन का तो नाम नहीं था ।"[122]

[121] त्रिलोचन शास्त्री – ताप के ताए हुए दिन, पृ 34

इससे यह बात व्यक्त हो जाती है कि कवि स्वयं को प्रगतिशील मानते हैं ।

5.5 प्रयोगवादी कवियों की काव्यभाषा

प्रगतिवाद के तत्पश्चात जनमी नयी काव्यधारा प्रयोगवादी काव्य नाम से प्रसिद्ध हुए । डॉ.शिवकुमार मिश्रजी के अनुसार – "प्रगतिवादी काव्य अभी अपने विकास की टेढ़ी-सीधी पगडंडियों को संतुलित-असंतुलित रूप से तय ही कर रहा था कि सन् 1943 ई में श्री. अज्ञेय के संपादकत्व में प्रकाशित 'तारसप्तक' नामक कविता संग्रह ने हिन्दी जगत को एक नवीन काव्य प्रवृत्ति से परिचित कराया, जो संग्रह में अज्ञेयजी की भूमिका (विवृत्ति और पुनरावृत्ति) तथा संग्रहीत कवियों में से अधिकांश के वक्तव्यों में काव्यगत प्रयोगों की विस्तृत चर्चा के कारण 'प्रयोगवाद' नाम से पुकारी गई ।"[123] यहाँ उन्होंने प्रयोगवाद के उद्भव पर प्रकाश डाला है ।

प्रगतिवाद की भाँति प्रयोगवाद भी देश की आर्थिक, राजनीतिक, सामाजिक तथा साहित्यिक परिस्थितियों के कारण उपजी है । अत: निराशा, कुंठा, घुटन आदि इस युग के काव्य-विषय रहे है । इस युग के प्रतिनिधि कवि हैं – सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन अज्ञेय, गजाननमाधव मुक्तिबोध, शमशेर बहादुर सिंह आदि ।

---

[122] त्रिलोचन शास्त्री – उस जनपद का कवि हूँ, पृ 111

[123] शिवकुमार मिश्र – नया हिन्दी काव्य, पृ 201

5.5.1 अज्ञेय की काव्यभाषा

प्रयोगवाद के प्रवर्तक एवं प्रमुख कवि के रूप में अज्ञेयजी हिन्दी साहित्य में विख्यात हैं । व्यक्तिवाद और अहंवाद के कारण उनके काव्य में पराजयवादी, नियतिवादी, क्षणवादी भावनाओं की अधिकता है । उनकी ओज और शक्ति भरी कविताओं में नए-नए प्रयोग भी परिलक्षित हैं ।

रस

अज्ञेयजी के काव्यों में रस के विविध रूप परिलक्षित है । उनके द्वारा प्रयुक्त शांत रस के लिए उदाहरण है –

"मरण ? पिघल कर सजल भक्ति से
मिल जाना उस महच्छक्ति से !
करें मृत्यु का क्यों न उल्लसित हो-कर हम आह्वान !
राग समास ! चलो अब जागो ।"[124]

यहाँ मृत्यु के प्रति कवि की जो शांत दृष्टि है उसी को चित्रित किया गया है ।

रौद्र रस का एक दृष्टांत प्रस्तुत है -

"ठहर, ठहर, आततायी ! ज़रा सुन ले –
मेरे क्रुद्ध वीर्य की पुकार आज सुन जा !
रागातीत, दर्पस्फीत, अतल, अतुलनीय,
मेरी अवहेलना की टक्कर सहार ले ।"[125]

---

[124] अज्ञेय – पूर्वा, पृ 89

यहाँ शोषण के प्रति कवि का आह्वान मुखरित है ।

इसके अलावा उनके काव्य में करुण, श्रृंगार आदि रसों का प्रयोग भी है ।

अलंकार

अज्ञेयजी ने अपने काव्यों में उपमा, उत्प्रेक्षा, पुनरुक्ति, विरोधाभास, संदेह, यमक, मानवीकरण आदि अलंकारों का सुंदर प्रयोग किया है । जैसे –

"ओस-बूँद की ढ़रकन-इतनी कोमल, तरल, कि झरते-झरते मानो

हरसिंगार का फूल बन गयी ।"[126]

यहाँ उन्होंने उत्प्रेक्षा अलंकार का प्रयोग किया है ।

संदेह के लिए उदाहरण –

"न जाने मछलियाँ हैं या नहीं

आँखें तुम्हारी

किन्तु मेरी दीप्त जीवन-चेतना निश्चय नदी है ।"[127]

यहाँ कवि ने संदेह का सुंदर रूप प्रस्तुत किया है ।

मानवीकरण के लिए उदाहरण –

"पति सेवारत साँझ

उचकता देख पराया-चाँद

ललकार ओट हो गयी ।"[128]

---

[125] अज्ञेय – पूर्वा, पृ 134

[126] अज्ञेय – आंगन के पार द्वार, पृ 80

[127] अज्ञेय – अरी ओ करुणा प्रभामय, पृ 89

यहाँ मानवीकरण अलंकार का सुंदर चित्रण मिलते है ।

छंद

अज्ञेयजी ने सरसी, विद्या, शुद्ध गीता, ताटंक, बरवै, रूपमाला जैसे छंदों का प्रयोग किया है । जैसे –

"भोर बोला नदी तट की घांटियां का नाद ।
चोट खा कर जग उठा सोया हुआ अवसाद ।
नहीं मुझ को नहीं अपने दर्द का अभिमान –
मानता हूँ मैं पराजय है तुम्हारी याद !"[129]

यहाँ कवि ने रूपमाला छंद का प्रयोग किया है ।

शब्द

अज्ञेयजी कृत 'बावरा अहेरी', 'इन्द्रधनु रौंदे हुए' आदि संग्रहों में तद्भव शब्दावली का बहुल प्रयोग देख सकते है । उनके द्वारा प्रयुक्त तद्भव शब्द हैं – बटुली, चहकमण्डी की ठोलमठोल, हथौडे, लंगर, चमरौधे, कुलिया, मेड़, नाईन आदि । प्रयाथी, अनथक-गति, अपलक-ध्युति, स्तब्ध-स्वर, विस्मृता, पूँजीभूत आदि उनके द्वारा प्रयुक्त तत्सम शब्द है । उन्होंने अरबी शब्दों का भी प्रयोग किया है । जैसे – दीवाना, जोखम, सलीब, शौक, शराब, मुलम्मा, ताज़ा, गरेवां, ब्याज, तेज़ाब, इशारे, दिल आदि ।

---

[128] अज्ञेय – अरी ओ करुणा प्रभामय, पृ 67

[129] अज्ञेय – पूर्वा, पृ 203

शब्दों की मितव्ययता, कसाव और गहन अर्थवत्ता अज्ञेय के काव्यों की विशेषता है । चीह्नता, कुरमुराता, अड़खड़ाता, सेंत, टिमक, दईमारे, टाँगे, घिग्घी, सूइयाँ, दुबक, रड़कन, तड़कन, कुलिया, तरसों-नरसों, ददोरें, सौटंच, औचक आदि उनके द्वारा प्रयुक्त लोकभाषा के शब्द है ।

काव्यगुण

अज्ञेयजी के काव्यों में ओज एवं प्रसाद गुण की प्रधानता है ।

"वहीं उसको जय
मिलेगी तो मिलेगी
या मिलेगी लय,
असंशय
तुम तरी को छोड़ दो
बढ़ती लहर पर !"[130]

यहाँ ओज गुण का प्रयोग देख सकते हैं ।

"एक दिन सहसा
सूरज निकला
अरे क्षितिज पर नहीं,
नगर के चौक:
धूप बरसी

[130] अज्ञेय – इन्द्रधनु रौंदे हुए, पृ 66

पर अंतरिक्ष से नहीं,

फटी मिट्टी से ।"[131]

यहाँ मानव की दीन दशा का चित्रण प्रसाद गुण द्वारा व्यक्त किया गया है ।

प्रतीक योजना

अज्ञेयजी ने साधारण में असाधारण मौलिक व्यंजना भर देने के लिए हारिल, मछली, हरी घास, तारा, दीप, शिशिर, सूर्य आदि को प्रतीक बनाया है । सर्जना, उड़ने की लालसा, गतिशीलता और साहसी अभियानी के रूप में हारिल को प्रस्तुत किया है । सागर जीवन और अज्ञात सत्य का प्रतीक है । अस्मिता, जिजीविषा तथा ज्ञान के अन्वेषण का प्रतीक है मछली । व्यक्ति की उदासी और अवसाद के रूप में शिशिर को प्रस्तुत किया गया है । जैसे –

"उपर अधर में

हवा का एक बुलबुला-भर पीने को

उछली हुई मछली

जिस की मरोड़ी हुई देह-वल्ली में

उस की जिजीविषा की उत्कट आतुरता मुखर है ।"[132]

यहाँ मछली उत्कट जिजीविषा का प्रतीक है ।

---

[131] अज्ञेय – अरी ओ करुणा प्रभामय, पृ 154

[132] अज्ञेय – आँगन के पार द्वार, पृ 13

उन्होंने पौराणिक प्रतीकों के द्वारा आधुनिक भावबोध या समकालीन चेतना को निरूपित किया है । जैसे –

"अभिनव द्रोण किन्तु कहता है :

'वत्स, वीर,

धरो चाप, साधों तीर,

धरती को विद्ध करो –

अमृत-सा कूप जल यहीं फूट निकले !'

और फिर चुपके से एकलव्य के नये कुएँ में भाँग ड़ाल देता है ।"[133]

यहाँ महाभारतीय पात्रों के द्वारा आधुनिक स्वार्थी, साम्राज्यवादी राष्ट्रों का प्रत्यक्षीकरण किया गयै है । अन्य पौराणिक पात्रों में कुंती कुंठा का प्रतीक है तो क्रौंच प्रेमी का, द्रोणाचार्य राजनीतिज्ञ का, इन्द्र मनोविकार का प्रतीक है ।

इसी प्रकार अज्ञेयजी ने व्यंग्यात्मक, वैयक्तिक, सामान्य, प्राकृतिक, यौन, मिथकीय प्रतीकों का भी प्रयोग किया है ।

बिम्ब योजना

अज्ञेयजी के बिम्ब-प्रयोग के संबंध में उल्लेख है – "अज्ञेय के बिम्ब उनकी शब्द सामर्थ्य, बौद्धिकता और तीव्र संवेदनशीलता का परिचय देते हैं ।"[134]

---

[133] अज्ञेय – इन्द्रधनुष रौंदे हुए, पृ 31-32

[134] डॉ.संतोष कुमार तिवारी – अज्ञेय से अरुण कमल भाग 1, पृ 65

इससे यह बात सिद्ध होता है कि अज्ञेयजी द्वारा प्रयुक्त बिम्ब काव्य की महत्ता बढ़ाने में सक्षम निकले है । जैसे –

"पति-सेवा रत साँझ
उचकता देख पराया चाँद
ललकार ओट हो गयी ।"[135]

इसमें प्रयुक्त बिम्ब द्वारा आत्मीय अनुभूतियों से संपृक्त मानवीकरण का सफल यत्न चित्रित किया गया है ।

"रात के रहस्यमय, स्पन्दित तिमिर को,
भेदती कटार-सी
कौंध गई बौखलाए मोर की पुकार-
वायु को कँपाती हुई,
छोटे-छोटे बिन जमे ओस-बिन्दुओं को झकझोरती,
दुस्सह व्यथा सी
नभ पार ।"[136]

यहाँ मानव मन:स्थिति के अनुरूप वातावरण निर्मित करता हुआ रात के सन्नाटे में मोर की पुकार को बिम्बित किया गया है ।

[135] अज्ञेय – अरी ओ करुणा प्रभामय, पृ 67
[136] अज्ञेय – पूर्वा, पृ 154

लोकोक्तियाँ और मुहावरे

अज्ञेयजी ने मुहावरों का कम प्रयोग किया है । फिर भी परंपरागत एवं परिवर्तित मुहावरों का प्रयोग मिलता है । परंपरागत मुहावरों के अंतर्गत हिन्दी-उर्दू मुहावरे आते है । जैसे – आँखों से चूमना, सिर ऊँचा करना, सिर टरकना, रंग बदलना, मुट्टी में रखना, मुर्गी का दिल रखना, हृदय में उतरना, लाज रखना आदि परंपरागत हिन्दी मुहावरे मिलते हैं तो उर्दू मुहावरों में – फबतियां कसना, ज़मीन कुरेदना, उमर के दाग धोना, मुलम्मा छूटना आदि आते हैं । परिवर्तित मुहावरों के लिए उदाहरण है – दूर के ढ़ोल सुहावने, घर का जोगी जोगना आनगाम कौ सिद्ध आदि ।

अज्ञेयजी ने मुहावरों के प्रयोग से भाषा को सशक्त बना दिया है । उनके द्वारा नवनिर्मित मुहावरा है – "अन्तहीन सागर में विष-वपन कर रही हैं ।"[137] यहाँ 'विष-वपन कर' उनके द्वारा निर्मित मुहावरा है । यहाँ 'विष वपन करना' का प्रयोग 'विष के बीज बोना' के लिए किया गया है ।

5.5.2 गजाननमाधव मुक्तिबोध की काव्यभाषा

काव्य जगत में श्री गजाननमाधव मुक्तिबोध और उनके काव्य का अक्षुण्ण महत्व है । उनके काव्य गहन और गंभीर होने के कारण सामान्य जनता की पकड़ में नहीं आते । उन्होंने प्रतीक, बिम्ब, फैन्टेसी एवं क्लिष्ट भाषा का अधिकतर प्रयोग किया है । इसके फलस्वरूप उनके काव्य भी क्लिष्ट

[137] अज्ञेय – इन्द्रधनु रौंदे हुए, पृ 33

बन गयी । सुसंस्कृत हिन्दी उनके काव्य की सामान्य भाषा है । मुक्तिबोध की भाषा में परिष्कार और परिमार्जन कम होने से अनगढ़ है । फिर भी उसमें जो सहजता है वह उनकी भाषा की अपनी शक्ति है ।

अलंकार

मुक्तिबोध ने अपनी रचनाओं में अलंकारों को आग्रह पूर्वक नहीं लाया है वह सहज ही आ गए हैं । उन्होंने अनुप्रास, उत्प्रेक्षा, वीप्सा, उपमा, रूपक आदि अलंकारों का सफल एवं सुंदर प्रयोग किया है । उदाहरण के लिए –

"औ' जीवन-मन के सुन्दर-सुन्दर समाधान
सन्तोष और सन्तुलन
रुचिर औचित्य, उचित अभिरुचि के रंग
कि रंग-बिरंगे काँच-कंगनों-से
सब छिन्न-भिन्न होंगे ।"[138]

यहाँ अनुप्रास अलंकार का सुंदर नियोजन हुआ है ।

"बरगद की डाल एक
सड़क के एक ओर लटकती है इस तरह
मानो कि आदमी के जनम के बहुत-बहुत पहले,
पृथ्वी की छाती पर
जंगली मैमथ की सूँड सूँघ रही हो ।"[139]

[138] मुक्तिबोध – भूरी भूरी खाक धूल, पृ 63

यहाँ उन्होंने उत्प्रेक्षा अलंकार का प्रयोग किया है ।

उपमा के लिए उदाहरण –

"टेढ़े मुँह चाँद की ऐयारी रोशनी
बड़े पुल-मेहराबों के ठीक नीचे बैठकर
चोरों-सी उचक्कों-सी चली चलती कहीं पर
नालों और झरनों के
किनारे-किनारे चल ।"[140]

यहाँ शोषक वर्ग की क्रियाओं को चोरों –सी, उचक्कों-सी और शहीदों सी कही है ।

"टूटती बेड़ियों की नोकों
से जख़्म हुआ औ' खून बहा
यह जान तुरत
अपने अनुभव के गन्धक का
चुपड़ा मरहम मेरे व्रण पर तुमने सहसा ।"[141]

यहाँ उन्होंने रूपकालंकार का प्रयोग किया है ।

[139] मुक्तिबोध – मुक्तिबोध ग्रंथावली भाग 2, पृ 299
[140] मुक्तिबोध – मुक्तिबोध ग्रंथावली भाग 2, पृ 304
[141] मुक्तिबोध – मुक्तिबोध ग्रंथावली भाग 2, पृ 272

छंद

उनके काव्यों में आठ मात्रावाले तथा अष्टक आवृत्तिवाले छंद की भरमार है । जैसे –

) "रवि का प्रकाश,
शशि का विकास –
पुसत्वहीन नर का विलास ।
ये सूर्य-चन्द्र,
नभ-वक्ष लुब्ध,
वे अमित वासना के शिकार ।"[142]

) "धोर धनुर्धर, बाण तुम्हारा सब प्राणों को पार करेगा,
तेरी प्रत्यंचा का कम्पन सूनेपन का भार हरेगा ।"[143]

यहाँ आठ मात्रावाले छंद का प्रयोग प्रथम उद्धरण में हो तो दूसरे में अष्टम आवृत्तिवाले छंद का प्रयोग दृष्टव्य है ।

शब्द

उनके द्वारा प्रयुक्त संस्कृत निष्ठ शब्द है – व्यूह, दस्यू, प्रचंड़, ब्रह्मांड़, तथ्य, रूपांतर, अनुभूति, गुप्त, वाणी, रुधिर, वक्ष, सर्वेक्षण, सृष्टि, अस्तितिव, दीप्ति, स्मित, दिव्य, सूर्य आदि । अजब, तकाजा, पर्दा, इलाका, अजनबी,

[142] मुक्तिबोध – तारसप्तक, पृ 59
[143] मुक्तिबोध – तारसप्तक, पृ 62

सितारे, कायम, मुल्क, अनजान, बुनियाद, आवाज़, निगाह, खराब, गश्त, साफ, शिकंजा, पावा, तरबीब, नज्जारा आदि उनके द्वारा प्रयुक्त उर्दू शब्द है । उन्होंने कुछ मराठी शब्दों का भी प्रयोग किया है । जैसे – नक्षे, सिवन्ती, बघार, हंकाल, थर, परत आदि । उनके काव्यों में आइडियालोजी, फिलोसफी, हायफन, थीसिस, रिजटर्ड, होल्डर, करफ्यू, फैशन, टेलीफोन आदि अंग्रेज़ी शब्दों का भी प्रयोग मिलते है । निहारकर, गीला, दिनदहाड़े, अडियल, भन्नाती, भभक उठी, दचक, पोले, अटपट जैसी बोलचाली शब्दों के साथ-साथ मशीन, बम, बल्ब, तरंगें, स्फोटक, इलेक्ट्रान जैसे वैज्ञानिक शब्दावली भी उनके काव्यों में उपलब्ध है । उनके द्वारा नवनिर्मित शब्द है – अनाकार, अरोक, अनाम, अनाशा आदि ।

बिम्ब योजना

मुक्तिबोध की प्रारंभिक रचनाओं में छायावादी बिम्ब सृष्टि का प्रभाव देख सकते है तो बाद की कविताओं मे आधुनिक युग और जन जीवन से संबंधित बिम्बों की अधिकता है । उदाहरण के लिए –

"मेरे अन्तर, मेरे जीवन के सरल यान,
तू जबसे चला, रहा बेघर,
तन गृह में हो, पर मन बाहर,
आलोक-तिमिर, सरिता-पर्वत कर रहा पार !"[144]

[144] मुक्तिबोध – तारसप्तक, पृ 54

यहाँ कवि यान के बिम्ब द्वारा जीवन व मन की गत्यात्मकता को प्रकट किया है

इसके अलावा उनके काव्यों में बिम्ब के विविध रूप जैसे दृश्य, स्पर्श, शब्द, रस बिम्ब मिलते हैं ।

फैंन्टेसी

फैन्टेसी साहित्य में एक शैली के रूप में प्रयुक्त है । साहित्य में इसे स्वप्न-तंत्र की शैली कहलाता है । जिस प्रकार स्वप्न में धुंधलापन, अस्पष्टता, वायवीयता और विरलता है उसी प्रकार फैन्टेसी में भी होता है । इसमें कवि ने बिम्बों की शृंखला निर्मित करके स्वप्न की तरह विभाजन, संघनन, प्रतीकात्मकता, कायान्तरण का प्रयोग किया है ।

फैन्टेसी का कोई नियम या रूपरेखा न होने के कारण कवि को काव्य में विचित्रता, वायवीयता, अस्पष्टता और आकर्षण लाने में कोइ पाबंधी नहीं है लेकिन इन सबके बीच में कथ्य का भाव का उपस्थित होना आवश्यक है । भाव और कथ्य में अस्पष्टता आने पर फैन्टेसी ही कथ्य का भ्रम पैदा करेगी और काव्य निरर्थक बना देगी ।

फैन्टेसी कल्पना के रंगों से वास्तविकता को प्रस्तुत करते है । लेकिन फैन्टेसी में जीवन-तथ्य को पहचानना मुश्किल है ।

) "आँखों में छाये रहते सपनों की छाया ।"[145]

) "भयंकर स्वप्नों का विश्व-रूप ।"[146]

) "उस समाधी के पास करुण सायं स्मृति-रोदन ।"[147]

) "किसी भव्य-गम्भीर कथा की स्मृति से पावन ।"[148]

यहाँ उन्होंने दमित इच्छाओं के प्रतीक के रूप में स्वप्न, स्मृति शब्दों का प्रयोग करके फैन्टेसी का निर्माण किया है ।

5.5.3 शमशेर बहादुरसिंह की काव्यभाषा

दूसरे सप्तक के प्रमुख कवि शमशेरजी की कविताओं में व्यक्ति से ज़्यादा समाज को प्रमुख स्थान हैं । डॉ.शिवकुमार मिश्रजी के अनुसार - "दलितों-पीड़ितों के प्रति सहानुभूति, जन-जन की मुक्ति और एकता के प्रति अड़िग विश्वास, मानव व्यक्तित्व पर आस्था, मानवता के नवयुग के प्रति वास्तविक आकांक्षा, कर्मठता, दृढ़ता, आशा से ओतप्रोत क्रान्ति की संतुलित वाणी, राष्ट्र के प्रति कवि का वास्तविक प्रेम सब कुछ उसमें बड़े ही सधे और सुधरे रूप में व्यक्त हुआ है ।"[149] यानी एक प्रगतिशील कविता की प्रवृत्तियाँ उनकी रचनाओं में प्राप्त है साथ ही प्रयोगवादी कविता की निराशा, घुटन, पीड़ा भी प्राप्त होते हैं ।

---

[145] मुक्तिबोध रचनावली भाग 1, पृ 189

[146] मुक्तिबोध रचनावली भाग 1, पृ 239

[147] मुक्तिबोध रचनावली भाग 1, पृ 189

[148] मुक्तिबोध रचनावली भाग 1, पृ 190

[149] डॉ.शिवकुमार मिश्र – नया हिन्दी काव्य, पृ 274

शमशेरजी हिन्दी साहित्य में 'जटिल कवि' माने जाते हैं । उनकी इस जटिलता का प्रमुख कारण भाषा ही है । उन्होंने भाषा का रूप परिवर्तन और नवीन प्रयोग किया है । उन्होंने अरबी, फारसी, उर्दू, अंग्रेज़ी आदि अनेक भाषाओं से शब्द, प्रतीक, बिम्ब ग्रहण किए हैं । इससे उनकी भाषा दुरूह बनती है । उनकी भाषा अत्यधिक सृजनात्मक और संवेदनशील है ।

शमशेर की भाषा में अनुभूति की तीव्रता और गहराई होती है जिससे वह अतिविशिष्ट हो जाता है । इसलिए 'संवेदनशील भाषा के मर्म कवि' माना जाता है । जैसे –

"एक गीत मुझे याद है ।
हर रोम के नन्हे-से कली-मुख पर कल
सिहरन की कहानी मैं था;
हर ज़र्रे में चिम्बन के चमक की पहचान ।
पी जाता हूँ आँसू की कनी-सा वह पल ।"[150]

इसमें भाषा का विशिष्ट प्रयोग देख सकते है ।

अलंकार

उनके द्वारा प्रयुक्त अलंकार के लिए उदाहरण –

"नींद-भरी आलस की भोर का
कुंज गदराया है

[150] शमशेर – कुछ कविताएं, पृ 67

यौवन के सपनों से

अभी अनजान मानो

-- -

चुम्बन की मीठी पुचकारियाँ

खिल रही कलियों को फूलों को हँसा रहीं ।"[151]

यहाँ प्रकृति चित्र मानवीय भावनाओं से आपूरित है ।

छंद

उन्होंने मुख्य रूप से मुक्त छंद का प्रयोग किया है । जैसे –

"मैं इस तरह मुस्कराया,

जैसे शाम के पानी में

डूबते पहाड़ गमगीन मुस्कराते हैं ।"[152]

यहां मुक्त छंद का सफल प्रयोग दृष्टव्य है ।

शब्द

आरंभिक काल में उनकी भाषा उर्दू थी । बाद में छायावादी प्रभाव से रचनाओं में संस्कृतमय भाषा का प्रयोग हुआ । उनकी आरंभिक कविताओं में अत्यंत दुरूह हिन्दी का प्रयोग दृष्टव्य है । उदाहरण के लिए –

[151] शमशेर – कुछ कविताएं, पृ 62

[152] शमशेर – कुछ कविताएं, पृ 52

"दु:संस्कृति के तारण

जिन मंत्रों के गुरु उच्चारण,

हारण कर्म-विषम-तम के जो –

लुप्त अंधकार में सब; 'गुण

भारत के अब गुप्त;'

काल यह हिन्दु को यम।"[153]

यहाँ शब्द के कठिन प्रयोग से संप्रेषण की शक्ति नष्ट हो गयी है या अर्थ स्पष्ट नहीं हो पाया है । यहाँ पाठक दुविधा में पड़ जाता है कि इनमें कवि अदृश्य शक्ति के प्रति आकृष्ट हो रहा हो या नवीन जागरण की उद्भावना कर रहा हो ।

प्रतीक योजना

उनके द्वारा प्रयुक्त प्रतीक के लिए उदाहरण –

"सूरज

उगाया जात,

फूलों में;

यदि हम

एक साथ

हँस पड़ते ।"[154]

[153] शमशेर – चिका भी नहीं मैं, पृ 86

[154] शमशेर – कुछ और कविताएं, पृ 85

यहाँ उन्होंने सूरज को मानव-जिजीविषा के प्रतीक रूप में चित्रित किया है ।

बिम्ब योजना

शमशेरजी के काव्यों में बिम्ब के विविध रूप उपलब्ध हैं । यथा –

"तकिए पे

सुर्ख गुलाब मेंने

समझे ....

दो

सेब मैंने समझे दो ...

क्यों ?

वो तो...वो तो

दो दिल थे ।"[155]

यहाँ उन्होंने 'गुलाब' का प्रयोग एक संपूर्ण ऐन्द्रिय उपस्थिति करने के लिए किया है ।

"मेरी बाँसुरी है एक नाव की पतवार –

जिसके स्वर गीले हो गये हैं,

छप्-छप्-छप् मेरा हृदय कर रहा है...छप् छप् छप् ।"[156]

यहाँ जल के अनुरणात्मक बिम्ब से हृदय में पीड़ा के प्रवाह को चित्रित किया है ।

---

[155] शमशेर – कुछ कविताएं व कुछ और कविताएं, पृ 127

[156] शमशेर – कुछ कविताएं व कुछ और कविताएं, पृ 132

"तैरती आती है बहार

पाल गिराए हुए

भीने गुलाब-पीले गुलाब के ।"[157]

यहाँ तैरने में ध्वनि बिम्ब, पाल में चाक्षुष बिम्ब और भीने गुलाब में गन्ध बिम्ब का प्रयोग किया गया है ।

संवादात्मकता

शमशेर के काव्यों में संवाद का विशेष प्रयोग मिलते हैं । जैसे –

"उसने मुझसे पूछा, तुम्हारी कविताओं का क्या मतलब है ?

मैंने कहा – कुछ नहीं ।

उसने पूछा – फिर तुम इन्हें क्या लिखते हो ?

मैंने कहा – ये लिख जाती हैं । तब

इनकी रक्षा कैसे हो जाती है ?"[158]

यहाँ उन्होंने संवाद शैली की नाटकीयता के द्वारा काव्य में लय को बिठा दिया है ।

उसी प्रकार शमशेरजी ने व्यंग्य का प्रयोग भी किया है । उदाहरण के लिए –

"जहाँ कुत्तों का जीवन भी दीर्घतर लगता है,

स्पृहणीय, केवल

---

[157] शमशेर – कुछ कविताएं व कुछ और कविताएं, पृ 66

[158] शमशेर – कुछ कविताएं व कुछ और कविताएं, पृ 18

अपना ही दयनीय ।

क्यों जन्मा था मनुष्य

बीसवीं सदी के मध्याह्न में

यों मरने के लिए ?"[159]

यहाँ उन्होंने जीवन की सच्चाई को व्यंग्य के साथ प्रस्तुत किया है ।

5.6 निष्कर्ष – आधुनिक युगीन काव्यभाषा के मूल्यांकन का मानदण्ड

हिन्दी साहित्य में आधुनिक काल विषय एवं शिल्प की दृष्टि से एकदम आधुनिक तथा नवीन रहा है । भारतेंदु युग में भाषा का रूप ब्रज से खडीबोली में परिवर्तित हुई जो द्विवेदी युग में परिनिष्ठित खडीबोली बन गई । छायावाद युगीन भाषा में काल्पनिकता का प्रयोग अधिक मिलते हैं तो प्रगतिवादी एवं प्रयोगवादी युग में भाषा यथार्थ का संस्पर्श करने लगी ।

आदिकाल एवं मध्यकाल के काव्यों में विषय की विविधता उतनी नहीं है जितनी आधुनिक युगीन काव्यों में है । विषय की विविधता की तरह शिल्प की विविधता को भी इस युग की विशेषता मान सकते हैं जिसका प्रभाव तत्कालीन काव्यभाषा में स्पष्ट है । आधुनिक काल के प्रत्येक चरण में भाषा अपना रूप बदलते दिखाई पड़ते है । हर एक वाद या चरण में भाषा में नए-नए प्रयोग मिलते हैं । कवियों ने मन की अभिव्यक्ति, सामाजिक-राजनीतिक विडंबनाओं को जिस प्रभावी रूप में अभिव्यक्त करना चाहा है वह उनकी काव्यभाषा में देख

[159] शमशेर – चुका भी नहीं मैं, पृ 84

सकते हैं । तीव्र अभिव्यक्ति के लिए वे शिल्प के हर एक पहलु का सशक्त एवं बहुल प्रयोग करते दिखाई पड़ते हैं ।

भारतेंदु-द्विवेदी युगीन काव्यों में संस्कृत शब्दों एवं शब्दावलियों का अधिक प्रयोग है तो छायावादी युग में संस्कृत तत्सम, तद्भव शब्दों के अलावा व्यंजना एवं लक्षणा शब्दशक्तियों का सशक्त प्रयोग मिलते है । प्रगतिवादी युग में देशज, आंचलिक तथा अंग्रेज़ी शब्दों का विशेष रूप देखने को मिलता है तो प्रयोगवादी युग में अंग्रेज़ी शब्दों का बहुल प्रयोग तथा बिम्ब, प्रतीक, फैन्टेसी का नवीन एवं सुंदर रूप दृष्टिगत होते है । इस प्रकार शिल्प-वैविध्य की दृष्टि से भारतेंदु युग, द्विवेदी युग, छायावादी युग, प्रगतिवादी युग तथा प्रयोगवादी युग भिन्नता रखते हैं और वही विविधता इनको एक-दूसरे से अलग रखते हैं ।

.....ଓଡ.....

उपसंहार

संसार में असंख्य भाषाएँ हैं । उनमें कुछ, रचना तथा अर्थ की दृष्टि से समान और भिन्न भी है । भाषावैज्ञानिकों ने रचना तथा गठन की दृष्टि से और उत्पत्ति अथवा परिवार की दृष्टि से इन्हें दो वर्गों में विभाजित किया है । वे क्रमश: आकृतिमूलक और पारिवारिक वर्गीकरण नाम से जाना जाता है । आकृतिमूलक वर्गीकरण में शब्दों के रूप आदि की दृष्टि से भाषा को विभाजित किया गया है । परंतु इस सिद्धांत को पर्याप्त मान्यता प्राप्त नहीं हुई है । पारिवारिक वर्गीकरण का अनुमान है कि सृष्टि के आरंभ में जितनी भाषाएँ थी वे सब एक कुल या परिवार की है । संसार की समस्त भाषाओं को बारह कुलों में विभाजित किया जा सकता है । इन बारह कुलों में से भारोपीय कुल तथा द्रविड़ कुल की भाषाओं से हमारा संबंध है । भारतीय आर्य भाषाओं से हिन्दी का संबंध है । प्राचीन काल में भारतीय आर्य भाषा के अंतर्गत संस्कृत, पाली, प्राकृत और अपभ्रंश की गणना होती थी तो आधुनिक आर्य भाषाओं में सिंधी, लहन्दी, पंजाबी, गुजराती, राजस्थानी, हिन्दी, बिहारी, उड़िया, बंगला, गुजराती, मराठी आदि आते हैं । मध्यदेश की भाषा है हिन्दी । हिन्दी भाषा के इतिहास ग्रंथों में हिन्दी भाषा का अर्थ बिहार, उत्तर प्रदेश, मध्यप्रदेश, राजस्थान, हिमाचल प्रदेश, दिल्ली की भाषा से हैं । हिन्दी भाषा और उपभाषाओं का जन्म शौरसेनी और अर्द्ध मागधी जैसे मध्यदेश की जनभाषाओं से हुआ है । आज भी इन प्रांतों व क्षेत्रों में सभी उपभाषाओं में प्राप्त साहित्य मैथिली, खड़ीबोली,

पूर्वी हिन्दी, ड़िंगल, पिंगल तथा बांगरू में वर्णित और जीवित है । सांस्कृतिक, साहित्यिक एवं व्यावहारिक दृष्टि से हिन्दी भाषा के क्रमिक विकासोन्मुखी इतिहास को तीन कालों में विभक्त कर सकते हैं – आदिकाल, मध्यकाल और आधुनिक काल ।

आदिकाल का समय ईसा की ग्यारहवीं शताब्दी से तेरहवीं शताब्दी तक माना जाता है । प्राकृत व अपभ्रंश के बंधनों में जकड़ी हुई हिन्दी ने इससे मुक्त होने का प्रयत्न इन दो शतकों में किया है । ड़िंगल, पिंगल, मैथिली और ब्रज इस काल की प्रमुख हिन्दी उपभाषा रही है । अपभ्रंशीय जनभाषाओं के तद्भव शब्द इन उपभाषाओं में सम्मिश्रित होते गये और ये उपभाषाएँ क्षेत्रीय विशिष्टता के साथ साहित्यिक तथा सांस्कृतिक चेतनाओं की प्रतिनिधि बनीं ।

आदिकालीन काव्यभाषा में खडीबोली हिन्दी या हिन्दी का परिनिष्ठित रूप अनुपलब्ध है । यानी हिन्दी उसकी शैशवावस्था में थी । इस युग की भाषा डिंगल – पिंगल या अपभ्रंश मिश्रित हिन्दी माना जाता है । चंदबरदाई कृत 'पृथ्वीराज रासो' इसके लिए प्रमाण है । इस ग्रंथ में प्रयुक्त हिन्दी भाषा में उर्दू-अरबी–फारसी शब्दों का प्रयोग एवं प्रभाव स्पष्ट परिलक्षित होता है । इस युग में आनेवाले प्रमुख कवि विद्यापति ने मैथिली भाषा के साथ-साथ संस्कृत तत्सम एवं तद्भव शब्दों की अधिकता मिलती है ।

आदिकालीन काव्यभाषा के मूल्यांकन से यह बात सिद्ध हो जाती है कि इस युग में वीर रस की बहुलता है और श्रृंगार इसके अंगी रस के रूप में

विद्यमान है । इस युग में काव्य रचना का प्रमुख उद्देश्य राजाओं का गुणगान एवं युद्धों का सजीव वर्णन रहा है । अत: काव्यभाषा में ओज एवं माधुर्य गुण की प्रमुखता है । उसी प्रकार छप्पय छंद के व्यापक प्रयोग के साथ – साथ उपमा, उत्प्रेक्षा जैसे अलंकारों का भी सशक्त प्रयोग दृष्टव्य है । वास्तव में आदिकालीन रचनाओं में चार प्रकार की भाषाओं – डिंगल, पिंगल, मैथिली और ब्रज – का प्रयोग मिलता है ।

चौदहवीं शताब्दी से अठारहवीं शताब्दी तक के समय को मध्यकाल कहते हैं । इसमें चौदहवीं शताब्दी से पन्द्रहवीं शताब्दी तक के समय में हिन्दी की पुरानी बोलियाँ, अवधी, ब्रजभाषा और खड़ीबोली साहित्यिक रूप धारण कर लिया । हिन्दी भाषा को संस्कृत के तत्सम शब्दों से विशेष शक्ति प्राप्त हुई । सोलहवीं शताब्दी से अठारहवीं शताब्दी तक के समय में साहित्यिक भाषा के रूप में ब्रज एवं अवधी भाषा ने प्रौढ़ता प्राप्त की । मुगलों के शासन काल में हिन्दी उपभाषाओं में अरबी-फारसी ध्वनियाँ समाविष्ट हो गयी और अरबी-फारसी के गरीबनिवाज़, इज़ाफा, फौज आदि लोकप्रचलित शब्दों का खुलकर प्रयोग करने लगे । तत्पश्चात उर्दू, पुर्तगली, ड़च तथा अंग्रेज़ी के शब्द भी हिन्दी में स्थान ग्रहण किए ।

मध्ययुग में हिन्दी भाषा के अंतर्गत अवधी तथा ब्रज भाषा का प्रचार-प्रसार सशक्त हो गया । इन भाषाओं से हिन्दी का भक्तिकाल और रीतिकाल

आपूरित है । इस युग में भाषा राजमहलों के चार दीवारों से निकलकर आम जनता के पास आ गई । भक्ति आंदोलन का प्रभाव साहित्य पर भी पड़ा जिसका सुंदर उदाहरण भक्तिकालीन काव्यों में है । भक्तिकाल के प्रमुख कविगण – कबीर, जायसी, तुलसीदास और सूरदास है । इन कवियों ने स्वांत सुखाय और बहुजन हिताय काव्य रचकर जनता को आंदोलित किया है । जनता में जागरण और आनंद उत्पन्न करने में इस युग के काव्य सफल तथा सक्षम निकले हैं ।

कबीर ने 'सधुक्कडी' भाषा का सशक्त प्रयोग अपने दोहों में करके जनता को जाग्रत करने में सफलता प्राप्त की है । साधु संतों के प्रचार-यात्राओं के कारण उनकी सधुक्कडी भाषा में अनेक तत्वों का सम्मिश्रण आ गया है । लेकिन यह व्याकरण के नियमों से मुक्त थी । पंजाब, बिहार, महाराष्ट्र आदि क्षेत्रों में इसकी कई शैलियाँ विकसित हुई है । नाथ-पंथ के अधिकांश प्रचारकों का संबंध पंजाब-खड़ीबोली भाग से होने के कारण कबीर की भाषा में पूर्वी भाषा और पंजीबी-खड़ीबोली का प्रभाव भी है । उलटबांसियों का प्रयोग उनके काव्य की प्रमुख विशेषता रही है । भावों की सफल अभिव्यक्ति के लिए श्रृंगार, वीर, हास्य रसों का प्रयोग, उपमा, उत्प्रेक्षा जैसे अलंकारों का प्रयोग दोहा छंद के साथ प्रयुक्त किया गया है ।

पूर्व मध्यकाल में अवधी हिन्दी क्षेत्र की एक प्रमुख साहित्यिक भाषा थी । लेकिन उत्तर मध्यकाल में ब्रजभाषा का प्रचार-प्रसार बढ़ने के कारण अवधी का महत्व घटने लगा । इसलिए अवधी के कवि ब्रजभाषा में काव्य रचना करने लगे । अवधी में ब्रज एवं खड़ीबोली का मिश्रण अधिक हुआ है । अवधी के कवियों ने अपनी भाषा को व्यापक तथा सुबोध बनाने के लिए ब्रज एवं खड़ीबोली का प्रयोग किया है । इस भाषा के प्रमुख कवि हैं – जायसी और तुलसीदास ।

इस युग के प्रेमाख्यान कवि जायसी ने श्रृंगार रस का सुंदर नियोजन 'पद्मावत' में किया है । इसके लिए उन्होंने ठेठ अवधी का प्रयोग किया है जिसके द्वारा 'पद्मावत' साधारण जनता के बीच खूब प्रचलित हुआ । उनके दोहा, चौपाई छंद युक्त पदों में माधुर्य एवं प्रसाद गुण स्पष्ट परिलक्षित है ।

तुलसीदास ने अपने प्रसिद्ध काव्य 'रामचरितमानस' अवधी भाषा में रचकर जनता को आनंद सागर में डुबा दिया है । अवधी भाषा माधुर्य गुण प्रधान भाषा है । अत: 'रामचरितमानस' में भी माधुर्य का आधिक्य है साथ ही श्रृंगारादि रसों का प्रयोग भी मिलते हैं ।

कृष्णभक्ति धारा के द्वारा ब्रजभाषा आदिकाल में ही साहित्यिक रूप ग्रहण कर चुकी थी । साहित्यिक ब्रज कृत्रिम होने पर भी उसकी लोकप्रियता के कारण मुगल बादशाहों ने इसको संरक्षण दिया । ब्रजभाषा अपने निकट की भाषाओं को

प्रभावित करने में सक्षम रही है । तुलसी के 'रामचरितमानस' में अवधी और ब्रज का मिलाजुला रूप देख सकते है तो रीतिकालीन काव्यों में ब्रज और बुन्देली का । मुसलमानों के आगमन से फारसी भाषा का प्रचार बढ़ने लगा । मुसलमान राजाओं की श्रृंगार भावना की अभिव्यक्ति पर फारसी काव्य का पर्याप्त प्रभाव पड़ा । इसलिए ब्रजभाषा में अरबी-फारसी शब्दों का प्रभाव पड़ा । ब्रजभाषा के प्रमुख कवि हैं – सूरदास और आचार्य केशवदास ।

ब्रजभाषा के प्रमुख कवि सूरदास 'सूरसागर' के माध्यम से जनता के बीच ख्याति प्राप्त है । 'ओ कार' बहुला ब्रजभाषा का सुंदर प्रयोग 'सूरसागर' में मिलते हैं । माधुर्य गुण प्रधान उनके काव्य में मानवीकरण अलंकार का प्रयोग मिलते हैं ।

रीतिकालीन कवियों ने ब्रजभाषा को काव्यभाषा के रूप में अपना लिया । इस समय साहित्य पाण्डित्य प्रदर्शन का माध्यम बन गया । अत: कवियों ने ब्रजभाषा काव्यों में संस्कृत शब्दावलियों का ज़्यादा समावेष किया । इस काल के अधिकांश कविगण दरबारी कवि रहे हैं । अत: इनके काव्यों में श्रृंगार एवं वीर रस की अधिकता के साथ-साथ माधुर्य और ओज गुण का प्रयोग भी है । आचार्य केशवदास ने काव्य सिद्धांतों का भरपूर प्रयोग करके काव्य को जटिल बना दिया है । बिहारी ने अपने काव्य में श्रृंगार रस की सुंदर अभिव्यक्ति की है । शब्दों का उचित चयन करने में वे सिद्धहस्त हैं । उन्होंने अलंकार, रस, छंद

आदि का सुंदर प्रयोग उचित शब्द चयन के ज़रिए किया है । भूषण के काव्यों में वीर रस और ओज गुण की प्रधानता है तो मतिराम और घनानंद के काव्यों में श्रृंगार एवं माधुर्य का प्राचुर्य है । घनानंद ने स्वांत सुखाय काव्य रचा है और इसी कारण उन्होंने भाषा के साधारण रूप को या बोलचालीय रूप को अपना लिया है ।

उन्नीसवीं शताब्दी के आरंभ के प्रथम चरण में मुसलमानों के शासन का अंत और अंग्रेज़ी शासन का आरंभ होता है और यहीं से हिन्दी भाषा के आधुनिक काल की शुरुआत होती है । राजनीतिक परिवर्तन के कारण अवधी तथा ब्रज भाषा का स्थान खड़ीबोली ले लिया । खड़ीबोली ने संस्कृत के तत्सम शब्दों से पर्याप्त शक्ति संचित की और फोर्ट विलियम कॉलेज की स्थापना से इसमें गद्य रचनाएँ भी होने लगी । भारतेंदु काल में इसका निश्चित रूप था और द्विवेदी काल में आकर परिमार्जित एवं परिष्कृत होकर काव्यभाषा का रूप धारण किया ।

ब्रजभाषा के व्यापक प्रयोग के कारण खड़ीबोली में भी ब्रज का प्रभाव एवं शब्द आ गए हैं । आधुनिक काल की प्रारंभिक रचनाओं जैसे 'प्रियप्रवास' और 'साकेत' में ब्रज तथा संस्कृत शब्दों और शब्दावलियों का प्रभाव एवं सशक्त प्रयोग परिलक्षित होता है । रीतिकालीन श्रृंगारिकता का प्रभाव भी स्पष्ट रूप में है । लेकिन छायावादी युग में भाषा आधिकाधिक काल्पनिक बन गयी ।

काल्पनिकता को प्रस्तुत करने के लिए छायावादी कवियों ने मानवीकरण, विशेषण-विपर्यय जैसे पाश्चात्य अलंकारों का व्यापक प्रयोग किया । इसके लिए उन्होंने लक्षणा एवं व्यंजना शब्द –शक्तियों का सहारा लिया ।

छायावाद के बाद प्रगतिवाद का प्रारंभ होता है । युग के अनुसार काव्यभाषा और विषय में अंतर आता है । इस युग के कवियों ने काल्पनिकता को छोडकर यथार्थ को पकडने की कोशिश की है । नागार्जुन, त्रिलोचन, दिनकर जैसे कवियों ने आम जनता में प्रचलित शब्दों को अपनाकर काव्य रचा है । यथार्थ को प्रस्तुत करने के लिए इन्होंने मिथकीय पात्रों को प्रतीक बनाकर व्यंग्यात्मक तथा ओजपूर्ण काव्य रचा है ।

प्रगतिवाद से भिन्न प्रयोगवादी कवियों ने नए-नए प्रयोगों से भाषा को परिपुष्ट किया है । इस युग के कवियों ने बिम्ब, प्रतीक, फैन्टेसी आदि का प्रयोग किया है, जिससे काव्यभाषा का ढाँचा ही बदल गया । पाश्चात्य शब्दों का प्रयोग इस युग में अधिक करने लगे । नए-नए प्रयोगों से भाषा अधिकाधिक परिवर्तित हो गयी ।

आधुनिक काल में काव्यभाषा का विकास तीव्र गति से हुई है । हर एक वाद के अनुसार भाषिक शब्दों के चयन एवं प्रयोग में अंतर आने लगे है । आधुनिक काल के आरंभ से अब तक भाषा में प्रत्यक्ष परिवर्तन हुआ है । कविता के छंद, लय और अलंकार नष्ट होने लगे है । आज काव्य ने

सपाटबयानी का रूप हाज़िल की है । आज हर एक शब्द प्रतीक बन रहे है । कविता की संरचना में भी परिवर्तन आ रहे हैं ।

प्राचीन युग से साहित्यिक भाषा के रूप में हिन्दी का प्रयोग होता रहा है । तकनीकी, वैज्ञानिक शब्दावली में इसका बहुमुखी प्रयोग हम करते है और आज भी सार्वजनिक क्षेत्र में, अधिवेशनों में, राजकीय तथा अराजकीय कार्यालयों में, समाचार पत्रों में, अनुवादों तथा विश्वविद्यालयों में खड़ीबोली का एक पक्ष यानी वैज्ञानिक प्रगति को सूचित करती है तो यह शोध प्रबंध खड़ीबोली की काव्यभाषागत प्रगति को सूचित करने का प्रयोस रहा है । काव्यभाषा के रूप में खड़ीबोली अपने प्रगति पथ पर अब भी गतिशील है । उसका शिल्पपरक रूप बदलता रहता है । आज काव्यभाषा का कलेवर संकुचित न होकर विशाल हो रही है । भाषा कभी मिटती नहीं बल्कि उसकी शैली एवं प्रयोग निरंतर परिवर्तित रहती है । काव्य जीवंत विधा है । मनुष्य की जीवंत शैली, परिवर्तित तथा विकसित सौंदर्य चेतना और युगीन आवश्यकताओं के अनुसार काव्यभाषा की शैली तथा रूप बदलते रहते है । मनुष्य की बदलते मानसिकता के अनुसार काव्यभाषा में भी परिवर्तित आते ही रहेंगे । इन बदलावों को रेखांकित करना समय की माँग है । प्रस्तुत अध्ययन से विदित हुआ कि मैथिली, अवधी, ब्रज, खड़ीबोली जैसी प्रत्येक काव्यभाषा से संबद्ध समग्र कृतियों के आधार पर गहन एवं विस्तृत अध्ययन की गुंजाइश अब भी है ।

.....ଓଡ.....

हिन्दी काव्यभाषा का ऐतिहासिक स्वरूपक्रम

आदिकालीन काव्यभाषा

1) तपै तेज चहुआंन । भान ढ़ील्ली इच्छा बर ।।

बीर रूप उपज्यौ । पन्न रष्षै जुग्गन भर ।।

आबू बै अनभंग । जंग षंगौ षल दारुन ।।

जोग भोग षग मग्ग । नीर षित्री अबधारन ।।

-चंदबरदाई, पृथ्वीराज रासो, पृ 39

2) दूर दुग्गम दमसि भञ्जेओ

गाढ़ गढ़ गूढोअ गञ्जेओ

पातिसाह ससीम सीमा

समर दरसेओ रे ।।

-विद्यापति, पदावली, पृ 10

पूर्व मध्यकालीन काव्यभाषा

3) सतगुर साह संत सौदागर तहं मैं चलि कै जाऊं जी ।

मन की मुहर धरौं गुरु आगैं ग्यांन कै घोड़ा लाऊं जी ।।

सहज पलांन चित कै चाबुक लौ की लगाम लगाऊं जी ।

बिबेक बिचार भरौं तन तरगस, सुरति कमांन चढ़ाऊं जी ।।

-कबीर, कबीर ग्रंथावली, पृ 5

4) धाइ सिंघ बरु खातेउ मारी । कै तसि रहति अही जसि बारी ।
जोबन सुनेऊँ कि नवल बसंतू । तेहि बन परेउ हस्ति मैमंतू ।।

-जायसी, पद्मावत, पृ 194

5) प्रभु बिलोकि मुनिमनु अनुराग । तुरत दिब्य सिंहासन माँगा ।।
रबिसम तेज सो बरनि न जाइ । बैठे राम द्विजन्ह सिरुनाई ।।
जनक-सुता-समेत रघुराई । पेखि प्रहरषे मुनिसमुगाई ।।
बेदमंत्र तब द्विजन्ह उचारे । नभ सुर मुनि जय जयति पुकारे ।।

-तुलसीदास, रामचरितमानस, पृ 982

6) पीतांबर की सोभा सखि री, मोपै कही न जाई ।
सागर सुत पति आयुध मानौ, बन रिपु रिपु मैं देत दिखाई ।
जा रिपु पवन तासु सुत स्वामी आभा, कुंडल कोटि दिखाई ।
धाया पति तनु बदन बिराजत बंधुक अधरनि रहे लजाई ।

-सूरदास, सूरसागर, पृ 891-892

7) कैसे जिऊँ री भाई हरि बिन कैसे जिऊँ री ।
उदक दादुर पीनवत है, जल से ही उपजाई ।।

-मीराबाई, मीरा पदावली, पृ 15

उत्तर मध्यकालीन काव्यभाषा

8) हिमांसू सूर सो लगै सो बात ब्रज सो बहै ।
दिसा लगै कृसानु ज्यों बिलोप अंग को दहै ।
बिसेष कालराति सी कराल राति मानिये ।
बियोग सीय को न, काल लोकहार जानिये ।।

-केशवदास, केशवग्रंथावली, पृ 291

9) कहलाने एकत बसत, अहि मयूर मृग बाघ ।
जगत तपोबन सौ कियौ, दीरघ दाघ निदाघ ।।

-बिहारी, बिहारीभाष्य, पृ 315

10) मान कियो सपने में सुहागिनि भौंहै चढ़ी 'मतिराम' रिसौंहैं ।
बातैं बनाय मनाय लई मनभावन कंठ लगाय हसौंहैं ।।

-मतिराम, मतिराम ग्रंथावली, पृ 313

11) ऊँचे घोर मंदर के अंदर रहनवारी ऊँचे घोर मंदर के अंदर रहाती हैं ।
कंद मूल भोग करैं कंद मूल भोग तीन बेर खाती ते वै तीनबेर खाती हैं ।

-भूषण, भूषण ग्रंथावली, पृ 211

12) अंतर आँच उसास तचै अति अंग उसीजै उदेग की आवस ।
ज्यौ कहलाय मसोसनि ऊमस क्यौं हूँ कहूँ सु धरै नहिं थ्यावस

-घनानंद, घनानंद कबित्त, पृ 125

आधुनिक युगीन काव्यभाषा

भारतेंदु-द्विवेदी युगीन काव्यभाषा

13) मारा मल्लों-सहित गज को कंस से पातकी को ।
मोटीं सारी नगर-वर की दानवी-आपदायें ।।

-हरिऔध, साकेत, पृ 126

14) कहीं सहज तरुतले कुसुम-शय्या बनी,
ऊँघ रही है पड़ी जहाँ छाया घनी !

-मैथिलीशरण गुप्त, साकेत, पृ 153

छायावादी युगीन काव्यभाषा

15) जलधि-लहरियों की अँगडाई
बार-बार जाती सोने ।

-प्रसाद, कामायनी, पृ 33

16) कमल पर जो चारु दो खंजन, प्रथम
पंख फडकाना नहीं थे जानते,
चपल चोखी चोट कर अब पंख की
वे विकल करने लगे हैं भ्रमर को ।

-पंत, वीणा-ग्रंथि,पृ 108

17) अनिमेष-राम-विश्वजिद्दिव्य-शर-भंग-भाव,
विद्धांग-बद्ध-कोदण्ड-मुष्टि-खर-रुधिर-स्राव ।

-निराला, राम की शक्तिपूजा, पृ 92

18) नव कुन्द-कुसुम से मेघ-पुँज,
बन गये इन्द्रधनुषी वितान,
दो मृदु कलियों की चटक, ताल,
हिम-बिन्दु नचाती तरलप्राण ।

-महादेवी वर्मा, संधिनी, पृ 16

19) जो तुमने गिरि-वन में जप-तप –
कर उसको मनुहारा,
देवपुरी के झूलों पर से
भू की सेज उतारा ।

-बच्चन, आरती और अंगारे, पृ 29

प्रगतिवादी काव्यभाषा

20) भगवती भगीरथी –

ग्रीष्म में यह हो गई थी प्रतनु-सलिला

विरहिणी की पीठ

-नागार्जुन, सतरंगे पंखोंवाली, पृ 52

21) रक्त से सिंच कर समर की मेदिनी

हो गयी है लाल नीचे कोस-भर,

और ऊपर रक्त की खर धार में,

तैरते हैं अंग रथ, गज, वाजी के ।

-दिनकर, कुरुक्षेत्र, पृ 12

22) मैं चिता का चाहता हूँ अब उजाला ।

बूँद जितना तिमिर सागर बन गया है ।

बस उसीकी लहर में जग फँस गया है ।

- त्रिलोचन, ताप के ताए हुए दिन, पृ 42

प्रयोगवादी काव्यभाषा

23) भोर बोला नदी तट की घांटियां का नाद ।

चोट था कर जग उठा सोया हुआ अवसाद ।

-अज्ञेय, पूर्वा, पृ 203

24) औ' जीवन-मन के सुंदर-सुंदर समाधान

संतोष और संतुलन

रुचिर औचित्य, उचित अभिरुचि के रंग

कि रंग-बिरंगे काँच-कंगनों-से

सब छिन्न-भिन्न होंगे ।

-मुक्तिबोध, भूरी भूरी खाक धूल, पृ 63

25) दु:संस्कृति के तारण

जिन मंगों के गुरु उच्चारण,

हारण कर्म-विषम-तम के जो –

लुप्त अंधकार में सब; 'गुण

भारत के अब गुप्त;'

काल यह हिन्दु को यम ।

- शमशेर, चुका भी नहीं मैं, पृ 86

सहायक सामग्री सूची

क) आधार ग्रंथ

1. अतिमा – सुमित्रानंदन पंत
राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली
तृतीय संस्करण – विं.सं.2020

2. अरी ओ करुणा प्रभामय – अज्ञेय
भारतीय ज्ञानपीठ, काशी
प्रथम संस्करण – 1959

3. अज्ञेय संचयिता – नन्दकिशोर आचार्य
राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली
प्रथम संस्करण – 2001

4. आकुल अंतर – हरिवंशराय बच्चन
राजपाल एण्ड सन्ज़, दिल्ली

5. आरती और अंगारे – हरिवंशराय बच्चन
राजपाल एण्ड सन्ज़, दिल्ली
तीसरा संस्करण – 1963

6. आँगन के पार द्वार – अज्ञेय
भारतीय ज्ञानपीठ, वाराणसी
प्रथम संस्करण – 1961

7. आँसू – जयशंकर प्रसाद
भारती भंडार, प्रयाग
द्वादश संस्करण – वि.सं.2018

8. उत्तरा – सुमित्रानंदन पंत
भारती भंडार, प्रयाग
द्वितीय संस्करण – वि.सं.2012

9. उदिता – शमशेर बहादुर सिंह
वाणी प्रकाशन, दिल्ली
प्रथम संस्करण – 1980

10. उर्वशी – रामधारी सिंह दिनकर
चक्रवाल प्रकाशन, पटना
द्वितीय संस्करण – 1964

11. इन्द्रधनु रौंदे हुए थे – अज्ञेय
सरस्वती प्रेस, इलाहाबाद
प्रथम संस्करण – 1957

12. कटती प्रतिभाओं की आवाज़ – हरिवंशराय बच्चन
राजपाल एण्ड सन्ज़, दिल्ली
प्रथम संस्करण – 1968

13. कबीर ग्रंथावली – माताप्रसाद गुप्त
प्रामाणिक प्रकाशन, आगरा
प्रथम संस्करण – 1969

14. कामायनी – जयशंकर प्रसाद
भारती भण्डार, प्रयाग
एकादश संस्करण – वि.सं. 2018

15. किरण-वीणा – सुमित्रानंदन पंत
राजकमल प्रकाशन, दिल्ली
प्रथम संस्करण – 1967

16. कुछ कविताएँ व कुछ और कविताएँ – शमशेर
राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली
दूसरा संस्करण – 1984

17. केशव और उनकी रामचंद्रिका – प्रो.देशराजसिंह भाटी
अशोक प्रकाशन, दिल्ली
प्रथम संस्करण – 1964

18. केशव ग्रंथावली – विश्वनाथप्रसाद मिश्र
हिन्दुस्तानी एकेडेमी, इलाहाबाद
प्रथम संस्करण – 1955

19. गोस्वामी तुलसीदास – आ.रामचन्द्र शुक्ल
नागरी प्रचारिणी सभा, काशी
अष्टम संस्करण – वि.सं.2019

20. घनानंद कबित्त – साहित्याचार्य चन्द्रशेखर मिश्र शास्त्री
वाणी वितान
द्वितीय संस्करण – वि.सं. 2022

21. चुका भी नहीं मैं – शमशेर
राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली
प्रथम संस्करण – 1975

22.जायसी ग्रंथावली – राजनाथ शर्मा
विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा
पंचम संस्करण – 1975

23.जाल समेटा – हरिवंशराय बच्चन
राजपाल एण्ड सन्ज़, दिल्ली
प्रथम संस्करण – 1973

24.टूटी हुई बिखरी हुई – (सं) अशोक वाजपेयी
राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली
प्रथम संस्करण – 1990

25.तुलसी ग्रंथावली
(चतुर्थ खण्ड) – (सं) रामचन्द्र शुक्ल, भगवानदीन और ब्रजरत्नदास
नागरीप्रचारिणी सभा, वाराणसी
प्रथम संस्करण – वि.सं.2034

26. त्रिभंगिमा – हरिवंशराय बच्चन
राजपाल एण्ड सन्ज़, दिल्ली
प्रथम संस्करण – 1961

27. निशा-निमंत्रण – हरिवंशराय बच्चन
राजपाल एण्ज सन्ज़, दिल्ली
आठवाँ संस्करण – 1960

28. पद्मावत – (सं) वासुदेवशरण अग्रवाल
साहित्य सदन, चिरगाँव
द्वितीय संस्करण – वि.सं.2018

29. पहले मैं सन्नाटा बुनता हूँ – अज्ञेय
राजपाल एण्ड सन्ज़, दिल्ली
दूसरा संस्करण – 1976

30. पूर्वा – अज्ञेय
राजपाल एण्ड सन्ज़, दिल्ली
प्रथम संस्करण – 1965

31. प्रियप्रवास – अयोध्यासिंह उपाध्याय हरिऔध
हिन्दी साहित्य कुटीर, वाराणसी
त्रयोदश संस्करण- विं.सं.2023

32.बहुत दिन बीते – हरिवंशराय बच्चन
राजपाल एण्ड सन्ज़, दिल्ली
प्रथम संस्करण – 1967

33.बिहारी भाष्य – डॉ.देशराजसिंह भाटी
अशोक प्रकाशन, दिल्ली
प्रथम संस्करण – 1969

34. बिहारी सत्सई – प्रो.विराज.एम.ए.
अशोक प्रकाशन, दिल्ली
प्रथम संस्करण – 1962

35. भारत-भारती – मैथिलीशरण गुप्त
साहित्य सदन, चिरगाँव
उन्नीसवाँ संस्करण – वि.सं.2020

36. भूरी भूरी खाक धूल – गजानन माधव मुक्तिबोध
राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली
द्वितीय संस्करण – वि,सं 2020

37.भूषण ग्रंथावली – विश्वनाथप्रसाद मिश्र
वाणी वितान
तृतीय संस्करण – वि.सं.2026

38. मधुशाला – हरिवंशराय बच्चन
राजपाल एण्ड सन्ज़, दिल्ली
पन्द्रहवाँ संस्करण – 1961

39. मतिराम ग्रंथावली – (सं) कृष्णबिहारी मिश्र और ब्रजकिशोर मिश्र
नागरीप्रचारिणी सभा, वाराणसी
प्रथम संस्करण – वि.सं.2021

40. मिलन यामिनी – हरिवंशराय बच्चन
राजपाल एण्ड सन्ज़, दिल्ली
दूसरा संस्करण – 1961

41. मीरा पदावली – श्रीमती.विष्णुकुमारी श्रीवास्तव मंजू
हिन्दी भवन, लाहौर
तीसरा संस्करण – 1944

42. मीराँ-बृहद-पद-संग्रह – पद्मावती शब्नम
लोक सेवक प्रकाशन, बनारस
प्रथम संस्करण – 2009

43. मुक्तिबोध की कविताएँ – त्रिलोचन शास्त्री
साहित्य अकादमी, दिल्ली
प्रथम संस्करण – 1991

44. मुक्तिबोध रचनावली भाग1-2 – नेमीचन्द्र जैन
राजकमल प्रकाशन, दिल्ली
प्रथम संस्करण – 1980

45. रामचरितमानस – (सं) श्यामसुंदरदास
नागरीप्रचारिणी सभा, काशी

46.लहर – जयशंकर प्रसाद
भारती भंडार, प्रयाग
षष्ठम संस्करण – वि.सं.2018

47.वीणा-ग्रंथि – सुमित्रानंदन पंत
भारती भंडार, इलाहाबाद
द्वितीय संस्करण – वि.सं 2020

48. लहर – जयशंकर प्रसाद
भारती भंडार, प्रयाग
षष्ठम संस्करण – वि.सं.2018

49. साकेत – मैथिलीशरण गुप्त
साहित्य सदन, चिरगाँव

50. संक्षिप्त पृथ्वीराज रासो – डॉ.हज़ारीप्रसाद द्विवेदी और नामवर सिंह
साहित्य सदन, इलाहाबाद
चतुर्थ संस्करण – 1963

51. संधिनी – महादेवी वर्मा
लोकभारती, इलाहाबाद
प्रथम संस्करण – 1965

52. सतरंगे पंखोंवाली – नागार्जुन
वाणी प्रकाशन, दिल्ली
प्रथम संस्करण – 1984

51. सूरसागर दूसरा खण्ड – (सं) श्री नंददुलारे वाजपेयी
नागरीप्रचारिणी सभा, काशी
तृतीय संस्करण – वि.सं.2018

53. सूरसागर सटीक भाग – (सं) डॉ.हरदेव बाहरी और डॉ राजेन्द्र कुमार
लोकभारती, इलाहाबाद
प्रथम संस्करण – 1974

54. सौवर्ण – सुमित्रानंदन पंत
भारतीय ज्ञानपीठ, काशी
द्वितीय संस्करण – वि.सं 1963

55. स्वर्ण किरण – सुमिज्ञानंदन पंत
भारती भंडार, इलाहाबाद
तृतीय संस्करण – वि.सं 2020

ख) आलोचनात्मक ग्रंथ

1. अतीत के हंस मैथिलीशरण गुप्त - डॉ.प्रभाकर श्रोत्रिय
नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली
प्रथम संस्करण – 1988

2. अभिनव भाषाविज्ञान सिद्धांत और प्रयोग – डॉ.उदयनारायण तिवारी
किताब महल, इलाहाबाद
प्रथम संस्करण – 1982-83

1. अज्ञेय का अन्त: प्रक्रिया साहित्य – डॉ.मधुरेश नंदन कुलश्रेष्ठ
चित्रलेखा प्रकाशन, इलाहाबाद
प्रथम संस्करण – 1971

2. अज्ञेय की काव्य संवेदना – कमल कुमार
प्रेम प्रकाशन मंदिर, दिल्ली
प्रथम संस्करण – 1991

3. अज्ञेय और आधुनिक रचना की समस्या – प्रो.रामस्वरूप चतुर्वेदी
भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, दिल्ली
तीसरा संस्करण – 1990

4. अज्ञेय और उनका सहित्य – डॉ.पूरमचन्द तिवारी
राजश्री प्रकाशन, मथुरा
प्रथम संस्करण – 1987

5. अज्ञेय और सर्जना के क्षण – डॉ.वेदप्रकाश जुनेजा
ज्योति बुक डिपो, करनाल
प्रथम संस्करण – 1987

6. अज्ञेय से अरुण कमल भाग 1 – डॉ.संतोषकुमार तिवारी
भारतीय ग्रंथ निकेतन, नई दिल्ली
प्रथम संस्करण – 2005

7. आचार्य केशवदास – डॉ.हीरालाल दीक्षित
विश्वविद्यालय प्रकाशन, लखनऊ
संस्करण – वि.सं.2011

8. आठवें दशक की हिन्दी कविता – विश्वनाथ प्रसाद तिवारी
कीर्ति प्रकाशन, गोरखपुर
प्रथम संस्करण – 1982

9. आदिकाल की प्रामाणिक रचनाएँ – डॉ.गणपतिचन्द्र गुप्त
नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली
प्रथम संस्करण – 1976

10. आदिकाल की भूमिका – पुरुषोत्तमप्रसाद आसोपा
सूर्या प्रकाशन मंदिर, बीकानेर
प्रथम संस्करण – 1973

11. आदिकालीन हिन्दी साहित्य – डॉ. शंभूनाथ पाण्डेय
विश्वविद्यालय, वाराणसी
प्रथम संस्करण – 1970

12. आधुनिक हिन्दी कविता और विचार – डॉ.राजेन्द्रमोहन भटनागर
भारतीय ग्रंथ निकेतन, नई दिल्ली
प्रथम संस्करण – 1987

13. आधुनिक कविता की प्रवृत्तियाँ – डॉ. ओमप्रकाश गौतम
सरस्वती प्रकाशन, आगरा
प्रथम संस्करण – 1972

14. आधुनिक हिन्दी कविता में बिम्ब विधान – डॉ.केदारनाथ सिंह
भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, दिल्ली
प्रथम संस्करण – 1971

15. आधुनिक हिन्दी कविता पर
अंग्रेज़ी कविता का प्रभाव – डॉ.सुरेशचंद्र पाण्डेय
अनुभव प्रकाशन, कानपुर
प्रथम संस्करण – 1983

16. आधुनिक हिन्दी कविता में
उर्दू के तत्व – डॉ.नरेश
राजपाल एण्ड सन्ज़, दिल्ली
प्रथम संस्करण – 1973

17. आधुनिक हिन्दी कविता में चित्रविधान – डॉ रामयतनसिंह अमर
नेशनल पब्लिशिंग हाऊस, दिल्ली
प्रथम संस्करण – 1965

18. आधुनिक हिन्दी कविता में ध्वनि – कृष्णलाल शर्मा
ग्रन्थम, कानपुर
प्रथम संस्करण – 1964

19. आधुनिक हिन्दी कवियों की काव्यकला – डॉ.प्रेमनारायण टंडन
हिन्दी साहित्य भंडार, लखनऊ
प्रथम संस्करण – 1961

20. आधुनिक हिन्दी काव्य – डॉ.राजेन्द्र मिश्र
ग्रन्थम, कानपुर
संस्करण – 1966

21. आधुनिक हिन्दी काव्य:उद्भव और विकास – डॉ.स्नेहलता पाठक
विद्या विहार, कानपुर
प्रथम संस्करण – 1992

22. आधुनिक हिन्दी काव्यभाषा – डॉ.रामकुमार सिंह
ग्रन्थम, कानपुर
प्रथम संस्करण – 1965

23. आधुनिक हिन्दी काव्य में प्रवृत्तिमूलक दार्शनिकता – सुशीला गुप्ता
लोकभारती, इलाहाबाद
प्रथम संस्करण – 1981

24. उर्वशी: एक अध्ययन – टी.मधुसूदन
सत्ता साहित्य भंडार, दिल्ली
प्रथम संस्करण – 1969

25. कबीर – विजयेन्द्र स्नातक
राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली
संस्करण – 1970

26. कबीर – डॉ.हज़ारीप्रसाद द्विवेदी
हिन्दी ग्रंथ रत्नाकर, बंबई
छठा संस्करण – 1960

27. कबीर-अनुशीलन – डॉ.प्रेमशंकर त्रिपाठी
श्री बड़ाबाज़ार कुमारसभा पुस्तकालय,
कल्कत्ता,संस्करण – 2003

28. कबीर एक अनुशीलन – डॉ.रामकुमार वर्मा
साहित्य भवन, इलाहाबाद
प्रथम संस्करण – 1983

29. कबीर एक नई दृष्टि – रघुवंश
लोकभारती, इलाहाबाद
प्रथम संस्करण – 1991

30. कबीर और जायसी का रहस्यवाद
तथा तुलनात्मक अध्ययन – डॉ.गोविन्द त्रिगुणायत
साहित्य सदन, देहरादून
द्वितीय संस्करण – 1960

31. कबीर: कल्पना शक्ति और काव्य सौंदर्य - ब्रह्मदत्त शर्मा
भारतेंदु भवन, शिमला
प्रथम संस्करण – 1969

32. कबीर-काव्य का भाषाशास्त्रीय अध्ययन – डॉ.भगवतप्रसाद दुबे
नेशनल पब्लिशिंग हाऊस, नई दिल्ली
प्रथम संस्करण – 1969

33. कबीर की भाषा – महेन्द्र
शब्दकार, दिल्ली
प्रथम संस्करण – 1969

34. कबीर के काव्य रूप – डॉ.नज़ीर मुहम्मद
भारत प्रकाशन मंदिर, अलीगढ़
प्रथम संस्करण – 1971

35. कबीर: नई सदी में – डॉ.धर्मवीर
वाणी प्रकाशन, दिल्ली
प्रथम संस्करण – 2000

36. कबीर पंथ: साहित्य, दर्शन एवं साधना – डॉ.उमा ठाकुराल
हिन्दी बुक सेन्टर, नई दिल्ली
प्रथम संस्करण – 1998

37. कबीर साहब – युगेश्वर
लोकभारती, इलाहाबाद
प्रथम संस्करण – 1999

38. कबीर साहित्य का अध्ययन – पुरुषोत्तमलाल श्रीवास्तव
साहित्य रत्नमाला कार्यालय, बनारस
प्रथम संस्करण – 2008

39. कवि अज्ञेय: विश्लेषण और मूल्यांकन – डॉ.ब्रजमोहन शर्मा
इतिहास शोध संस्थान, नई दिल्ली
प्रथम संस्करण – 1997

40. कविकर्म और काव्यभाषा – परमानंद श्रीवास्तव
विश्वविद्यालय, वाराणसी
प्रथम संस्करण – 1975

41. कविता की तीसरी आँखें – प्रभाकर श्रोत्रिय
नेशनल पब्लिशिंग हाऊस, दिल्ली
प्रथम संस्करण – 1980

42. कविता के नए प्रतिमान – नामवर सिंह
राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली
छठीं संस्करण – 2003

43. कवि निराला और उनका काव्य-साहित्य – गिरीशचंद्र तिवारी
साहित्य भवन, इलाहाबाद
प्रथम संस्करण – वि.सं 2013

44. कविवरबिहारी – श्री जगन्नाथदास रत्नाकर
ग्रन्थकार, बनारस
प्रथम संस्करण – 1966

45. कवि विद्यापति – गंगाधर मिश्र
सरस्वती मंदिर, वाराणसी
संस्करण – वि.सं.2018

46. कवियों का कवि शमशेर – डॉ.रंजना अरगडे
वाणी प्रकाशन, दिल्ली
प्रथम संस्करण 1988

51.कामायनी में काव्य,संस्कृति और दर्शन – डॉ.द्वारिकाप्रसाद सक्सेना
विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा
द्वितीय संस्करण – 1963

52. कामायनी:संस्कृति-सौंदर्य-श्रेयस का संगीत – डॉ.हरिहरप्रसाद गुप्त
साहित्य भवन, इलाहाबाद
प्रथम संस्करण – 1984

53. काव्य के तत्व – आ.देवेन्द्रनाथ शर्मा
लोकभारती, इलाहाबाद
द्वितीय संस्करण – 1990

54. काव्य दर्पण – पं.रामदहिन मिश्र
ग्रन्थमाला, पाटना
चतुर्थ संस्करण – 1960

55. काव्य बिम्ब और छायावाद – सुरेन्द्र माथुर
ज्ञान भारती प्रकाशन, दिल्ली
प्रथम संस्करण – 1969

56. काव्यभाषा पर तीन निबंध – रामस्वरूप चतुर्वेदी
लोकभारती, इलाहाबाद
प्रथम संस्करण – 1989

57. काव्यशास्त्र – डॉ.देवकीनंदन श्रीवास्तव
नंदन प्रकाशन, लखनऊ
प्रथम संस्करण – 1972

58. काव्यशास्त्र – डॉ.भगीरथ मिश्र
विश्वविद्यालय प्रकाशन, गोरखपुर
द्वितीय संस्करण – 1963

59. कावयालोचन में सौंदर्यदृष्टि – डॉ.हरद्वरिलाल शर्मा
साहित्य सहकार, दिल्ली
प्रथम संस्करण – 1993

60. केशवदास – रामरतन भटनागर
किताब महल, इलाहाबाद
द्वितीय संस्करण – 1950

61. केशव और उनका साहित्य – डॉ.विजयपाल सिंह
राजपाल एण्ड सन्ज़, दिल्ली
तीसरा संस्करण – 1975

62. केशव की काव्यधारा – डॉ.शिवनारायण शुक्ल
नवयुग ग्रन्थकार, लखनऊ
प्रथम संस्करण – 1971

63. केशव का भाषा – सत्यनारायण त्रिपाठी
राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली
संस्करण – 1975

64. क्रंतिकारी कवि निराला – बच्चन सिंह
विश्वविद्यालय, लखनऊ
पाँचवाँ संस्करण – 2003

65. गजाननमाधव मुक्तिबोध और उनका काव्य – डॉ.संजीव सिंह
जयभारती प्रकाशन, इलाहाबाद
प्रथम संस्करण – 1991

66. गजाननमाधव मुक्तिबोध का रचना संसार – डॉ.गंगाप्रसाद विमल
सुषमा पुस्तकालय, दिल्ली
प्रथम संस्करण – 1969

67. गुप्तजी की काव्यधारा – श्री.गिरिजादत्त शुक्ल गिरीश
छात्रहितकारी पुस्तकमाला, दिल्ली
पाँचवाँ संस्करण 1958

68. घनानंद – डॉ.कृष्णचन्द्र वर्मा
रवीन्द्र प्रकाशन, आगरा
प्रथम संस्करण – 1966

69. घनानंद और स्वच्छंद काव्यधारा – डॉ.मनोहरलाल गौड़
नागरीप्रचारिणी सभा, काशी
प्रथम संस्करण – वि.सं.2015

70. घनानंद की काव्यसाधना – डॉ.सभापति मिश्र
चित्रलेखा प्रकाशन, इलाहाबाद
प्रथम संस्करण – 1989

71. चतुष्टेतर छायावादी कवि और उनका काव्य – श्रीमति.कृष्णा शर्मा
अन्नपूर्णा प्रकाशन, कानपुर
प्रथम संस्करण – 1989

72. चिन्तन – डॉ.प्रेमप्रकाश गौतम
साहित्य प्रकाशन, दिल्ली
प्रथम संस्करण – 1973

73. छायावादोत्तर काव्य प्रवृत्तियाँ – डॉ.टी.एन.मुरली कृष्णम्मा
वाणी प्रकाशन, दिल्ली
प्रथम संस्करण – 1986

74. छायावादोत्तर हिन्दी कविता – रमाकान्त शर्मा
साहित्य सदन, देहरादून
प्रथम संस्करण – 1970

75. जनकवि दिनकर – डॉ.सत्यकाम वर्मा
भारती प्रकाशन, नई दिल्ली

76. जायसी का काव्य शिल्प – डॉ.दर्शनलाल सेठी
साहित्य सदन, देहरादून
प्रथम संस्करण – 1970

77. जायसी की बिम्ब योजना – डॉ.सुधा सक्सेना
अशोक प्रकाशन, दिल्ली
प्रथम संस्करण – 1966

78. जायसी के पद्मावत का मनोवैज्ञानिक अध्ययन – सुभाषा बाला महैन
भारतेंदु भवन, शिमला
प्रथम संस्करण – 1969

79. जायसी साहित्य और सिद्धांत – यज्ञदत्त शर्मा
अक्षरम प्रकाशन, हरियाणा
प्रथम संस्करण – 1984

80. तारसप्तक के कवि: काव्य शिल्प के मान – कृष्ण लाल
साहित्य प्रकाशन, दिल्ली
प्रथम संस्करण – 1979

81. तुलसीदास उनका युग – डॉ.राजपति दीक्षित
ज्ञानमंडल लिमिटेड, बनारस
द्वितीय संस्करण – वि.सं.2018

82. तुलसीदास और उनका साहित्य – डॉ.विमलकुमार जैन
साहित्य सदन, देहरादून

83. तुलसीदास का काव्यादर्श – डॉ.सुरेशचंद्र गुप्त
हिन्दी साहित्य संसार, दिल्ली
प्रथम संस्करण – 1972

84. तुलसी काव्य की लोक तात्विक संरचना – डॉ.गया सिंह
संजय प्रकाशन, वाराणसी
प्रथम संस्करण – 1973

85. तुलसीदास की कलागत चेतना – डॉ.धीरेंद्र बहादुर सिंह
प्रतिभा प्रकाशन, इलाहाबाद
प्रथम संस्करण – 1973

86. तुलसी की साहित्य साधना – डॉ.लल्लन राय
वाणी प्रकाशन, दिल्ली
प्रथम संस्करण – 1988

87. तुलसी के अध्ययन की नई दिशाएँ – रामप्रसाद मिश्र
भारतीय ग्रंथ निकेतन, नई दिल्ली
प्रथम संस्करण – 1987

88. तुलसी के रचना सामर्थ्य का विवेचन – योगेंद्रप्रताप सिंह
लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद
प्रथम संस्करण – 1994

90.तुलसी दर्शन – डॉ.बलदेवप्रसाद मिश्र
हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग
सातवाँ संस्करण – 1967

91. तुलसी के भक्त्यात्मक गीत – डॉ.वचनदेव कुमार
हिन्दी साहित्य संसार, दिल्ली
प्रथम संस्करण – 1964

92. तुलसी साहित्य के सर्वोत्तम अंश – डॉ.रामप्रसाद मिश्र
जीवन ज्योति संसार, दिल्ली
प्रथम संस्करण – 1964

93. तुलसी साहित्य में बिम्ब योजना – डॉ.सुशीला शर्मा
कोणार्क प्रकाशन, दिल्ली
प्रथम संस्करण – 1972

94. तुलसी साहित्य विवेचन और मूल्यांकन – आ.देवेंन्द्रनाथ शर्मा
नेशनल पब्लिशिंग हाऊस, लखनऊ
प्रथम संस्करण – 1981

95. त्रिलोचन के काव्य – राजू.एम.फिलिप
यात्री प्रकाशन, दिल्ली
प्रथम संस्करण – 1985

96. दिनकर – सावित्री सिन्हा
राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली

97. दिनकर: एक पुनर्मूल्यांकन – प्रो.विजेन्द्र नारायणसिंह
परिमल प्रकाशन, इलाहाबाद
प्रथम संस्करण – 1965

98. दिनकर और उनकी उर्वशी – प्रो.देशराजसिंह भाटी
अशोक प्रकाशन, नई दिल्ली

99.दिनकर का वीर काव्य – धर्मपाल सिंह आर्य
अभिनव प्रकाशन, दिल्ली
प्रथम संस्करण – 1975

100.दिनकर की काव्यभाषा – यतीन्द्र तिवारी
पुस्तक संस्थान, कानपूर
प्रथम संस्करण – 1976

101.दिनकर की काव्यभाषा: शैलीवैज्ञानिक अध्ययन – डॉ.सरला परमार
संस्कृति, अहम्मदाबाद
द्वितीय संस्करण – 1991

102.दिनकर की साहित्य दृष्टि – डॉ.सुशीला मिश्रा
अनुपम प्रकाशन, पाटना
प्रथम संस्करण – 1983

103.दिनकर के काव्य – लालधर श्रिपाठी प्रवासी
आनंद पुस्तक भवन, वाराणसी
संस्करण – 1964

104.दिनकर के काव्य में जीवनदर्शन – डॉ.विनोदबाला शर्मा
सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली
प्रथम संस्करण – 1986

105.द्विवेदी युग का हिन्दी काव्य – डॉ.रामसकल राय शर्मा
अनुसंधान, कानपुर
संस्करण – 1964

106.दिनकर: व्यक्तित्व एवं कृतित्व – एस.के.पद्मावती
जवाहर पुस्तकालय, मथुरा
प्रथम संस्करण – 1967

107.नई कविता की भाषा–काव्यशास्त्रीय संदर्भ में – डॉ.हरिप्रसाद पाण्डेय
बोहरा प्रकाशन, जयपुर
प्रथम संस्करण – 1989

108.नया काव्य नये मूल्य – ललित शुक्ल
दि मैकमिलन कंपनी, दिल्ली
प्रथम संस्करण – 1975

109. नया हिन्दी काव्य – डॉ.शिवकुमार मिश्र
अनुसंधान प्रकाशन, कानपुर
प्रथम संस्करण – 1962

110. नयी कविता का इतिहास – डॉ.बैजनाथ सिंहल
संजय प्रकाशन, दिल्ली
प्रथम संस्करण – 1977

111. नयी कविता की भाषिक संरचना – सरिता वैद्य
हिमाचल पुस्तक भंडार, दिल्ली
प्रथम संस्करण – 1993

112. नयी कविता का मूल्यांकन: परंपरा और प्रगति की भूमिका पर – डॉ.हरिचरण शर्मा
आशा प्रकाशन गृह, नई दिल्ली
द्वितीय संस्करण – 1986

113. नये कवियों का काव्यशिल्प-सिद्धांत – दिविक रमेश
पराग प्रकाशन, दिल्ली

114. नये प्रतिनिधि कवि – डॉ.हरिचरण शर्मा
पंचशील प्रकाशन, जयपुर
प्रथम संस्करण – 1979

115. नागार्जुन: जीवन और साहित्य – प्रकाशचन्द्र भट्ट
सेवासदन प्रकाशन, दिल्ली
प्रथम संस्करण – 1990

116. नागार्जुन की कविता – अजय तिवारी
वाणी प्रकाशन, दिल्ली
प्रथम संस्करण – 1990

117. नाथ पंथ और निर्गुण संत काव्य – डॉ.कोमलसिंह सोलंकी
विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा
प्रथम संस्करण – 1966

118. निराला कवि-छवि – नंद किशोर नवल
प्रकाशन संस्थान, दिल्ली
संस्करण – 2005

119. निराला का गीत-काव्य – डॉ.संध्या सिंह
लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद
प्रथम संस्करण – 1994

120. निराला काव्य के विविध आयाम – डॉ.इन्द्रराज सिंह
तक्षशिला प्रकाशन, दिल्ली
प्रथम संस्करण – 1997

121. पंत का काव्य – डॉ.प्रेमलता बाफना
साहित्य सदन, देहरादून
प्रथम संस्करण – 1969

122. पंत काव्य में बिम्ब योजना – डॉ. एन.पी.कुट्टन पिल्लै
दक्षिण प्रकाशन, हैदराबाद
प्रथम संस्करण – 1974

123. पृथ्वीराज रासो – विपिन बिहारी त्रिवेदी
पारुल प्रकाशन, लखनऊ
प्रथम संस्करण – 1964

124. पृथ्वीराज रासो का लोक तात्विक अध्ययन – डॉ.विजय कुलश्रेष्ठ
मंगल प्रकाशन, जयपुर
प्रथम संस्करण – 1984

125. पृथ्वीराज रासो की भाषा – नामवर सिंह
सरस्वती प्रेस, बनारस
प्रथम संस्करण – 1956

126. प्राचीन कवि केशवदास – विश्वनाथ अय्यर
लोकभारती, इलाहाबाद
प्रथम संस्करण – 1967

127. प्रगतिवाद – शिवकुमार मिश्र
राजकमल प्रकाशन, दिल्ली
संस्करण – 1964

128. प्रगतिवादी काव्य साहित्य – डॉ.कृष्णलाल हंस
मध्यप्रदेश हिन्द ग्रंथ अकादमी, म.प्र.
प्रथम संस्करण – 1971

129. प्रगतिशील कविता में सौंदर्य चिंतन – डॉ.तनूजा तिवारी
भारतीय भाषापीठ, नई दिल्ली
प्रथम संस्करण – 1987

130. प्रसाद भारतीयता के प्रतिमान – सत्यपाल चुध
विद्या विहार, दिल्ली
प्रथम संस्करण – 1990

131. बच्चन जीवन और साहित्य – डॉ.श्रीमति.सुधाबहन कनुभाई पटेल
जवाहर पुस्तकालय, मथुरा
प्रथम संस्करण – 1980

132. बच्चन: व्यक्तित्व और कवित्व – जीवनप्रकाश जोशी
सन्मार्ग प्रकाशन, दिल्ली
प्रथम संस्करण – 1968

133. बिहारी – डॉ.ओमप्रकाश
राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली
प्रथम संस्करण – 1967

134.बिहारी – विश्वनाथप्रसाद मिश्र
वाणी वितान, वाराणसी
चतुर्थ संस्करण – वि.सं.2018

135.बिहारी और उनका साहित्य – डॉ.हरवंशलाल शर्मा तथा
डॉ.परमानंद शास्त्री
भारत प्रकाशन मंदिर, अलीगढ़

136.बिहारी काव्य की उपलब्धियाँ – डॉ.किशोरीलाल
साहित्य भवन, इलाहाबाद
प्रथम संस्करण – 1975

137.बिहारी की काव्यकला – भानु सिंह
रीगल बुक डिपो, दिल्ली
प्रथम संस्करण – 1966

138.बिहारी सत्सई – देवेन्द्र शर्मा
विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा
आठवाँ संस्करण – 1975

139.बिहारी की वाग्विभूति – विश्वनाथप्रसाद मिश्र
वाणी वितान, वाराणसी
द्वितीय संस्करण – वि.सं.2019

140.भारतीय काव्यांग – डॉ.सत्यदेव चौधरी
साहित्य भवन, इलाहाबाद
प्रथम संस्करण – 1959

141.भारतीय काव्यशास्त्र – डॉ.रामचन्द्र वर्मा शास्त्री
अनीता प्रकाशन, दिल्ली
प्रथम संस्करण – 1974

142.भारतीय काव्यशास्त्र की परंपरा – डॉ.नगेन्द्र
नेशनल पब्लिशिंग हाऊस, दिल्ली
द्वितीय संस्करण – 1964

143.भाषा दर्शन – रामलाल सिंह
विद्याबंध, वाराणसी
संस्करण – 1982

144.भाषा, युगबोध और कविता – डॉ.रामविलास शर्मा
वाणी प्रकाशन, दिल्ली
प्रथम संस्करण – 1981

145.भाषा विवेचन – डॉ.भगीरथ मिश्र
साहित्य भवन, इलाहाबाद
प्रथम संस्करण – 1990

146.भाषाशास्त्र तथा हिन्दी भाषा की रूपरेखा – डॉ.देवेन्द्रकुमार शास्त्री
विश्वविद्यालय, वाराणसी
संस्करण – 2003

147.भूषण और उनका साहित्य – डॉ.राजमल बोरा
साहित्य रत्नालय, कानपुर
द्वितीय संस्करण – 1987

148.भूषण साहित्य एवं ऐतिहासिक अनुशीलन – डॉ.भगवानदास तिवारी
साहित्य भवन, इलाहाबाद
प्रथम संस्करण – 1972

149.मध्यकालीन कवियों के काव्य सिद्धांत – डॉ.छविनाथ त्रिपाठी
रिसर्च पब्लिकेशन इन साइन्स, दिल्ली

150.मध्यकालीन काव्यभाषा – रामस्वरूप चतुर्वेदी
लोकभारती, इलाहाबाद
प्रथम संस्करण – 1974

151.मध्यकालीन काव्य संग्रग – केन्द्रीय हिन्दी संस्थान, आगरा
विश्वविद्यालय, वाराणसी
तृतीय संस्करण – 1973

152.मालिक मुहम्मद जायसी और उनका काव्य – डॉ.शिवसहाय पाठक
ग्रन्थम, कानपुर
प्रथम संस्करण – 1964

153.महाकवि भूषण – भगीरथ प्रसाद दीक्षित
साहित्य भवन, इलाहाबाद
द्वितीय संस्करण – 1963

154.महाकवि मतिराम – डॉ.त्रिभुवन सिंह
हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय, वाराणसी
प्रथम संस्करण – वि.सं.2017

155.महाकवि सूरदास – आ.नंददुलारे वाजपेयी
आत्माराम एण्ड सन्ज़, दिल्ली
दूसरा संस्करण – 1958

156.महाकवि हरिऔध – गिरिजादत्त शुक्ल गिरीश
साहित्य भवन, इलाहाबाद
तृतीय संस्करण – 1959

157.महाकवि हरिऔध और उनका प्रियप्रवास – देवेंद्र शर्मा
विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा
प्रथम संस्करण – 1961

158.महादेवी – इन्द्रनाथ मदान
राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली
छठीं संस्करण – 2005

159.महादेवी नया मूल्यांकन – गणपतिचंद्र गुप्त
लोकभारती, इलाहाबाद
द्वितीय संस्करण – 1997

160.मीरा का काव्य - विश्वनाथ त्रिपाठी
वाणी प्रकाशन, दिल्ली
प्रथम संस्करण – 1989

161.मीरा की काव्यकला - डॉ.कृष्णदेव शर्मा
रीगल बुक डिपो, दिल्ली
प्रथम संस्करण – 1972

162.मीरा काव्य का गीतिकाव्यात्मक विवेचन - माधुरी नाथ
सत्यम प्रकाशन, इलाहाबाद
प्रथम संस्करण – 1990

163.मीरा का व्यक्तित्व और कृतित्व - संजय मल्होत्रा
मीरा स्मृति प्रकाशन, चितौड़गढ
संस्करण – 1998

164.मुक्तिबोध का शिल्प-सौष्ठव - श्रीमति मधु श्रीवास्तव
जनार्दन प्रकाशन, कानपुर
प्रथम संस्करण – 1992

165.मुक्तिबोध की कविताई - अशोक चक्रधर
राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली
प्रथम संस्करण – 1998

166.मुक्तिबोध की काव्यकला - डॉ.अचलारानी तिवारी
विद्याविहार, कानपुर
प्रथम संस्करण – 1989

167.मुक्तिबोध की काव्यभाषा - डॉ.सनत कुमार
चिन्तन प्रकाशन, कानपुर
प्रथम संस्करण – 2000

168.मुक्तिबोध पुनर्मूल्यांकन - डॉ.संपत ठाकुर
प्रगति प्रकाशन, आगरा
प्रथम संस्करण – 1978

169.मैथिलीशरण गुप्त - डॉ.आनंदप्रकाश दीक्षित
वसुमति प्रकाशन, इलाहाबाद
प्रथम संस्करण – 1972

170.मैथिलीशरण गुप्त - डॉ.प्रभाकर माचवे
राजपाल एण्ड सन्ज़, दिल्ली
प्रथम संस्करण – 1993

171.मैथिलीशरण गुप्त और उनका साहित्य - दानबहादुर पाठक वर
विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा
पाँचवाँ संस्करण – 1958

172.मैथिलीशरण गुप्त – प्रासंगिकता के अन्त:सूत्र - कृष्णदत्त पालीवान
वाणी प्रकाशन, दिल्ली
प्रथम संस्करण – 1987

173.राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त और साकेत - प्रो.सूर्याप्रसाद दीक्षित
किताब घर, नई दिल्ली
प्रथम संस्करण – 2007

174.रीतिकाव्य की भूमिका - डॉ.नगेंद्र
नेशनल पब्लिशिंग हाऊस, नई दिल्ली
आठवाँ संस्करण – 1990

175.रीतियुगीन काव्य - डॉ.कृष्णचंद्र वर्मा
पुस्तक मंदिर, इलाहाबाद
प्रथम संस्करण – 1965

176.विद्यापति - विश्वनाथ प्रसाद मिश्र
हिन्दी पुस्तक कुटीर, वाराणसी

177.विद्यापति - आनंदप्रकाश दीक्षित
साहित्य प्रकाशन मंदिर, ग्वालियार
द्वितीय संस्करण – 1970

178.विद्यापति अनुशीलन और मूल्यांकन - डॉ.वीरेंद्र श्रीवास्तव
बिहार हिन्दी ग्रंथ अकादमी, पटना
प्रथम संस्करण – 1973

179.विद्यापति और उनका काव्य - डॉ.शुभाकर कपूर
गंगा पुस्तकमाला कार्यालय, लखनऊ
प्रथम संस्करण – 1989

180.विद्यापति:व्यक्तित्व और कवि - डॉ.रामसजन पाण्डेय
दिनमान प्रकाशन, दिल्ली
प्रथम संस्करण – 1990

181.बिहारी और उनका साहित्य - डॉ.हरवंशलाल शर्मा तथा
डॉ.परमानंद शास्त्री
भारत प्रकाशन, अलीगढ़

182.शमशेर का काव्यलोक - आशा मेहता
संजय प्रकाशन, दिल्ली

183. शमशेर की कविता - नरेंद्र वसिष्ठ
वाणी प्रकाशन, दिल्ली
प्रथम संस्करण – 1980

184.समकालीन हिन्दी कविता
और शमशेर बहादुरसिंह - डॉ.यू.श्रीकला
जवाहर पुस्तकालय, मथुरा
प्रथम संस्करण – 2008

185.सुमित्रानंदन पंत - डॉ.नगेंद्र
नेशनल पब्लिशिंग हाऊस, नई दिल्ली
प्रथम संस्करण – 1998

186.सुमित्रानंदन पंत कवि और काव्य - शारदा लाल
तक्षशिला प्रकाशन, दिल्ली
प्रथम संस्करण – 1995

187.सुमित्रानंदन पंत की भाषा - उषा दीक्षित
राजपाल एण्ड सन्ज़, दिल्ली
प्रथम संस्करण – 1983

188.सूर का रामकाव्य - श्रीपति वाजपेयी
विद्या विहार, कानपुर
प्रथम संस्करण – 1990

189.सूरदास - हरिवंशलाल शर्मा
राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली
प्रथम संस्करण – 1966

190.सूरदास - डॉ.व्रजेश्वर वर्मा
हिन्दी परिषद्, प्रयाग
तृतीय संस्करण – 1959

191.सूरसागर में प्रतीक योजना - डॉ.बी.लक्षमय्या शेट्ठी
रिसर्च पब्लिकेशॉन्स, दिल्ली

192.सूरसाहित्य - हज़ारीप्रसाद मिश्र
राजकमल प्रकाशन, दिल्ली
प्रथम संस्करण – 1973

193.हिन्दी काव्य और उसका सौंदर्य - डॉ.ओमप्रकाश
भारती साहित्य मंदिर, दिल्ली
द्वितीय संस्करण – 1964

194.हिन्दी काव्यभाषा - डॉ.कृपाशंकर पाण्डेय
शिवम्, इलाहाबाद
प्रथम संस्करण – 1991

195.हिन्दी काव्यशास्त्र का इतिहा - डॉ.भगीरथ मिश्र
विश्वविद्यालय, लखनऊ
द्वितीय संस्करण – वि.सं.2015

196.हिन्दी की छायावादी कविता का कला विधान - बलवीरसिंह रत्न
नेशनल पब्लिशिंग हाऊस, दिल्ली
प्रथम संस्करण – 1964

197.हिन्दी की प्रगतिशील कविता स्वरूप और प्रतिमान - डॉ.मृत्युंजय उपाध्याय
अमर प्रकाशन, उ.प्र
प्रथम संस्करण – 2000

198.हिन्दी के आदिकालीन रास और रासक काव्य-रूप - डॉ.त्रिलोकीनाथ प्रेमी
शिखर प्रकाशन, आगरा
प्रथम संस्करण – 1993

199.हिन्दी के आधुनिक कवि - प्रो.रामप्यारे तिवारी
यूनियन प्रेस, पटना
प्रथम संस्करण – 1965

200.हिन्दी के प्रगतिशील और समकालीन कवि - डॉ.रणजीत
साहित्य रत्नालय, कानपुर
प्रथम संस्करण – 2001

201.हिन्दी भाषा - डॉ.कैलाषचन्द्र भाटिया
साहित्य भवन, इलाहाबाद
प्रथम संस्करण – 1995

202.हिन्दी भाषा और साहित्य - उदयनारायण तिवारी
राजकमल, दिल्ली
पंचम संस्करण – 1961

203.हिन्दीभाषा और साहित्य का विकास - पं.अयोध्यासिंह उपाध्याय हरिऔध
किताब महल, इलाहाबाद
संस्करण – 1958

204.हिन्दीभाषा व साहित्य:स्वरूप एवं सिद्धांत - डॉ.बलभीमराज गोरे
विकास प्रकाशन, कानपुर
प्रथम संस्करण – 1990

205.हिन्दीभाषा:विकास और विश्लेषण - डॉ.चन्द्रभान रावत
सरस्वती प्रकाशन, आगरा
संस्करण – 1969

206.हिन्दीभाषा विकासात्मक परिदृश्य - डॉ.कैलाशनाथ पाण्डेय
श्यामा प्रकाशन संस्थान, इलाहाबाद
प्रथम संस्करण – 1995

207.हिन्दी वीरकाव्य - राजमल बोरा
नमिता प्रकाशन, औरंगाबाद
प्रथम संस्करण – 1979

208. हिन्दी साहित्य और इतिहास - सुधाकर पाण्डेय
नंदकिशोर एण्ड सन्ज़, वाराणसी
प्रथम संस्करण – 1954

209.हिन्दी साहित्य और उसकी प्रगति - विजयेन्द्र स्नातक और क्षेमेंद्र सुमन
आत्माराम एण्ड सन्ज़, दिल्ली

210.हिन्दी साहित्य और संवेदना का इतिहास - रामस्वरूप चतुर्वेदी
लोकभारती, इलाहाबाद
प्रथम संस्करण – 1986

211.हिन्दी साहित्य का अतीत भाग 1&2 - विश्वनाथ प्रसाद मिश्र
वाणी वितान, वाराणसी

212.हिन्दी साहित्य का इतिहास - रामचन्द्र शुक्ल
नागरीप्रचारिणी सभा

213.हिन्दी साहित्य का उत्तर मध्ययुग - डॉ.राजकिशोर पाण्डेय
हिन्दी साहित्य भंडार, लखनऊ
संस्करण – 1971

214.हिन्दी साहित्य का उद्भवकाल - डॉ.वसुदेव सिंह
हिन्दी प्रचारक संस्थान, वाराणसी

215.हिन्दी साहित्य का प्रवृत्तिगत
इतिहास खण्ड 1 (पद्यभाग) - डॉ.प्रतापनारायण टंडन
विवेक प्रकाशन, लखनऊ
प्रथम संस्करण – 1968

216.हिन्दी साहित्य का मध्यकाल - डॉ.नित्यानंद शर्मा
भारत प्रकाशन मंदिर, अलीगढ़

217.हिन्दी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास - डॉ.गणपतिचन्द्र गुप्त
लोकभारती, इलाहाबद
तृतीय संस्करण – 1986

218.हिन्दी साहित्य की प्रवृत्तियाँ - जयकिशनप्रसाद खण्डेलवाल
विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा
अष्टम संस्करण – 1971

219.हिन्दी साहित्य:प्रमुख वाद एवं प्रवृत्तियाँ - गणपतिचंद्र गुप्त
वाणी प्रकाशन, दिल्ली

ग) कोशग्रंथ

1. मुहावरा कोश - (सं) डॉ.बदरीनाथ कपूर
लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद
प्रथम संस्करण – 1989

2.लोकोक्ति कोश - (सं) हरिवंशराय शर्मा
राजपाल एण्ड सन्ज़, दिल्ली
प्रथम संस्करण – 1997

3.संक्षिप्त हिन्दी शब्दसागर - (सं) रामचन्द्र वर्मा
नागरी प्रचारिणी सभा, काशी
सप्तम संस्करण – 1971

4.हिन्दी साहित्य कोश भाग 1 - (प्र.सं) धीरेंद्र वर्मा
ज्ञानमंडल लिमिटेड, वाराणसी
द्वितीय संस्करण

5.हिन्दी साहित्य कोश भाग 2 - (प्र.सं) धीरेंद्र वर्मा
ज्ञानमंडल लिमिटेड, वाराणसी
प्रथम संस्करण – 1963

घ) पत्रिकाएँ

1.मधुमति : दिसंबर-2000
2.नई धारा : दिसंबर-जनवी-1982-83
3.नई धारा : दिसंबर-जनवरी-1984-85
4.नई धारा : दिसंबर-जनवरी-1985-86

सूर्या.एल.एस

लक्ष्मी निवास
ब्रह्ममंगलम.पी.ओ
कोट्टयम् – 686614
केरल

सुश्री.सूर्या.एल.एस का जन्म 25 सितम्बर 1984 ई. में कोट्टयम् जिले के ब्रह्ममंगलम गाँव में हुआ । प्रारंभिक स्कूली शिक्षा यू.पू.स्कूल और हाई स्कूल ब्रह्ममंगलम में संपन्न हुई । उसके बाद सन् 2004 ई. में महात्मा गाँधी विश्वविद्यालय के अधीनस्थ देवस्वम बोर्ड कॉलेज तलयोलप्परम्बु से प्रथम श्रेणी में बी.ए (हिन्दी) की उपाधि प्राप्त हुई । सन् 2006 ई. में कोच्चिन विज्ञान व प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय से एम.ए (हिन्दी) की उपाधी प्रथम श्रेणी में प्राप्त की । तदनन्तर इसी विश्वविद्यालय में डॉ.एन.जी.देवकीजी के निर्देशन में सन् 2006 नवम्बर में शोध कार्य के लिए पंजीकरण किया । कोच्चिन विश्वविद्यालय से सन् 2007 ई. में पोस्ट ग्राजुएट डिप्लोमा इन ट्रान्स्लेशन एण्ड फंक्शनल हिन्दी प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण हुई । शोध कार्य के अध्ययन के दौरान चार राष्ट्रीय संगोष्ठियों में शोध प्रपत्र प्रस्तुतीकरण हुआ । कोच्चिन विश्वविद्यालय के वार्षिक शोध पत्रिका 'अनुशीलन' तथा हिन्दी विद्यापीठ, तिरुवनन्तपुरम की मासिक पत्रिका 'संग्रथन' में शोध प्रपत्रों का प्रकाशन हुआ । अब "हिन्दी काव्यभाषा का स्वरूप और विकास – ऐतिहासिक सर्वेक्षण" शीर्षक यह शोध प्रबन्ध पीएच.डी उपाधि हेतु प्रस्तुत कर रही हूँ ।

भूमिका

मानव का प्रगतिपथ भाषा के विकास से आलोकित है । मनुष्य और साहित्य का अटूट संबंध है । साहित्य के द्वारा मानव अपनी भाषा, संस्कृति, विचार आदि को सुरक्षित रखते हैं । साहित्य में भाषा के अनेक रूप एवं प्रयोग सुरक्षित हैं । इसका प्राचीनतम प्रयोग एवं नमूना प्रारंभिक काव्यों में उपलब्ध है । कवि भाषा का पयोग नहीं करता बल्कि उसका आविष्कार करता है । अत: किसी भी कवि की पहचान का आधार भाषा के साथ उसका सलूक है । हर एक युग के कवियों ने भाषा के साथ किसी न किसी तरह सलूक किया है । काव्यभाषा के निर्माण में रचनाकार अपनी प्रतिभा का स्वत: स्फूर्त उपयोग करता है । कविता काव्यभाषा के द्वारा उत्पन्न होती है । अत: काव्यभाषा की परिभाषा देना कठिन है ।

हिन्दी काव्यभाषा का रूप निरंतर बदलता रहा है । समय परिवर्तन के साथ काव्यभाषा का ऊपरी ढाँचा भी परिवर्तित होता है । हिन्दी के विशाल जातीय और भाषाई क्षेत्र है । एक हज़ार वर्ष के अंतर्गत इसमें कम से कम चार-पाँच बार काव्यभाषा का रूप बदलता रहा है । जैसा कि कभी खडीबोली, कभी खडीबोली और ब्रज का मिला-जुला रूप, कभी अवधी, फिर ब्रज और अब फिर खडीबोली ।

हम कह चुके हैं कि हिन्दी काव्यभाषा का आधार रूप निरंतर बदलता रहा है । लेकिन हिन्दी के ये क्षेत्रीय रूप नहीं है अर्थात् प्रत्येक समय के प्रत्येक कवि अपने क्षेत्र की भाषा के बदले तत्कालीन व्यापक भाषा को लेकर काव्य रचना करते हैं ।

भिन्न भिन्न कवि विभिन्न भाषा प्रयोगों द्वारा अपनी तथा सामाजिक विशेषताएँ प्रस्तुत करते है जिसके द्वारा काव्य जगत में उनका स्थान निर्धारण होता है । इसीको बताने के लिए काव्यभाषा का विश्लेषण करना आवश्यक है । युगीन परिवर्तनों के अनुसार काव्यभाषा में भी परिवर्तन आते रहते हैं । परिवर्तित परिस्थितियों का प्रभाव हिन्दी काव्यभाषा में क्रमिक विकास लाया है जिसे जानना मनुष्य की बदलती सौंदर्य चेतना को सूचित करते है । काव्यभाषा की बदलती परिस्थितियों एवं काव्य में उनके प्रभाव के बारे में कई शोध कार्य संपन्न हुए तो भी कालक्रमानुसार उनपर गहन शोध कार्य अब भी अपेक्षित है । इसलिए हमने अपने शोध प्रबंध का विषय रखा है – **'हिन्दी काव्यभाषा का स्वरूप और विकास – ऐतिहासिक सर्वेक्षण ।'** विषय के समग्र प्रतिपादन को दृष्टि में रखते हुए इसे पाँच अध्यायों में विभक्त किया गया है ।

पहला अध्याय - भाषा और कविता

दूसरा अध्याय - आदिकालीन काव्यभाषा का स्वरूप

तीसरा अध्याय - पूर्वमध्याकालीन काव्यभाषा का स्वरूप

चौथा अध्याय - उत्तरमध्यकालीन काव्यभाषा का स्वरूप

पाँचवाँ अध्याय - आधुनिक युगीन काव्यभाषा का स्वरूप

पहले अध्याय का शीर्षक है – 'भाषा और कविता । ' हर एक साहित्यिक विधा का मूल उत्स कविता में निहित है । भाषा का साहित्यिक रूप है कविता । अत: भाषा और कविता का अटूट संबंध है । प्राचीन काल से लेकर आधुनिक काल तक के सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक, धार्मिक परिस्थितियों का जीता-जागता रूप कविता में परिलक्षित है । कविता ताल, लय, छंद युक्त होने के कारण गद्य से भिन्न होती है । शब्द-शक्ति, व्याकरण, छंद, अलंकार, प्रतीक, बिम्ब आदि के आधार पर काव्यभाषा और गद्यभाषा में भिन्नता आती है ।

कविता को किसी परिभाषा की सीमित दायरे में रखना असंभव है । प्राचीन काल से लेकर इसे परिभाषित करने का प्रयास विद्वानों ने किया हैं । वास्तव में किसी भी रचनाकार की मानसकृति को हम कविता कह सकते हैं । हर एक मनुष्य की तरह कविता का भी अपना रूप, स्वभाव और अंदाज़ होता है लेकिन प्रत्येक युग और परिवेश के अनुसार इसमें परिवर्तन होता रहता है । काव्य रचना के बाद कविता कवि से पृथक होकर अपने स्वतंत्र अस्तित्व को प्राप्त करता है । इस रूप में वह सार्वजनिक संपत्ति बन जाती है । कविता के आधार पर कवि का मूल्यांकन किया जाता है ।

किसी भी कृति की आलोचना हम अपने अनुभव और अध्ययन के आधार पर करते है । इसके लिए हमारे मानस में कोई न कोई मानदंड रहता है ।

कविता के मूल्यांकन के लिए भी अनेक मानदंड होते है । वास्तव में ये मानदंड काव्य सिद्धांत – रस, रीति, अलंकार, ध्वनि, वक्रोक्ति और औचित्य – शब्द-शक्ति एवं छंद है । अत: काव्यभाषा का विकास और मूल्यांकन भी इन्हीं मानदंडों के आधार पर करना आवश्यक प्रतीत होता है ।

दूसरा अध्याय है - 'आदिकालीन काव्यभाषा का स्वरूप' । सभी आधुनिक आर्य भाषाओं का जन्म तथा विकास प्राचीन आर्यभाषा से हुआ है । समय के साथ भाषा में भी परिवर्तन होने लगा । कविता का इतिहास काव्यभाषा का भी इतिहास है । शुक्लजी कृत हिन्दी साहित्य के प्रामाणिक काल विभाजन के आधार पर हम हिन्दी काव्यभाषा के इतिहास को भी चार युगों – आदिकालीन काव्यभाषा, पूर्व मध्यकालीन काव्यभाषा, उत्तर मध्यकालीन काव्यभाषा और आधुनिक युगीन काव्यभाषा – में वर्गीकृत कर सकते हैं ।

भाषा जब साधारण में प्रचलित और शब्द शक्ति संपन्न बनकर कुछ पुष्टता प्राप्त करती है तभी उसमें साहित्य का सृजन होता है । साहित्य का आदिम रूप प्राय: छोटे-छोटे गीतों अथवा साधारण पदों के रूप में पहले प्रकट होता है और यथाकाल वही विकसित होकर अपेक्षित विस्तार लाभ करता है । हिन्दी भाषा के लिए भी यही बात कही जा सकती है । कोई रचना हिन्दी के अन्तर्गत क्यों मानी जाय इसके लिए आधार था उसकी भाषा का ब्रजरंजित होना । इस दृष्टि से 'पृथ्वीराज रासो' और 'विद्यापति की पदावली' को अध्ययन के लिए स्वीकृत किया गया है । काव्यभाषा के मूल्यांकन के मानदंड के आधार

पर इन रचनाओं का विवेचन – विश्लेषण किया गया है जिसके द्वारा आदिकालीन हिन्दी काव्यभाषा की विशेषताओं का स्पष्ट रूप मिलते हैं ।

तीसरे अध्याय का शीर्षक है - 'पूर्व मध्यकालीन काव्यभाषा का स्वरूप ।' संस्कृतियों में होनेवाले संघर्ष ने भक्ति आंदोलन को जन्म दिया । साहित्य में भी इसका स्पष्ट प्रभाव दृष्टिगत है । पूर्व मध्यकालीन काव्य तो चार धाराओं – ज्ञानाश्रयी शाखा, प्रेमाश्रयी शाखा, रामभक्ति शाखा और कृष्णभक्ति शाखा – में विकसित हुई है । क्रमश: कबीर, जायसी, तुलसीदास और सूरदास इसके प्रवर्तक रहे हैं । अत: पूर्व मध्यकालीन काव्यभाषा के स्वरूप और विकास को इन्हीं कवियों की काव्यभाषा के ज़रिए परखना उचित है । इस युग में सधुक्कडी, अवधी और ब्रज के रूप में काव्यभाषा का विकास हुआ है ।

भक्तिकाल हिन्दी साहित्य का 'स्वर्ण युग' है । यह बात काव्यभाषा के विकास की दृष्टि से भी सही है । क्योंकि काव्य सिद्धांतों का सफल तथा अवसरोचित एवं सुष्ठु प्रयोग इस युग के काव्यों में देख सकते हैं । काव्यभाषा का बहुविध प्रयोग एवं विकास इसके लिए उदाहरण है । सधुक्कडी से अवधी और अवधी से ब्रज तक आते-आते काव्यभाषा अपना कलेवर बदलता ही रहा है । लेकिन इस बदलाव से भाषा निर्जीव नहीं, सजीव बन गयी है । अत: जन मानस में भक्तिकालीन काव्यों की जितनी पैठ है उतना अन्य युगीन काव्यों का नहीं । काव्यभाषा में आई गई भिन्नता के अलावा इन प्रत्येक कवियों के

काव्यों में भी अनेक विशेषताएँ परिलक्षित हैं जिसका मूल्यांकन मानदंडों के आधार पर किया गया है ।

'उत्तर मध्यकालीन काव्यभाषा का स्वरूप' चौथे अध्याय का शीर्षक है । काव्य में युगीन विशेषताओं का प्रभाव आना स्वाभाविक है । उत्तर मध्यकाल या रीतिकाल में साहित्यकारों को अपने आश्रयदातओं से प्रोत्साहन तो मिला । लेकिन स्वतंत्र रूप में यानी व्यक्तिगत अनुभूतियों पर काव्य – रचना करने में उन्हें पाबंदी थी । फलस्वरूप इस युग की भाषा में आश्रयदातओं की प्रशस्तियाँ अतिरंजित शैली में की जाती थी । इसके लिए कविगण, प्रमुख रूप से राजाश्रित कवि संस्कृत काव्यशास्त्रों में बताए गए सौंदर्य के उपकरणों को अपनाने लगे । लेकिन दन कवि इससे सर्वथा मुक्त थे यानी वे स्वतंत्र रूप से काव्य रचना करते थे । इसके आधार पर रीतिकालीन कवियों के तीन भेद – रीतिबद्ध, रीतिसिद्ध और रूतिमुक्त – किए गए हैं । अत: इस युग के प्रतिनिधि कवियों की काव्यभाषा को अध्ययन के लिए चुना है । वे क्रमश: इस प्रकार हैं – आचार्य केशवदास, मतिराम, बिहारी, भूषण और घनानंद ।

रीतिकाल में काव्यभाषा के रूप में ब्रजभाषा ही रही है लेकिन हर एक कवि के काव्य एक दूसरे से भिन्न है और यह भिन्नता काव्यभाषा के मूल्यांकन से स्पष्ट हो जाती है जिसका अवलोकन हम सौद्धांतिक मानदंडों के आधार पर करते हैं । काव्यभाषा में वैविध्य न होने पर भी काव्य सिद्धांतों का बहुविध तथा निराला प्रयोग इस युगीन काव्यों में दृष्टिगत होते हैं ।

पाँचवें अध्याय का शीर्षक रखा गया है - 'आधुनिक युगीन काव्यभाषा का स्वरूप ।' प्रस्तुत अध्याय को दो खंडों में विभक्त किया गया है । प्रथम खंड में काव्य में पाश्चात्य तत्वों का प्रभाव, भारतेंदु तथा द्विवेदीयुगीन काव्यभाषा का स्वरूप और छायावादी कवियों की काव्यभाषा के स्वरूप की चर्चा की गई है तो द्वितीय खंड में प्रगतिवादी एवं प्रयोगवादी कवियों की काव्यभाषा का स्वरूप और आधुनिक युगीन काव्यभाषा के मूल्यांकन के मानदंड पर विचार किया गया है ।

आधुनिक युग में पाश्चात्य सभ्यता एवं संस्कृति का प्रभाव हर कहीं मिलते हैं । साहित्य भी इससे अछूते नहीं है । 'काव्य में पाश्चात्य तच्वों का प्रभाव' उपशीर्षक में इसका प्रभाव सूचित किया गया है । आधुनिक काल में, भारतेंदु युग से लेकर प्रयोगवादी युग तक के काव्य, प्रयोग एवं शैली की दृष्टि से वैविध्यपूर्ण है । काव्य सिद्धांतों के प्रयोग में आए उतार-चढ़ाव के अतिरिक्त प्रतीक, बिम्ब, फैन्टेसी, शब्द प्रयोग भी इस युग की काव्यभाषा को अन्य युगीन काव्यभाषा से भिन्न कराते हैं । आधुनिक युगीन काव्य परंपरा अधिक विस्तृत है । अत: भारतेंदु एवं द्विवेदी युगीन कवियों से प्रयोगवादी कवियों तक की काव्यभाषा को अध्ययन के लिए सीमित किया गया है । उनका क्रम इस प्रकार हैं – अयोध्यासिंह उपाध्याय हरिऔध, मैथिलीशरण गुप्त, जयशंकर प्रसाद, सुमित्रानंदन पंत, सूर्यकांत त्रिपाठी निराला, महादेवी वर्मा, हरिवंशराय बच्चन, रामधारीसिंह दिनकर, नागार्जुन, त्रिलोचन शास्त्री, सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन अज्ञेय, गजाननमाधव मुक्तिबोध और शमशेर बहादुर सिंह ।

आधुनिक काल में काव्यभाषा का प्रगतिशील विकास हुआ है । प्रत्येक वाद के अनुसार काव्यभाषा में आए परिवर्तन को जानना आवश्यक है । काव्यभाषा के मूल्यांकन के मानदंड के आधार पर इस युगीन काव्यभाषा का अध्ययन तथा विचार विमर्श किया गया है ।

'उपसंहार' में प्रस्तुत अध्ययन के निष्कर्षों को संक्षेप में समाहित किया गया है ।

अंत में शोध की नवीन वैज्ञानिक पद्धति यानी पंचसूत्री क्रमानुसार सहायक ग्रंथ-सूची प्रस्तुत की गई है । इन सभी ग्रंथों का प्रत्यक्ष अवलोकन मनन करने का सुयोग शोधार्थिनी को प्राप्त हुआ है ।

हिन्दी काव्य साहित्य एवं भाषाई अध्ययन में रुचि रखनेवाले अध्येताओं एवं शोधार्थियों के लिए प्रस्तुत शोध कार्य प्रयोजनीय होगा, यही कामना है । हिन्दीतर भाषी हिन्दी शोध छात्रा के नाते इसमें कहीं त्रुटियाँ या कमियाँ आई हों तो शोधार्थिनी क्षमाप्रार्थी हैं।

विनम्र,

कोच्चि – 22 सूर्या.एल.एस

/07/2011

कृतज्ञता ज्ञापन

प्रस्तुत शोध-प्रबंध विज्ञान व प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय कोच्चिन के प्रोफेसर डॉ.एन.जी.देवकीजी के निर्देशन एवं निरीक्षण में तैयार किया गया है । उनकी प्रेरणा एवं समयानुकूल निर्देशन से ही यह कार्य संपन्न हुआ है । समय-समय पर मेरी शंकाओं का समाधान करते हुए प्रोत्साहन देनेवाले उनके मन की विशालता तथा सौहार्दपूर्ण व्यक्तित्व ने ही मुझे यहाँ तक पहूँचने को सक्षम बनाया है । मेरे शोध कार्य को सफल बनाने में उन्होंने जो सुधाव एवं उपदेश दिये, उनके लिए मैं तहे दिल से कृतज्ञता अर्पित करती
हूँ । मैं उनके मंगलमय जीवन की कामना करती हूँ । मेरी यह विनम्र प्रार्थना है कि वे आगे भी मुझे जीवन में सही रास्ता दिखा देने की कृपा करें ।

विभाग के अध्यक्ष के प्रति भी मैं अपनी कृतज्ञता ज्ञापित करती हूँ जिन्होंने मेरे शोध कार्य की संपूर्ति में वांछित सहयोग दिया । उनका आशिर्वाद एवं प्रेरणा मेरे लिए मूल्यवान हैं ।

हिन्दी विभाग के पुस्तकालय के कर्मचारियों के प्रति भी मैं आभार प्रकट करती हूँ जिन्होंने इस शोध कार्य को सुगम बनाने के लिए काफी सहयोग दिया है ।

कोच्चिन विश्वविद्यालय के अध्ययन काल में छोटी-मोटी ज़रूरतों के लिए बिना हिचक उपस्थित होनेवाले, मुझे सांत्वना एवं प्रेरणा देनेवाले सभी आत्मीय

मित्रों एवं शुभ चिन्तकों को मैं धन्यवाद देती हूँ । इन्होंने प्रत्यक्ष और परोक्ष दोनों रूपों में मेरी मदद की हैं ।

ब्रह्ममंगलम यू.पी.स्कूल तथा हाई स्कूल एवं डी.बी.कॉलेज तलयोलपरम्बु के अध्यापकों को इस संदर्भ में सप्रेम स्मरण कर रही हूँ ।

मैं अपने प्रिय माता-पिता और भाई संदीप के प्रति आभारी हूँ । उनके वात्सल्य, मन से की गई प्रार्थना और सहारे के बगैर मैं इस मुकाम तक नहीं पहूँच सकती थी । उनके प्रति भी सस्नेह आभार प्रकट करती हूँ ।

पूज्य ताऊ और ताई तथा सभी परिजनों ने मुझे प्रत्यक्ष व परोक्ष रूप से प्रोत्साहन किया है उन सबके प्रति मैं आभारी हूँ ।

इन सबके पहले मैं परम शक्ति ईश्वर के सामने श्रद्धा भाव से घुटनें टेकती हूँ । उनके आशीर्वाद एवं शक्ति की बदौलत ही मैं इस शोध कार्य को पूरा कर सकती हूँ ।

कोच्चि – 22 **सूर्या.एल.एस**

/ 07/2011